हमें ख़बर मिली है कुछ लोग इसे भी

ज़ब्त कराने का प्रयत्न कर रहे हैं !!

नवीन संस्करण ! संशोधित संस्करण !!

अबलाओं का इन्साफ़

विषय सूची

सुख-सञ्चारक कम्पनी, मथुरा द्वारा प्रकाशित उपयोगी पुस्तक

अमेरिकन स्त्री-शिक्षा

इस पुस्तक की अधिक प्रशंसा न कर, इसमें जितने विषय हैं उनकी विषय-सूची लिखे देते हैं, इनको देखकर आप स्वयं समझ सकेंगे कि पुस्तक प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिए कितनी उपयोगी है। ऐसी उपयोगी ३२७ पृष्ठ की, विलायती पुट्ठे की जिल्द वाली पुस्तक का दाम १।) डाक-खर्च ।=)

विषय-सूची

पति का आदर, आकर्षक सौन्दर्य, साधारण स्त्री, विवाह से लाभ, ईर्षा, लक्ष्य स्थिर करो, मेहमानों का खाया घर, स्त्री का बिगाड़ना, गृहस्थ के झगड़ों से भागना, भयानक बैरी, बेटियो! कुछ काम सीखो, पति-त्याग करने का मुक़दमा, इच्छित पुरुष से विवाह करना, क्या तुम अकेली रहना पसन्द करती हो, जवानी क़ायम रखना, निन्दक ही रक्षक है, मज़दूरिन स्त्री, घरेलू लड़ाई, क्या अपनी पाप-कहानी कह दें, घर में कामों से उकताना, शादी करूँ या नहीं, स्त्री का सब से अच्छा गुण, बुड्ढों के आश्रय रहना, क्या तुम अपनी लड़की के योग्य पिता हो, बच्चों की सदाचार-शक्ति, सास का सत्कार, घर वालों से निरादर क्यों प्राप्त होता है, अपने जीवन की बुराई-भलाई अपने हाथ है, पतिहीन स्त्री, मार्था ठीक है कि मैरी, घर वाले की उजड्डता, विवाह की अद्भुत बातें, पति का ज्ञान, परामर्श-शक्ति, स्त्रियों के लिए परोपकार-वृत्ति, अच्छा पति, बच्चों को सुख पहुँचाओ, अपने बच्चों की सेवा करो, पति सर्वदा अच्छा है, अच्छी स्त्री कैसी हो, बनावटी बीमार, स्वार्थी बनाना, आत्म-संयम, बुड्ढे बाप की जवान बेटी, स्त्री क्यों प्यार नहीं करती, विवाहित पुरुष का आकर्षण, इस बात को भूल जाओ, खोया हुआ प्रेम, धूमधाम की शादी, बच्चों के लिए माँ-बाप की मृत्यु, सुख के दाम, आदर्श माता, अच्छी स्त्री कैसे प्राप्त होती है, भयानक युवती, प्रेम के लक्षण, विवाह से शिक्षा, स्त्रियों में विशेष व्यापारिक बुद्धि, पुराने के बदले नया आदर्श, पति-विच्छेद का कारण, बच्चों का विचार करो, घर चलाने का ढङ्ग, पिता का प्रभाव, ग़रीब बच्चों का धन, घर का मालिक पति है, मित्र भक्षक मित्र, सुख का मार्ग, बुढ़ापे की तैयारी।

मिलने का पता—सुख-सञ्चारक कम्पनी, मथुरा

रानी लक्ष्मीबाई, झाँसी

[श्रीयुत वासुदेवराव जी सूबेदार, सागर, की कृपा द्वारा, एक प्राचीन चित्र से]

"भारत में अङ्गरेज़ी राज्य" से।
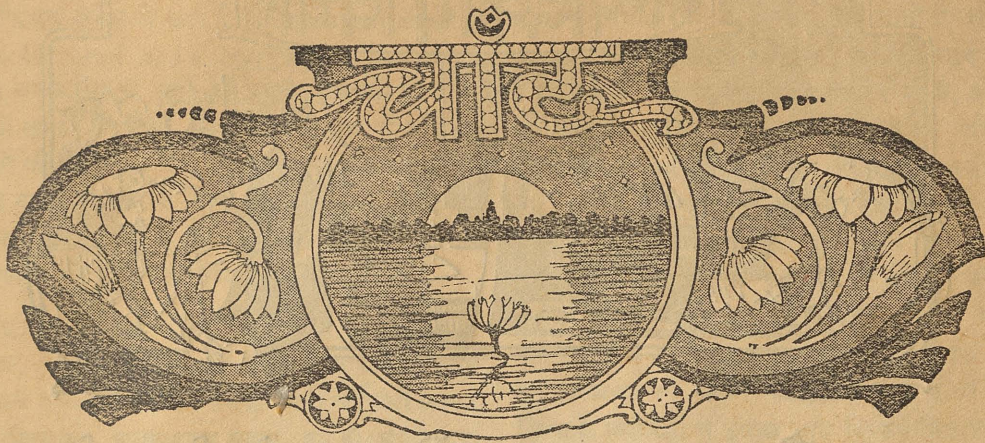
Highly appreciated and recommended for use in Schools and Libraries by Directors of Public Instruction, Punjab, Central Provinces and Berar, United Provinces and Kashmir State etc., etc.

वनिता-विनय

[रचयिता—श्री० शोभाराम जी, धेनुसेवक]

सत्-शिक्षा से पूर्ण सुशिक्षित हों वनिताएँ।
नहीं निरादर सहें, मान मनुजोचित पाएँ॥
करें प्रसव सुत-रत्न, वीर माता कहलाएँ।
मार्ग-प्रदर्शक बनें, मातृ का हर्ष बढ़ाएँ॥

दुखद दासता देश की, महिलाएँ मिल कर दलें!
प्रेम-पात्र निज नाथ की, बन सदा फूलें-फलें!!
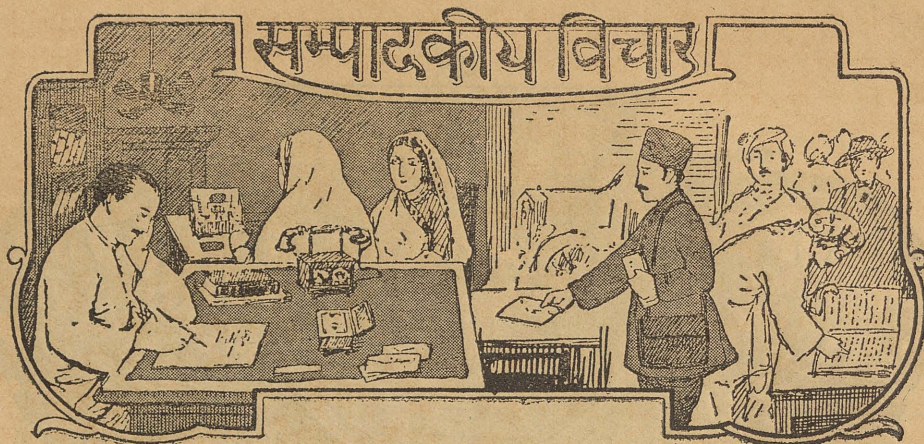
मार्च, १९२९

आत्म-घात का रोग

आत्मघात करके सांसारिक दुःखों और झंझटों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करना, मानव-स्वभाव की एक बड़ी पुरानी दुर्बलता है। महाकवि भवभूति ने अपने नाटक उत्तर-रामचरित में जनक ऐसे योगी को भी आत्म-हत्या करने की चेष्टा करते हुए दिखलाया है। जब उन्हें समाचार मिला कि रामचन्द्र ने गर्भवती सीता को एक धोबी के ताना मारने पर जङ्गल में भेज दिया है, तो उनके क्रोध की सीमा न रही। पहले तो उन्होंने सोचा कि सारी अयोध्या को पराजित करके भस्म कर दूँ। फिर शाप देकर रामचन्द्र और उनके भाइयों को ही नष्ट कर देने की इच्छा उनमें उत्पन्न हुई, पर अन्त में उन्होंने सोचा कि अपनी कन्या के यह सब कष्ट देखने और सुनने के लिए मैं ही क्यों जीवित रहूँ? उन्होंने आत्म-घात करने का निश्चय कर लिया; पर जब शान्त हुए तो लगे विचार करने, और देखा कि धर्मशास्त्र में तो आत्म-हत्या करने वाले को कठोर दण्ड देने का विधान है, यह भी लिखा है कि ऐसे लोगों को सहस्रों वर्ष अन्धकारमय नरक में रहना पड़ता है, और कभी मुक्ति नहीं मिलती। महाराज जनक ऐसे योगी, जो ध्यान में मग्न होकर 'विदेह' हो जाते थे, यदि दुःख और परिताप के मारे आत्म-घात करने के लिए तैयार हो जायँ तो साधारण मनुष्यों की बात ही क्या है!

यूरोप में भी बहुत प्राचीन समय से यह सामाजिक कुरीति चली आती है, यहाँ तक कि प्रसिद्ध दार्शनिक फ़लातूँ (Plato) ने यह सिद्धान्त ही बना रक्खा था कि प्रत्येक मनुष्य को आत्मघात करने का नैसर्गिक अधिकार है। प्रसिद्ध रोमन राजनीतिज्ञ केटो ने स्वयं अपने प्राण दे दिए थे, क्योंकि वह शत्रु से पराजित होने से मरना ही अच्छा समझता था। इसी से अङ्गरेज़ी में एक कहावत है कि "What Cato did and Plato taught could not be wrong" अर्थात् जो केटो ने किया और प्लेटो ने कहा है वह ग़लत नहीं हो सकता। शेक्सपियर के नाटक हैमलेट में राजकुमार हैमलेट भी अपने पिता की मृत्यु से घबराकर अपने प्राण दे देना चाहता है और बहुत गम्भीरता-पूर्वक कई दिन तक इस पर विचार करता है। यहाँ तक कि विक्षिप्त हो जाता है। हॉलैण्ड के विख्यात चित्रकार वॉन गॉग ने भी आत्म-हत्या की थी, जिसका कारण उनका अद्भुत पागलपन कहा जाता है। मौलिक एवं उच्चकोटि के आदर्शवाद के कारण

उनके जीवन में एक क्रान्ति उपस्थित हो गई थी और जैसा कि एक लेखक ने कहा है "He carried about a sun in his head and a hurricane in his heart." अर्थात् उनके सिर में सूर्य की चमक धधकती थी और हृदय में तूफ़ान की तेज़ी थी। इस चित्रकार की प्रतिभा में अग्नि की सी जलन थी, जिसके कारण उसकी आत्मा उसकी अमर कला को छोड़ कर और सभी बातों को नष्ट कर डालना चाहती थी। इसी कारण शायद वह मरते समय भी अपना ही एक चित्र बना रहा था!

यह तो हुई कुछ प्रसिद्ध यूरोपियनों के आत्म-हत्या की बात, पर साधारण मनुष्य प्रायः शोक अथवा दुःख के अगाध सागर में पड़ कर अथवा किसी न किसी कारण अपने जीवन को अनावश्यक समझ कर ही अपने प्राण देता है। विशेषज्ञ डॉक्टरों तथा विद्वानों का कहना है कि ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती जा रही है, त्यों-त्यों आत्म-घात करने की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है। इस बात में कुछ तथ्य अवश्य है, क्योंकि सभ्यता के साथ-साथ मनुष्य के भावों की कोमलता बढ़ती जाती है, वह छोटी-छोटी बातों से प्रभावित हो जाता है, और आत्म-सम्मान तथा मर्यादा के लिए अपने प्राणों को कुछ नहीं समझता। जीवन की समस्याएँ भी गूढ़तर होती जा रही हैं और आत्म-हत्या करने के उपायों में भी वृद्धि हो रही है। भारतवर्ष में तो सरकार इसका कोई ब्योरा ही नहीं रखती, पर यहाँ प्रायः लोग कुओं में डूब कर, अफ़ीम खाकर अथवा रस्सी से लटक कर ही मर जाते हैं। देहात की स्त्रियाँ तो इनके अतिरिक्त और कुछ कर भी नहीं सकतीं; पर यूरोप और अमेरिका में तो इसके अनेक सभ्य साधन मौजूद हैं। छुरा भोंक लेना, अनेक प्रकार के विष खा लेना, ऊँचे स्थानों से कूद पड़ना तथा पिस्तौल या रिवॉल्वर से गोली मार लेना इत्यादि अनेक रीतियों से प्राणान्त किया जाता है। फ़्रान्स में तो प्रायः लोग कमरा बन्द करके अँगीठी जला लेते और सो जाते हैं—बस फिर सोए ही रह जाते हैं। समुद्र के किनारे वाले स्थानों में अधिकतः लोग डूब मरते हैं, क्योंकि बहुधा लोगों की धारणा है कि डूब कर मरने में कष्ट ही नहीं कम होता, एक प्रकार का विशेष आनन्द भी आता है।

इस सम्बन्ध में विद्वानों की और भी दो-एक सम्मतियाँ हैं, जो आत्म-हत्या के आँकड़ों के चिरकालीन अध्ययन पर अवलम्बित हैं। उनका कहना है कि आत्म-हत्या की संख्या गर्मी के दिनों में बढ़ जाती है और फिर क्रमशः कम होती जाती है, परन्तु साथ ही साथ यह भी है कि उन देशों में अधिक आत्म-हत्या होती है, जो प्रायः बङ्गाल की तरह उष्ण तथा जलपूर्ण होते हैं और जहाँ की आबोहवा नम और मलेरिया पैदा करने वाली होती है। इसका कारण भी है, ऐसे देशों के लोग प्रायः बड़े भावुक तथा आवेशपूर्ण होते हैं। वे क्रोध, प्रेम तथा दुःख से बहुत शीघ्र आक्रान्त हो उठते हैं और इसी कारण उनमें आत्मघात की प्रवृत्ति अधिक अंश में पाई जाती है। एक बात और मार्के की है कि विशेषकर आत्म-हत्याएँ महीने के शुक्ल-पक्ष में होती हैं, इस विषय के विशेषज्ञों ने इसका यह निष्कर्ष निकाला है कि चन्द्रमा का भी प्रभाव मनुष्यों को आत्मघात के लिए उतारू कर देने पर बहुत पड़ता है। चन्द्रमा की ज्योत्स्ना में एक प्रकार के विशेष उन्माद पैदा करने की शक्ति होती है। यूरोप में तो यह बहुत पुराना विश्वास है कि चन्द्रमा प्रेमियों को विक्षिप्त कर दिया करता है। इसका लैटिन नाम ल्यूना (Luna) है, जिससे ल्यूनाटिक (Lunatic) शब्द बना है, जिसका अर्थ है 'पागल'। इसी से डॉक्टरों का यह भी कहना है कि मनुष्य साधारण अवस्था में आत्मघात करता ही नहीं, इसके पहले वह पागल हो जाता है। बात नितान्त सच तो नहीं जान पड़ती, क्योंकि बहुधा पढ़े-लिखे लोग प्राण देने के पूर्व अनेक विद्वत्तापूर्ण पत्र—लम्बे-लम्बे पत्र—लिख गए हैं, जिनमें वे अपने मरने के कारण बतलाते और मित्रों से अन्तिम विदा माँगते हैं। जापान के टोकियो स्कूल में हिन्दुस्तानी भाषा के प्रोफ़ेसर हरिहरनाथ अतल ने जब सन् १९२१ में इस प्रकार अपने प्राण दिए थे तो वे पाँच लम्बे-लम्बे पत्र लिख गए थे। अन्य पत्र तो मित्रों को लिखे थे, पर एक में उन्होंने अपने आत्मघात का कारण बतलाया था। वे पहले संयुक्त प्रान्त के शिक्षा-विभाग में थे, पर जब जापान गए तो ब्रिटिश एम्बेसी के कर्मचारियों ने इनके ऊपर कड़ी दृष्टि रखना प्रारम्भ किया। उन्होंने इनसे यह भी कहा कि हिन्दुस्तान के समाचार-पत्र न मँगाओ और न टोकियो के हिन्दुस्तानियों से मेल-जोल रक्खो। इस प्रकार कई वर्ष तक इस विद्वान् नवयुवक को दूर देश जापान में भी अपने देशवासियों से

बातचीत करने और उनके समाचारों तक से परिचित होने से रोक कर उसका जीवन असह्य बना दिया गया था। कारण केवल यही था कि अङ्गरेज़ी सरकार की आँखों में वहाँ के कुछ भारतीय खटक रहे थे और कर्मचारियों का विश्वास था कि वे कॉङ्ग्रेस की ओर से आन्दोलन के लिए वहाँ भेजे गए हैं।

इस प्रकार के पत्रों से तो पागलपन का पता नहीं चलता, हाँ इसे अलबत्ता चाहे पागलपन कहें, चाहे भीरुता कि दुःखपूर्ण स्थिति में पड़ कर मनुष्य हिम्मत हार बैठता है और उसे पराजित करने का यत्न न करके, स्वयं पराजित हो जाता है। अथवा यह कि वह दुःख से इतना अभिभूत हो जाता है कि विक्षिप्त होकर उसे अपनी परिस्थिति के सामने संसार में और किसी की परिस्थिति उतनी ख़राब दिखाई ही नहीं पड़ती, अतएव उसकी यह सङ्कुचित दृष्टि ही उसे पागल कर देती है। इसी लिए प्रायः यह भी देखा गया है कि पागलख़ानों में आत्म-हत्याएँ बहुत होती हैं। यूरोप आदि देशों में तो इसका पूरा ब्योरा रक्खा जाता है, जिससे पता चलता है कि कितने बूढ़े, कितने जवान, कितने अधेड़, कितने ज़हर खाकर, कितने डूब कर और कितने गोली मार कर आत्म-घात करते हैं। इस प्रकार की संख्याओं को एकत्र करने के लिए कुछ राष्ट्रीय नियम भी हैं, पर भारत-सरकार उनके अनुसार आत्म-हत्या की संख्याएँ नहीं रखती। यहाँ तो केवल यही हिसाब रक्खा जाता है कि इतनी औरतें मर गईं, इतने पुरुषों ने अपने को नष्ट कर डाला, बस इससे अधिक आपको पता नहीं चल सकता। पश्चात्य देशों में तो इस विषय पर अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं, कमीशनें बैठाई गई हैं और विद्वानों को आत्महत्या के कारणों तथा प्रतिबन्धों का अन्वेषण करने के लिए विशेष पुरस्कार दिए गए हैं। जब हम इस सम्बन्ध के आँकड़े एकत्र कर रहे थे तो हमें संसार भर के सभी देशों से भिन्न-भिन्न प्रकार के विवरण प्राप्त हुए थे। परन्तु भारत-सरकार पहले तो यों ही टालना चाहती थी, पर बहुत कहने-सुनने पर संख्याएँ भी भेजीं तो केवल मरे हुए स्त्री-पुरुषों की! बहुत सी प्रान्तीय सरकारों ने तो टकसाली उत्तर दे दिया कि संख्याएँ फ़लाँ रिपोर्ट में प्रकाशित हुई हैं। सारांश यह कि हमने इस सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया है और उसका फल पाठकों के सामने है। बाहर के देशों से, केवल इङ्गलैण्ड को छोड़ कर, और सभी स्थानों से इस सम्बन्ध में हमें बड़ी सहायता मिली है। अनेक पाश्चात्य देशवासियों ने हमारे पास इस सम्बन्ध की अनेक पुस्तकें और रिपोर्टें भेजीं और हॉलैण्ड से तो वहाँ के डाइरेक्टर ने हमारे अध्ययन की सुविधा के लिए एक डच-भाषा का कोष ही भेजने की कृपा की है। अस्तु—

इङ्गलैण्ड वालों की आना-कानी का कारण बतलाते हुए हॉलैण्ड के डाइरेक्टर ने हमें लिखा था—

"The figures relating to England are low, not because suicide is rarely committed in that country, but because relations are anxious to conceal this cause of death, because, according to English law and English opinion, attempts to commit suicide are thought condemnable."

अर्थात् इङ्गलैण्ड में आत्म-हत्या करते हुए पकड़े जाने वालों को क़ानून से दण्ड मिलता है, और ऐसे लोग समाज की दृष्टि में भी गिर जाते हैं। इसी से आत्म-हत्या से मरे हुए लोगों के सम्बन्धी इस बात को छिपाने का प्रयत्न करते हैं। हॉलैण्ड को छोड़ कर, अन्य सभी देशों में आत्म-हत्या का प्रयत्न दण्डनीय है। इस विषय में भी विद्वानों तथा न्याय-विधायकों की भिन्न-भिन्न सम्मति है—कोई कहता है कि प्रत्येक पुरुष को अपने जीवन पर अधिकार है और वह जैसा चाहे कर सकता है, दूसरों का कथन है कि नहीं, प्रत्येक व्यक्ति का समाज के प्रति कर्तव्य होता है और उसके पालन किए बिना, प्राण दे देना कायरता है, जिसे कभी उत्साहित नहीं करना चाहिए। पर फिर प्रश्न उठता है कि जिस क़ानून से आत्मघात दण्डनीय है, वह तो आत्महत्या कर डालने वाले को दण्ड देने में सर्वथा असमर्थ रहता है और दण्ड देता है केवल उन्हें, जो केवल इस पाप की इच्छा-मात्र करते हैं। सचमुच यह बड़ा ही हास्योत्पादक है कि इस पाप का कर डालने वाला तो मर कर प्रत्येक दण्ड से मुक्त हो जाता है, पर दण्ड उन्हें मिलता है, जो इसे करने का प्रयत्न-मात्र करते हैं। इसका उत्तर केवल यही हो सकता है कि दण्ड-विधान का आदर्श बदला चुकाना नहीं, बल्कि समाज के सम्मुख उदाहरण उपस्थित करना है, जिससे प्रत्येक अनुचित उदाहरण का दण्ड देना वाञ्छनीय है। आत्मघात के इस

नैतिक पहलूपर एक बहुत विचारपूर्ण लेख प्रसिद्ध दार्शनिक सर ऑलिवर लॉज ने कुछ दिन हुए लिखा था। *

यूरोप के देशों में सबसे अधिक आत्म-हत्याएँ जर्मनी में होती हैं, जिनकी संख्या प्रति वर्ष १०,००० से ऊपर पहुँच जाती है। वहाँ की कुछ संख्याएँ इस प्रकार हैं:—

सन्	१८६५	१६१७	१६१८	१६१६
पुरुष	८,२८५	६,७११	६,२१६	६,३०८
स्त्री	२,२२५	४,०२३	३,६४३	३,८७२
जोड़	१०,५१०	१०,७३४	१०,१५६	१०,१८०

हिसाब लगाने से यह संख्या प्रति लाख १८ तक पहुँचती है। एक बात ध्यान देने योग्य है, वह यह कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या बहुत कम है। यह बात सभी यूरोपियन देशों में है और इसका कारण यह बतलाया जाता है कि वहाँ अधिकतः पुरुष ही ऐसी स्थिति में रहते हैं कि जीवन की समस्याओं के फेर में पड़ कर उन्हें आत्मघात करना पड़ता है। और इसके मुख्यतः दो कारण भी हैं—एक तो प्रेम, दूसरा व्यवसाय। प्रेम की निराशा अथवा व्यवसाय की असफलता के कारण बहुत से लोग प्राण दे देते हैं। स्त्रियाँ प्रायः व्यवसाय की झञ्झट से मुक्त रहती हैं और उनका जीवन अधिक आनन्द से भी बीतता है। भारतवर्ष में ठीक इसका उलटा है और यहाँ पुरुषों से स्त्रियाँ बहुत अधिक संख्या में आत्मघात करती हैं!

दूसरी बात यह है कि जिन देशों में सभ्यता का सङ्घर्ष अधिक रहता है, वहाँ यह संख्या अधिक होती है, क्योंकि वहाँ के दैनिक जीवन की समस्याएँ भी उतनी ही जटिल होती हैं। उदाहरण के लिए मिश्र देश में आत्म-हत्या की संख्या बहुत कम है। १६१८ तथा १६१६ की संख्याएँ यों हैं :—

	१६१८	१६१६
पुरुष	... ४६ ...	५३
स्त्री	... ३६ ...	२६
जोड़	... ८५ ...	८२

आश्चर्य की बात है, इतने गर्म देश में सब से अधिक लोग जल कर आत्म-हत्या करते हैं, पर यहाँ की संख्या प्रति लाख एक भी नहीं है, बल्कि '७ ही है। परन्तु दूसरे गर्म देश ऑस्ट्रेलिया में अधिक लोग गोली मार कर आत्मघात करते हैं। वहाँ की संख्या प्रति लाख ११ से १५ तक है, जिसमें चौथाई से अधिक लोग बन्दूक़, पिस्तौल अथवा रिवॉल्वर से आत्मघात करते हैं। प्रायः सभी देशों में विष का नम्बर दूसरा रहता है, जिसका कारण विष का सुगमता से मिल जाना और प्राणान्त करने में उसकी शीघ्रता जान पड़ता है।

इन सभी देशों से अधिक आत्म-हत्या जापान में होती है, जहाँ इसकी संख्या प्रति लाख २३ तक पहुँचती है। सुनते हैं, वहाँ तो बहुत लोग प्रति वर्ष बुद्ध की वार्षिक रथ-यात्रा में रथ के पहियों के नीचे दब कर मर जाने को बड़े पुण्य का कार्य समझते हैं और कितने ही इस प्रकार जान दे-देकर अपने को धन्य मानते हैं। परन्तु वहाँ की सरकारी रिपोर्ट में इसका कुछ उल्लेख नहीं मिलता, यद्यपि जापान की आत्म-हत्या सम्बन्धी संख्याएँ और सभी देशों से अधिक अच्छे ढङ्ग से रक्खी जाती हैं, जिससे पता चल जाता है कि किस अवस्था के कितने लोग किस प्रकार आत्म-हत्या करते हैं। नीचे दी हुई तालिका से जापान की आत्मघाती संख्या पर अच्छा प्रकाश पड़ता है :—

सन्	पुरुष	स्त्री	जोड़
१८८७	... ३,५८७	... २,२३६	... ५,८२३
१८६०	... ४,६६७	... २,७८२	... ७,४७६
१८६३	... ४,५८७	... २,८०२	... ७,३८६
१८६६	... ४,४८०	... २,६७६	... ७,४५६
१६०८	... ५,८६७	... ३,२०३	... ६,६००
१६१०	... ६,८११	... ३,६७२	... १०,७८३
१६१२	... ६,६१५	... ४,२१३	... ११,१२८
१६१४	... ८,०७८	... ४,६२७	... १२,७०५

ऊपर की संख्याओं से दो बातों का पता चलता है, एक तो यह कि गत ३० वर्षों में आत्म-हत्या करने वालों की संख्या दुगुनी से भी अधिक हो गई है और दूसरी यह कि वहाँ स्त्रियों की अपेक्षा, पुरुष ही अधिक आत्मघात करते हैं। वहाँ के और विवरण देखने से पता चलता है कि लगभग आधे लोग फाँसी लगा कर मरते हैं और तिहाई पानी में डूब कर। महीनों में, सब से अधिक मृत्यु

* *Fortnightly Review*, for October, 1921.

अप्रैल से लेकर अगस्त तक—गर्मी की ऋतु में ही—होती है और अवस्था के हिसाब से एक तो २० से लेकर ४० तक के लोग प्रायः आत्म-घात करते हैं और दूसरे ५० वर्ष से ऊपर के लोग, जो शायद जीवन से उकता जाते हैं।

भारतवर्ष की संख्याओं में तो ये विवरण मिलते ही नहीं और न सरकार इस विषय में कोई अलग रिपोर्ट ही प्रकाशित करती है, जब कि इस अभागे देश में मिश्र आदि देशों से कहीं अधिक आत्म-हत्याएँ होती हैं। यहाँ की संख्या प्रति लाख ३ से ५ तक पहुँचती है, पर जिस बात की ओर हम पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं वह यह है कि संसार भर के और देशों के प्रतिकूल भारतवर्ष में स्त्रियाँ ही अधिक आत्मघात करती हैं, जिसका निम्न-लिखित तालिका से स्पष्ट पता चलेगा :—

	१९१७		१९१८	
	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
बङ्गाल	१,३०६ ...	१,९४३ ...	१,३६६ ...	२,०५१
संयुक्तप्रान्त	६१० ...	१,७९४ ...	८९८ ...	२,३८८
बिहार ...	७५५ ...	१,३०५ ...	८४९ ...	१,४८५
मद्रास ...	५६४ ...	६८९ ...	६८२ ...	६८५
मध्यप्रान्त	४४८ ...	५०१ ...	५५० ...	६२९
बम्बई ...	२९२ ...	२२९ ...	२८७ ...	२३०
ब्रह्मा ...	१३७ ...	६३ ...	१३२ ...	८२
आसाम	१०३ ...	६१ ...	१४७ ...	९५
दिल्ली कुग आदि	१७ ...	१५ ...	२९ ...	१५

ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि आत्मघात करने वाली स्त्रियों की संख्या, पुरुषों से लगभग तिगुनी है। दो ही तीन ऐसे प्रान्त हैं, जहाँ पुरुषों की आत्महत्या की संख्या स्त्रियों से अधिक है, किन्तु फिर भी आत्मघातिनी स्त्रियों की संख्या में विशेष अन्तर नहीं है। ऐसे प्रान्त आसाम, ब्रह्मा तथा बम्बई हैं, पर इन प्रान्तों की आत्म-हत्या की संख्या मिल कर, शेष प्रान्तों में से किसी एक के ही बराबर और कितनों से तो फिर भी कम ही है। जब हम विचार करते हैं कि देश में स्त्रियों की संख्या मर्दों से बहुत कम है तो ऊपर की संख्याएँ और भी भयावह प्रतीत होने लगती हैं। इन आँकड़ों से साफ़ पता लगता है कि जिन प्रान्तों में सामाजिक कुरीतियाँ कम हैं—और विशेषतः जहाँ पर्दा नहीं है, जैसे ब्रह्मा तथा बम्बई—वहाँ स्त्रियाँ कम आत्मघात करती हैं। बङ्गाल, युक्तप्रान्त तथा बिहार में अनेक सामाजिक तथा पारिवारिक अत्याचारों के कारण स्त्रियों, और विशेष कर विधवाओं का जीवन बड़ा असह्य हो जाता है, जिससे वे इस उपाय से संसार के कष्टों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करती हैं। हमें विश्वास है कि यदि सरकारी रिपोर्टों में आयु के हिसाब से विवाहित, अविवाहित तथा आत्मघातिनी विधवाओं का विवरण प्रकाशित किया जाय, तो आत्मघात करने वाली स्त्रियों में विवाहित तथा विधवा युवतियों की ही संख्या अधिक प्रमाणित होगी। उनका जीवन इतना कष्टमय होता है और उन्हें पारिवारिक कुरीतियों का इस बुरी तरह शिकार बनना पड़ता है कि वे जीने से मरना ही अच्छा समझती हैं। उसी स्थिति में यदि मर्द रक्खे जायँ तो हमें सन्देह नहीं, वे भी इसी उपाय का आश्रय लेंगे। फिर स्त्रियाँ तो स्वभाव से ही कोमल-हृदया होती हैं, और घरों की दीवारों के भीतर बन्द रह कर वे बेचारी इस घृणित उपाय के सिवा और कर ही क्या सकती हैं?

बङ्गाल की स्नेहलता की आत्म-हत्या का हाल तो पाठकों को मालूम ही होगा। जब उसने देखा कि उसके विवाह में दहेज देने के लिए पिता को अपना सर्वस्व बेच डालना पड़ा तो अभागिनी बालिका को ऐसे नारकीय विवाह से ही नहीं, जीवन से भी घृणा हो गई और दहेज-प्रथा के पृष्ठ-पोषकों का मुँह काला करने के लिए एक लम्बा पत्र लिख कर, उसने अपने को मिट्टी के तेल से जला कर अपने परिवार वालों का बोझ हलका कर दिया! इस घटना से बङ्गाल में ही नहीं, समस्त भारत में खलबली मच गई थी और समाचार-पत्रों में प्रकाशित उसके पत्र ने लोगों की आँखें खोल दी थीं। पर देश अब भी लकीर का फ़क़ीर बना हुआ है और कितनी ही युवतियाँ प्रतिवर्ष स्नेहलता की भाँति अपनी क़ुर्बानियाँ करके नवयुवकों को लज्जित कर रही हैं। पिता के दहेज कम देने पर ससुराल के लोग जीवन भर लड़की को ताना मारते रहते हैं और ऊपर से सास तथा ननद का साम्राज्य अलग खलता है। प्रायः घरों में उन्हें खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, सभी बातों का दुःख रहता है और

यदि बीच ही में दुर्भाग्यवश कहीं विधवा हो गई तो यह कष्ट सहस्र गुना अधिक बढ़ जाता है !! पढ़ी-लिखी न होने के कारण वे अपना दुःख न तो समाचार-पत्रों में प्रकाशित करा सकती हैं और न लज्जा के मारे किसी से कह सकती हैं। उनके कष्ट-निवारणार्थ सभा-समितियों की भी बहुत कमी है और फल यह होता है कि अपना दुखड़ा लिए ये बेचारी भीतर ही भीतर घुलती रहती हैं और जब सहनशीलता की हद हो जाती है, तो विवश हो मृत्यु की शरण लेती हैं। स्त्रियों के कष्ट प्रायः गूँगे होते हैं और मूक होकर उन्हें सहन करने पड़ते हैं ! किसी का पति मद्यपायी तथा वेश्यागामी है तो दूसरी विधवा होकर गर्भिणी हो गई है; कोई पति के न रहने पर घर से निकाल दी गई है, तो दूसरी घोर दरिद्रता से अपना और अपने आधे दर्जन लड़कों का निर्वाह कर रही है और साथ ही देखती है कि पिता की लाखों की सम्पत्ति नालायक़ भाई उड़ा रहे हैं !!

जब तक इन कष्टों का निर्मूलन क्रान्तिकारी समाज-सुधार द्वारा न होगा, तब तक अबलाओं की विपत्ति बढ़ती ही रहेगी। आश्चर्य की बात है कि ज्यों-ज्यों कुरीतियों के मिटाने का प्रयत्न हो रहा है, त्यों-त्यों उधर आत्महत्या की संख्या भी बढ़ती जा रही है। यहाँ तक कि प्रत्येक प्रान्त में गत दस वर्षों में यह संख्या लगभग दूनी हो गई है। स्त्री-पुरुष, सभी में यह प्रकृति बढ़ती हुई जान पड़ती है। पुरुष प्रकृति से ही अधिक कठोर-हृदय, धैर्यवान् तथा सहनशील माना जाता है और भारत की आत्महत्या की संख्याओं से भी यही प्रगट होता है। यद्यपि संसार भर में सर्वत्र ही पुरुष अधिक आत्मघात करते हैं। जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। यूरोप आदि देशों में तो पुरुष प्रायः प्रेम तथा व्यवसाय के कारण आत्मघात करते हैं, पर भारतवर्ष में तो बहुधा पारिवारिक झञ्झटों के कारण ही पुरुष ऐसा करते हैं। कारण स्पष्ट ही है, स्त्री-पुरुषों में प्रेम के लिए समाज में स्वतन्त्रता नहीं और व्यापार में भी हाथ-पैर फैलाने के लिए देश में इतना धन नहीं है। हाँ, एकाध आत्महत्याएँ अस्वाभाविक प्रेम के कारण भले ही देखी गई हैं। एक उदाहरण तो एक पढ़े-लिखे नवयुवक वकील साहब का है, जो अपने ख़ूबसूरत मुहर्रिर से प्रेम करते थे। मुहर्रिर उन्हीं के पास रहता, उनका भोजन भी बनाता और वकील साहब की स्त्री दूर घर पर और लोगों के साथ उनके नाम को रोती थी। दुर्भाग्यवश एक दूसरे मनचले वकील की निगाह लड़के पर पड़ी, जो उसी की जाति के थे भी। इनका भी विवाह तो हो चुका था, पर एक तो पत्नी सुन्दर नहीं थी, दूसरे आपको यह वहम होगया था कि उससे पैदा हुआ लड़का—जो इस समय दस-ग्यारह वर्ष का है—मेरा नहीं, किसी और का है ! मुहर्रिर की एक सुन्दर अविवाहिता बहिन भी थी, जिसके कारण और भी ये उसे अपने यहाँ रखना चाहते थे। लड़के ने भी समझा कि मुफ़्त में बहिन की शादी हो जायगी और मेरा भी काम चलेगा। बस वह पुरानी नौकरी छोड़ कर अपनी जाति वाले वकील के यहाँ आगया। इस पर पहले वकील साहब ने ईर्ष्यावश दूसरे को विष देकर मार डालना चाहा और सारा मामला पुलिस तक गया। वकील साहब पर वारण्ट कटा और बेचारे नवयुवक तो थे ही, कुछ घबराहट में और बहुत-कुछ प्रेम की निराशा तथा अदालत में मामला आने पर सब भेद खुल जाने की लज्जा के कारण, घर से भाग कर विष खा लिया और गले में रस्सी बाँध कर कुएँ में कूद पड़े। इधर तो दो बच्चों के साथ विधवा स्त्री रह गई और उधर मुहर्रिर की बहिन से दूसरे वकील ने शादी करके अपनी पहली पत्नी तथा बच्चे को निराश्रय छोड़ दिया है। ये लोग कई वर्ष से वकील साहब की पुरानी ससुराल में रहते हैं। लड़की के पिता मालदार हैं, पर पति के रहते हुए भी स्त्री गत १० वर्षों से विधवा बनी बैठी है ! यह तो हुई दो उच्चशिक्षा-प्राप्त वकीलों की कथा। दूसरी घटना एक २० वर्ष के विवाहित विद्यार्थी के आत्म-हत्या की अभी एक महीने पूर्व खुर्जे में घटी है। इस नवयुवक को एक छोटे सुन्दर लड़के से प्रेम था, पर शायद अपनी कुत्सित पिपासा शान्त न होते देख और एक दिन इसी कारण अध्यापक द्वारा पिटने पर रात को खुर्जा-कॉलेज के कुएँ में कूद कर उसने प्राण दे दिए ! माँ-बाप का अकेला लड़का था, रोती-पीटती जब बुढ़िया माँ पहुँची, तो लड़के का शव जला दिया गया था, मारे शोक के उसने भी वहीं प्राण त्याग दिए ! अपने अन्तिम पत्र में इस नवयुवक ने उस सुन्दर लड़के को 'नमस्ते' तो लिखा, पर अपनी नव-विवाहिता १४ वर्ष की पत्नी को एक अक्षर भी नहीं ! परमात्मा ही इस जवान विधवा का वैधव्य निबाहे !

इस प्रकार की घटनाएँ अब प्रति दिन बढ़ती ही

जा रही हैं और तिस पर भी सरकार का ध्यान आत्म-हत्या की संख्याओं की ओर नहीं जाता। आत्महत्या क्या, यह भी एक रोग हो गया है, जो प्रति वर्ष सभी प्रान्तों में अपने शिकारों की तादाद बढ़ाता ही जा रहा है। और प्रान्तों की बात जाने दीजिए, केवल युक्त-प्रान्त की संख्याओं को देखने से स्पष्ट पता चलता है कि अप्रैल से लेकर जुलाई तक आत्महत्या की संख्या बहुत बढ़ जाती है, और एक भी ज़िला ऐसा नहीं है, जहाँ यह रोग फैला न हो, बल्कि कितने ही स्थान तो ऐसे हैं जहाँ प्लेग अथवा हैज़ा आदि नहीं होता, पर आत्म-हत्याएँ बहुतायत से होती हैं। उदाहरण के लिए अलमोड़ा तथा गढ़वाल में प्लेग बिलकुल नहीं होता, पर आत्म-हत्याओं की संख्या ५० तक पहुँचती है; सीतापुर चेचक से स्वतन्त्र है, पर यहाँ प्रति वर्ष प्रायः ४५ मनुष्य आत्मघात करके मर जाते हैं; इसी प्रकार आधे से अधिक ऐसे ज़िले हैं जिनमें चेचक, हैज़ा आदि से लोग उतने नहीं मरते, जितने आत्म-हत्या से। इसके अतिरिक्त उन आत्मघातियों की तो गणना ही नहीं, जिनका पता घर वाले ठीक देते ही नहीं। प्रायः स्त्रियों के आत्महत्या करने पर लोग पुलिस से बचने के लिए उनकी मृत्यु के कुछ और कारण बतला देते हैं और कभी-कभी तो पुलिस स्वयं ले-देकर ऐसे मामलों को दबा देती है और कोई कल्पित कारण लिख देती है। यदि ऐसे उदाहरणों का भी ध्यान रक्खा जाय तो उपरोक्त संख्याएँ न जाने कितनी भयानक हो जायँगी!

यदि हमारी सरकार विदेशी न होती, तो इस जटिल प्रश्न की ओर उसका ध्यान जाना स्वाभाविक था, किन्तु बात दूसरी ही है। सुधारों में देशवासियों का हाथ बटाना तो दूर रहा, उलटे हमारी सरकार हमारे निर्धारित सुधारों में रोड़े अटकाने का प्रयत्न करती है। बाल-विवाह आदि उपयोगी बिलों का भारतीय सरकार द्वारा विरोध करना, हाल ही की लज्जापूर्ण घटनाएँ हैं। एक ऐसी सरकार से यह आशा करना कि वह हमारे इन सुधारों की ओर ध्यान देगी अथवा हमारा हाथ बटाएगी, पत्थर से पानी निकालने की आशा के समान उपेक्षणीय है! किन्तु यह अवश्य है कि प्रान्तीय काउन्सिलों और बड़ी व्यवस्थापिका सभा के रङ्ग-मञ्च पर थिरकने वाले हमारे स्वनाम-धन्य नेता यदि इन अत्याचारों के विरुद्ध आन्दोलन उठावें, तो कम से कम जनता का ध्यान इस कुरीति की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हो सकता है और आत्महत्या-सम्बन्धी कारणों पर प्रकाश पड़ सकता है। यदि इन कारणों की जाँच के लिए विद्वानों तथा विशेषज्ञों की एक कमिटी बनाई जाय तो उन कारणों को वह जनता के सामने उपस्थित कर सकती है, जो आत्मघाती स्त्री-पुरुषों में प्रमुख हैं। और उन कुरीतियों के विरुद्ध देश के नेताओं को एक सर्वव्यापी आन्दोलन करना चाहिए। केवल आत्मघात का प्रयत्न अथवा इच्छा करने वालों को दण्ड देने से इस सम्बन्ध में किसी प्रकार के सुधार की आशा नहीं की जा सकती। हमें उन कारणों को—पारिवारिक तथा सामाजिक कष्टों को, तथा देश की दरिद्रता को दूर करने का सबल प्रयत्न करना होगा, हमें उन कारणों के मस्तक पर पाद-प्रहार करना होगा, जिनसे स्त्री-पुरुषों का वैवाहिक जीवन आज विषमय हो रहा है और जिससे खीज कर जीवन की अपेक्षा वे मृत्यु के आलिङ्गन को सुखदायी समझ रहे हैं। प्रत्येक समाज-सुधार-प्रेमी तथा प्रत्येक परिवार के प्रमुख व्यक्ति के कन्धे पर इन कारणों को दूर करने का भार है।

यहाँ एक बात हम और स्पष्ट कर देना चाहते हैं, विदेशी सरकार की उदासीनता पर हमारी टिप्पणी पढ़ कर तथा उन देशों की मृत्यु-संख्या देख कर, जो स्वतन्त्र हैं और जिनमें क़ानून निर्माण करने की क्षमता है, कुछ लोग कह सकते हैं कि वहाँ मृत्यु-संख्या का आधिक्य क्यों है? इस बात का उत्तर एक शब्द में देना सम्भव नहीं है, किन्तु हम यह अवश्य बतला देना चाहते हैं कि पाश्चात्य देशों के जिन सुधारों को, जिन फ़ैशनों को हम हीरा समझते हैं, उनमें से अधिकांश हीरा नहीं काँच हैं। दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार वेश्या-वृत्ति का हम एक बार ही निर्मूलन नहीं कर सकते, किन्तु वेश्याओं की संख्या अवश्य घटा सकते हैं, ठीक उसी प्रकार आत्म-हत्या के रोग से देश को हम एक बार ही उन्मुक्त नहीं कर सकते, पर प्रयत्नों द्वारा उन कारणों को कम अवश्य कर सकते हैं, जिनसे आत्मघातियों को प्रोत्साहन मिलता है और अपने दुखमय जीवन की अपेक्षा वे मृत्यु को आदर की दृष्टि से देखते हैं!

आचार्य उपगुप्त

[ले० प्रोफ़ेसर चतुरसेन जी शास्त्री]

सन्ध्या हो चुकी थी, सूर्य अस्त हो गया था, पर पश्चिम दिशा में अभी लाल आभा बाक़ी थी। पूर्व-दक्षिण कोण से जो प्रधान राजमार्ग मथुरा को जाता है, उस पर तीन यात्री धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। यात्री बहुत दूर से आ रहे थे। और वे अत्यन्त क्रान्त और थकित थे। उनमें एक वृद्ध था, दो युवक। उन दोनों में भी एक अति किशोर-वयस्क सुकुमार बालक था, जिसकी आयु कठिनता से १४ वर्ष की होगी। मध्यवर्ती युवक ने वृद्ध को सम्बोधन करके पूछा—लल्ल! मथुरा तो आ गई, आशा है, अब विश्राम और आश्रय मिलेगा। परन्तु लल्ल! क्या तुम्हें आशा है कि श्रेष्ठिवर हमें आश्रय देंगे? वे हमें पहचान सकेंगे, और हमारा भेद गुप्त रख सकेंगे?

"अवश्य ही ऐसा होगा, श्रेष्ठि धनगुप्त महाराज के परम मित्र, अनुग्रहीत और सेवक हैं।"

किशोर वयस्क बालक ने अतिशय क्लिन्त होकर कहा—महानायक! अब और कितना चलना पड़ेगा? मुझसे तो एक पग भी अब चलना कठिन है। देखो मेरे पैर क्षत-विक्षत हो गए हैं।

लल्ल ने क्षण भर रुक कर, पीछे फिर कर बालक को देखा, उसके ओष्ठ कम्पित हुए, और नेत्रों में एक कण अश्रुबिन्दु आकर गिर गया। पर उसने किञ्चित हँस कर कहा—अब तो आगए, थोड़ा धैर्य और!

"अब और नहीं" कह कर बालक वहीं सड़क पर बैठ गया। दूसरे युवक ने प्यार से उसका हाथ पकड़ कर कहा—यहाँ मार्ग में देर करने से क्या लाभ, सूर्य छिप गया है, कहीं द्वार बन्द हो गए तो बाहर ही रात काटनी होगी और वन्य-पशु फिर लल्ल को सोने न देंगे।

बालक फिर चला। लल्ल आगे बढ़ा। नगर के दक्षिण द्वार पर नगर-रक्षक रात्रि के लिए नवीन प्रहरियों की गिनती कर रहा था। तीनों यात्रियों ने चुपचाप द्वार में प्रवेश किया। किसी ने इन दीन यात्रियों की ओर ध्यान नहीं दिया। लल्ल ने विनीत भाव से युवक से कहा—यदि आज्ञा हो तो रात किसी अतिथिशाला में काट ली जाय, फिर प्रातःकाल श्रेष्ठिवर का घर ढूँढ़ लिया जायगा। अब इस समय कहाँ भटका जायगा। इतना कह कर उसने एक दृष्टि किशोर बालक पर फेंकी और युवक की आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा रहा। युवक ने कहा—यही उचित है लल्ल! चलो अतिथिशाला में ही रात्रि व्यतीत करें।

तीनों यात्री नगर के जन-पथ पर आगे बढ़े।

२

"श्रेष्ठिवर धनगुप्त का घर क्या यही है?"

"यही है श्रीमान्! आपका कहाँ से पधारना हुआ है? आइए, भीतर आइए, घर को पवित्र कीजिए।"

लल्ल से जब एक परम सुन्दर युवक ने अति नम्रता-पूर्वक ये शब्द कहे, तब लल्ल आँखें फाड़-फाड़ कर उस युवक और सामने के एक साधारण घर को देखने लगे।

"अवश्य ही भ्रम हुआ है महोदय! क्या आप महा-श्रेष्ठि धनगुप्त को जानते हैं?"

"श्रीमान्! यह दास उनका पुत्र है।"

"आप? श्रेष्ठि धनगुप्त के पुत्र? और यह उनका घर? आपका शुभनाम?"

"सेवक का नाम 'उपगुप्त' है।"

"उपगुप्त, उपगुप्त! ओह! सचमुच आप × × × परन्तु श्रेष्ठिवर कहाँ हैं?"

"पूज्य पिता जी का स्वर्गवास हुए ८ वर्ष होगए?"

"स्वर्गवास?" लल्ल ने मुँह फैला दिया।

"श्रीमान् अवश्य ही पितृ-चरणों के बन्धु हैं। मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए।"

"उपगुप्त श्रेष्ठिवर!" इतना कह कर लल्ल ने युवक को दौड़ कर भुजा-पाश में बाँध लिया। कुछ ठहर कर लल्ल बोले—समझा! पिता के बाद लक्ष्मी ने भी उसके पुत्र को त्याग दिया! वाह रे कराल काल! जिसके नौ-व्यापार से समुद्र पटा रहता था, और यवन, चीन तक जिसकी हुण्डी चलती थी, उसका यह पुत्र नङ्गे पाँव खड़ा

राजमार्ग पर अतिथि का सत्कार कर रहा है, और जहाँ द्वार पर सेना और हाथियों की पंक्ति रहती थी वहाँ यह घर है !" यह कह कर लल्ल रोने लगे। एक बार उन्होंने फिर युवक को छाती से लगा लिया।

उपगुप्त ने धैर्य से पूछा—आर्य ! परिचय देकर कृतार्थ करें। यह तो मैं समझ गया, आर्य पितृ-तुल्य पूज्य हैं, आज मेरा जन्म इन चरणों की सेवा से कृतार्थ होगा।

"श्रेष्ठिवर उपगुप्त ! ईश्वर को धन्यवाद है कि श्रेष्ठिवर धनगुप्त का विनय, सौजन्य और अतिथि-सत्कार आप में अवशिष्ट है, जो श्रेष्ठिवर की सब सम्पत्तियों में अमूल्य थी, परन्तु अब परिचय की आवश्यकता नहीं, ईश्वर आपका कल्याण करें !"

इतना कह कर लल्ल चलने को तैयार हुए। उपगुप्त ने कातर स्वर से कहा—आर्य ! क्या दरिद्रता के कारण दास को आप त्याग रहे हैं ? यह न होगा। श्रीमान् यदि मेरा आतिथ्य न स्वीकार करेंगे तो मैं प्राण त्याग दूँगा। आर्य, मैं कभी झूठ नहीं बोलता !

लल्ल क्षण भर स्तब्ध खड़े रहे। फिर उन्होंने कहा—श्रेष्ठिवर, मेरे साथ और भी दो व्यक्ति हैं, देखो वे सम्मुख खड़े हैं × × × "आह ! आपने कहा नहीं × × ×" यह कर उपगुप्त उधर दौड़े, लल्ल ने रोक कर कहा—श्रेष्ठिवर, ठहरिए, निस्सन्देह हम लोग आपके पिता का आश्रय प्राप्त करने यहाँ आए थे—पर अब नहीं श्रेष्ठिराज, हम लोग आपको विपत्ति और चिन्ता में नहीं डालेंगे। ईश्वर आपका कल्याण करें।

"तब आर्य ! मैं निश्चय प्राण-त्याग करूँगा।"

"नहीं महोदय ! आपका इस अवस्था में आतिथ्य स्वीकार न करने के कारण हैं। आप हमारे कारण विपत्ति में पड़ सकते हैं।"

"परन्तु महोदय ! मैं प्राण देकर भी हर्षित हूँगा। आर्य ! आज तक मैं अपने दारिद्र्य के लिए लज्जित नहीं हुआ—क्या अब श्रीमान् मुझे लज्जित करेंगे ?"

"नहीं, नहीं, श्रेष्ठिराज, बात कुछ और ही है। अच्छा, तब मैं स्वामी से आज्ञा ले लूँ !"

"मैं स्वयं ही उनके चरणों में प्रार्थना करूँगा !" इतना कह कर, उपगुप्त ने दूर खड़े दोनों युवकों के निकट जा, उनकी चरण-रज मस्तक पर लगाई।

लल्ल ने संक्षेप में सब कुछ कह कर घर में चलने का अनुरोध किया।

आसन देकर, सब के बैठने पर उपगुप्त ने कहा—आर्य ! अब अपना और इन पूज्यों का परिचय देकर कृतार्थ करें।

"श्रेष्ठिवर ! ये कलिङ्गराज-महिषीपट्ट महारानी चन्द्रलेखा और ये महाराजकुमारी शीला हैं। मगध के प्रतापी सम्राट् चण्डाशोक ने कलिङ्ग का महाराज्य नष्ट कर डाला, एक लाख कलिङ्ग योद्धा रणभूमि में काम आए हैं—महाराज युद्धभूमि से लौटे नहीं, न उनका शरीर प्राप्त हुआ है। महाराज कुमार हरिद्वार में स्वामी चिदानन्द के आश्रम में विद्याध्ययन कर रहे हैं। मैं महानायक भट्टारक पादीप लल्ल हूँ। राजपरिवार घोर विपत्ति में पड़ गया, तब इन महिलाओं को लेकर मैं आपके पिता के आश्रय की इच्छा से चल पड़ा। धनगुप्त श्रेष्ठिराज को छोड़ और कौन इन राज-अतिथियों को आश्रय दे सकता है ? चण्डाशोक ने सर्वत्र चर छोड़े हैं—जो कोई राजपरिवार और कुमार जितेन्द्र को पकड़ा देगा उसे दस सहस्र स्वर्ण-मुद्रा दी जावेंगी। और जो कोई उस परिवार को आश्रय देगा उसे प्राण-दण्ड होगा। श्रेष्ठिराज, इसी लिए हम लोग आपकी इस दुरवस्था में आपको विपत्ति में नहीं डालना चाहते थे।"

उपगुप्त ने सब सुन कर कहा—राजमाता और राजपुत्री और आपके चरणों से यह घर पवित्र हुआ, अब आपकी सेवा से शरीर को धन्य करूँगा।

'परन्तु', लल्ल ने कहा—"आप अपनी पत्नी तक से यह परिचय गुप्त रक्खेंगे और इनका पुरुष-परिचय ही देंगे।"

श्रेष्ठिवर ने स्वीकार किया।

३

अतिथियों के विश्राम की व्यवस्था करके उपगुप्त ने अपनी पत्नी से जाकर कहा—कुन्द ! मेरे स्वर्गीय पिता के मित्र हमारे अतिथि हुए हैं, उनका आतिथ्य हमें जैसे बने, करना होगा।

कुन्द ने कुण्ठित होकर कहा—परन्तु स्वामिन् ! घर में तो कुछ भी सामग्री नहीं है—अतिथि खायँगे क्या ?

उपगुप्त चुपचाप पत्नी के मुँह की ओर देखने लगे। उन्होंने कहा—कुन्द ! क्या किसी भी तरह तुम व्यवस्था नहीं कर सकतीं ? क्या और कोई आभूषण है ?

"नहीं"

"तब कोई अनावश्यक पात्र बन्धक रख दिया जाय।"

"यही होगा और उपाय क्या है?"

उपगुप्त ने विकल होकर कहा--परन्तु कुन्द, तुम्हीं इसकी व्यवस्था कर देना, जिसमें हमारा नाम न प्रकट हो।

कुन्द ने कुछ कहने को मुख खोला ही था कि द्वार से कुछ मनुष्यों ने श्रेष्ठि को पुकारा। श्रेष्ठि ने बाहर आकर देखा, ८-१० राजकर्मचारी हैं और साथ में है ऋणदाता महाजन। उसने कर्कश स्वर में कहा--श्रेष्ठि उपगुप्त! हमारा चुकता-पावना अभी चुकाओ अथवा बन्दीगृह में जाओ।

श्रेष्ठिवर ने घबरा कर विनयपूर्वक कहा—मित्र! आप तो जानते ही हैं, मैं इस समय कितने कष्ट में हूँ; फिर आज अभी मेरे घर में पूज्य अतिथि आए हैं। श्रेष्ठिवर, कुछ और धैर्य धारण करो, वरना बड़ा अनर्थ हो जायगा।

ऋणदाता ने अवज्ञा से हँस कर कहा—मैं ऐसा मूर्ख नहीं, रक़म भी छोटी नहीं, अब और धैर्य किस आशा पर? दस सहस्र अभी दो, अन्यथा ये कर्मचारी तुम्हें बन्दी कर लेंगे।

उपगुप्त ने विवश होकर कहा—तब मुझे कुछ क्षण का तो अवकाश दीजिए, मैं अपने अतिथियों और पत्नी की कुछ व्यवस्था कर दूँ।

प्रधान राजकर्मचारी ने आगे बढ़ कर कहा--महोदय! इसके लिए हम लोग बाध्य नहीं। क्या आप कृपापूर्वक अभी वह धन देते हैं?

"नहीं, धन अभी नहीं है!"

"तब सैनिको, इन्हें बाँध लो।"

क्षण भर में सैनिकों ने श्रेष्ठि को बाँध लिया। विवाद सुन कर लल्ल और राजकुमारी बाहर आ गए थे। कुन्द भी सब व्यापार देख रही थी। सभी विमूढ़-वत् खड़े रहे। वे लोग श्रेष्ठिवर को बाँध कर ले चले। कुन्द पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़ी।

राजकुमारी शीला ने दौड़ कर उसे उठाया और फिर लल्ल को बुला कर धीरे से कहा--महानायक! इस विपन्नावस्था में हमें श्रेष्ठि और उनकी पत्नी की पूर्ण शुश्रूषा करनी होगी। कुन्द को शैया पर सुला कर राज-कुमारी लल्ल से कुछ परामर्श करने लगी। कुमारी की बात सुन कर लल्ल ने चौंक कर कहा—यह तो अत्यन्त भयानक है।

"चाहे जो कुछ भी हो।"

"नहीं; कुमारी! ऐसा न होने पाएगा।"

"यही होगा महानायक।"

"कुमारी, सोच लो, राजमाता इसे कदापि न स्वीकार करेंगी।"

"हम लोगों का कर्तव्य है कि उन्हें सहमत करें।"

"पर यह भारी दुस्साहस है।"

"मैंने उसे करने का निश्चय कर लिया है। श्रेष्ठिवर को छुड़ाने का और उपाय नहीं, जब वे उन्हें बाँध रहे थे, उसी समय मेरे मन में यह विचार आया था।"

महानायक गम्भीर दुःख और विचार में मग्न हो गए।

४

घटना का विवरण सुनकर महारानी ने कहा—श्रेष्ठि-वर को इस कष्ट से प्राण देकर भी मुक्त करना होगा महानायक!

राजकुमारी ने उतावली से कहा—माता, वह मैं करूँगी?

"तू क्या करेगी?" रानी ने बालिका को दृष्टि गाड़ कर देखा।

"भैया से मेरी आकृति बिलकुल मिलती है, क्यों महानायक?"

"तब?"

"और पुरुष-वेश में मैं, भैया ही मालूम होती हूँ—यह तुम बारम्बार कह चुकी हो।"

"हाँ, पर इससे क्या?"

"भैया को जीवित या मृत पकड़ाने वाले का पुरस्कार दस सहस्र है, इतना ही तो श्रेष्ठिवर को चाहिए? मैं अपने को भैया की जगह पकड़ाए देती हूँ—उन रुपयों से श्रेष्ठिवर मुक्त हो जायँगे।" इतना कह कर शीला खिल-खिला कर हँस पड़ी।

रानी पर वज्र गिर पड़ा, वह घबरा कर बोलीं—वाह, यह कैसी बात?

"क्यों?"—कुमारी ने गम्भीर होकर कहा।

"यह तेरा पागलपन है।"

"नहीं माँ, मैंने सब बातें विचार ली हैं।"

"क्या विचार ली हैं ?"

"इस काम से दो बातें होंगी—एक तो श्रेष्ठि मुक्त होंगे, दूसरे भैया की खोज-जाँच बन्द हो जायगी और वे सुरक्षित रह सकेंगे ?"

"परन्तु ये बर्बर सैनिक तेरा कैसी निर्दयता से घात करेंगे ? चक्रवर्ती तक जीवित भी पहुँच गई तो वह शत्रु क्या तुझे छोड़ेगा ?"

न जाने क्यों चक्रवर्ती का नाम सुन कर शीला का मुख लाल हो आया। उसने कहा—माता ! चक्रवर्ती की आज्ञा जीवित पकड़ने ही की है। जीवित पकड़ कर वे बध नहीं करेंगे, चक्रवर्ती के सम्मुख ले जायँगे। वहाँ पहुँच कर मैं चक्रवर्ती से समझ लूँगी।

"न, शीला ! मैं तुझे इतना साहस न करने दूँगी। चलो, हम लोग अन्यत्र चलें।"

शीला ने आँखों में आँसू भर कर कहा—तब कलिङ्ग-राजपट्ट महिषी इतनी स्वार्थी होगईं कि जिसकी उदारता और आश्रय प्राप्त किया, उसे विपन्नावस्था में छोड़ जायँगी ?

लल्ल अब तक चुप थे। वे बोले—माता ! शीला ही की बात रहे। विशिष्ट अवसरों पर विशिष्ट पुरुष अपना प्रताप और त्याग प्रकट करते हैं। शीला का त्याग उसके वंश के उपयुक्त है। जो हो, श्रेष्ठिवर को छुड़ाना ही उचित है।

"तब क्या और कुछ उपाय नहीं ?"

"नहीं"

राजमाता गम्भीर चिन्ता में मग्न हुईं। शीला ने कहा—माता ! मैं कलिङ्ग की राजकुमारी हूँ, शस्त्र-विद्या और अश्वारोहण में कुशल हूँ, पिता जी ने मुझे कुछ शिक्षा भी दी है, इस प्रकार मैं एक बार सम्राट् के सम्मुख जाकर स्वयं उसके इस पातक और अत्याचार के सम्बन्ध में पूछना चाहती हूँ। इससे अवश्य हमारा कुछ कल्याण होगा !

अन्त में रानी ने सिर हिलाया। शीला ने कहा—तब महानायक, तुम कुन्द से कह दो कि तुम्हारे घर में कलिङ्ग का राजकुमार छिपा हुआ है, उसे पकड़ा कर श्रेष्ठि को छुड़ा दो।

लल्ल ने कहा—यह कर्त्तव्य मुझे पालन करना होगा। राजकुमारी ! तुम स्वयं ही यह साहस करो।

कुमारी ने कहा—नहीं, तुम्हीं उससे कहो, जिससे उस पर भेद प्रकट न होने पाए।

* * *

लल्ल का प्रस्ताव सुनकर कुन्द भय, आश्चर्य और दुःख से विमूढ़ हो गई। उसने कहा—क्या कलिङ्ग का राजकुमार ?

"जी हाँ, वह युवक वही कलिङ्ग-राजकुमार है, जिसके सिर का मूल्य दस सहस्र है। इतने ही में तो श्रेष्ठिवर छूट जायँगे।"

"और मैं उन्हें पकड़ा दूँ—अतिथि को, जो मेरे पति के पूज्य नहीं, उनके स्वर्गीय पिता के पूज्य हैं ? वृद्ध महोदय, आपसे ऐसे नीच प्रस्ताव की आशा न थी। आप कदाचित् अपने ही स्वामी से विश्वासघात कर रहे हैं।"

"नहीं, श्रेष्ठिवधु ! राजकुमार स्वयं यह इच्छा कर रहे हैं !"

"राजकुमार स्वयं इच्छा कर रहे हैं ?"—कुन्द ने विमूढ़ होकर पूछा ?

"जी हाँ, उन्हीं का प्रस्ताव तो मैं लाया हूँ।"

"तो कुमार की उदारता और त्याग धन्य है।" उनके चरणों में मेरा प्रणाम कहिए। परन्तु यह अधर्म मुझसे न होगा। हे ईश्वर ! पवित्र अतिथि से विश्वासघात करने की आप सम्मति दे रहे हैं !"

"विश्वासघात कैसे ?"

"नहीं, नहीं, कदापि नहीं।"

शीला ने निकट आकर कहा—देवी ! मेरी यह तुच्छ भेंट आपको स्वीकार करनी ही पड़ेगी। आप पतिप्राणा, साध्वी और धर्मात्मा हैं, आपका सौभाग्य अचल रहे। श्रेष्ठिवर महान् पुरुष हैं, मुझे प्रसन्नता होगी कि मेरा शरीर मेरे मित्र के काम आया।

कुन्द ने रोते-रोते कहा—राजकुमार ! ऐसी अधर्म की बात मुख से न निकालिए।

"अधर्म नहीं, देवी ! मुझे तो स्वयं सम्राट् के निकट जाना ही है।"

"परन्तु मैं यह कुकृत्य न करूँगी ?"

"तब श्रेष्ठिवर मुक्त किस प्रकार होंगे ?"

"जैसी प्रभु की इच्छा होगी, वही होगा।"

"प्रभु की इच्छा ही से यह सुयोग हाथ लगा है ?"

"नहीं, नहीं, कदापि नहीं।"

"तब मुझे स्वयं यह कार्य करना होगा?"

"नहीं; राजकुमार! मुझे अधम न बनाइए!"

"देवी! और कोई उपाय ही नहीं है, फिर यों मुक्त होने पर श्रेष्ठिवर कुछ न कुछ उपाय मुझे मुक्त करने का कर ही लेंगे, और यह तो मैं स्वयं कर रहा हूँ। सोचिए तो, श्रेष्ठिवर को वहाँ कितना कष्ट और वेदना होगी!"

कुन्द व्यथित और खिन्न-सी कुमार की ओर देखती रही।

कुमारी ने कहा—लल्ल! तब तुम यह सन्देश राज-द्वार पर ले जाओ और नगराध्यक्ष को बुला लाओ।

लल्ल ने प्रस्थान किया। कुन्द ने बहुत बाधा दी। कुछ ही क्षण में सैनिकों सहित नगराध्यक्ष ने आकर कुमारी को बाँध लिया और १० तोड़े वहीं गिन कर उसे ले चले। कुन्द और महारानी दोनों पछाड़ खाकर गिर पड़ीं।

५

"किस महोदय ने इतनी कृपा की कुन्द! धन्य है वह प्रभु। परन्तु हाँ, अतिथियों का ठीक सत्कार तो हुआ? ओह! तुम्हारा मुख इतना सफ़ेद क्यों हो रहा है कुन्द! तुम इतनी दुःखी क्यों हुई? अरे! रोने लगीं?"

कुन्द चुपचाप पति के चरणों में गिर कर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। उपगुप्त ने कहा—कुन्द! अब इतना दुःख क्यों, तुम उस कृपालु मित्र का नाम तो बताओ। मैं तनिक उसे धन्यवाद दे आऊँ। कुन्द ने रोते-रोते सब घटना बयान कर दी।

मानों सहस्र बिच्छुओं ने दंश किया। उन्होंने तड़प कर कहा—क्या कहा? कुमार को पकड़ा कर यह धन प्राप्त किया?

कुन्द निरुत्तर रही।

"कुन्द! कुन्द! यह पातक तुमने किया? मेरा जन्म, जीवन, यश, धर्म—सभी नष्ट किया। कुन्द! तुम ऐसी थीं? यह तो आशा न थी। हाय! बड़ा अनर्थ—बड़ा अधर्म हुआ!" इतना कह कर श्रेष्ठिवर विकल हो इधर से उधर टहलने लगे।

लल्ल ने धीरे-धीरे प्रवेश करके कहा—श्रेष्ठिवर! कुमार ने स्वेच्छा से यह काम किया है, कुन्द का इसमें तनिक भी अपराध नहीं। ये तो अन्त तक सहमत न हुई थीं।

उपगुप्त ने रोते-रोते कहा—महानायक! अब क्या होगा? मैं कैसे इस पातक से उऋण होऊँगा? कैसे मैं अब प्राण देकर कुमार को लाऊँ? और आप जैसे विवेकी वृद्ध के रहते कैसे यह कुकर्म होने पाया? कुन्द! स्त्रियों से इसी लिए ज्ञानी पुरुष घृणा करते हैं, स्त्रियाँ इतनी तुच्छ हैं, इतनी स्वार्थी हैं? हा—हा! कुन्द! तुम सब स्त्रियों में अधम रहीं—तुमने अपने स्वार्थ के—पति के स्नेह के लिए पवित्र अतिथि को × × × कहते-कहते श्रेष्ठिवर धरती पर गिर गए।

धीरे-धीरे रानी ने घर में प्रवेश करके कहा—श्रेष्ठिवर! क्या आपको यह विश्वास नहीं होता कि हम तीनों में से किसी को इस घटना का दुःख नहीं? फिर कुमार की तो यह इच्छा ही थी। वह वैसे भी सम्राट् की सेवा में जाता। इसके सिवा कुन्द किसी तरह अपमान की पात्री नहीं। जैसे आप धर्मात्मा, विनयी और महान् हैं, वैसी ही आपकी पत्नी भी हैं। श्रेष्ठिवर! शोक त्याग कर अब यह उपाय सोचना चाहिए कि हमारा कर्तव्य क्या है?

उपगुप्त उठ बैठे। उन्होंने कहा—सोचिए! मैं किस प्रकार कुमार को ला सकता हूँ?

तीनों व्यक्तियों में सलाह हुई। अन्त में यही निर्णय हुआ कि उन सैनिकों के साथ, जो कुमार को ले जा रहे हैं, हम लोग भी राजधानी को चलें। वहाँ जैसा कुछ होगा, देखा जायगा। यह निर्णय करके उपगुप्त ने कुन्द की ओर देख कर स्निग्ध स्वर में कहा—कुन्द, आओ! इन पूज्य अतिथियों के सम्मुख हम-तुम भी कुछ परामर्श कर लें! यह तो तुमने देखा ही कि यह धन कितने अपमान और अधर्म की जड़ है। आओ, हम मन, वचन, कर्म से इस धन का त्याग करें, मैंने श्रेष्ठि पद त्यागा, मैं दरिद्र-राज हुआ! आज से धनमात्र मेरे लिए लोष्ठवत् हुआ और तुम्हारे लिए भी, कुन्द!

कुन्द ने चुपचाप स्वीकृति दी।

"अच्छा, अब आज से हम लोग न धन छुएँगे, न धन से हमारा सम्बन्ध रहेगा। अब दूसरी बात सुनो! यह घनिष्ठ सम्बन्ध भी—जैसा कि हमारे-तुम्हारे बीच में है—दुःख और पाप का मूल है। देखो, इसी घटना ने कितने दुःख और पाप का प्रदर्शन कराया! आओ, हम लोग इस सम्बन्ध का भी विच्छेद करें! कुन्द, आज से हम लोग पति-पत्नी नहीं! तुम्हारा कल्याण हो, तुम

जगत में विचरण करो, जगत की सेवा करो। मैं कुमार को छुड़ा कर तब यह करूँगा।" इतना कह कर उपगुप्त उठे! कुन्द वज्राहत की तरह धरती पर गिर गई। उपगुप्त ने उधर देखा भी नहीं! वे अति गम्भीर मुद्रा में घर से बाहर हुए।

६

ग्रीष्म की ज्वलन्त लू और उत्ताप की तनिक भी परवा न करके सैनिक ने पर्वत की उपत्यका में घोड़ा छोड़ दिया था। आगे-आगे एक हरिण प्राण लेकर भाग रहा था। युवक सैनिक के धनुष पर वाण चढ़ा था। उसे उसने कान तक खींच कर मारा। वाण हरिण के पैरों में लगा। पर वह प्राण-सङ्कट को समझ कर गर्म-गर्म रुधिर-विन्दु टपकाता आहत होकर उपत्यका के एक पार्श्व में भाग कर छिप गया। हरिण को सम्मुख न देख कर सैनिक घोड़े से उतर पड़ा—वह रक्त-विन्दु के चिन्ह देखता-देखता आगे बढ़ा।

सम्मुख एक घने अश्वत्थ के वृक्ष के नीचे शीतल छाया में एक वृद्ध भिक्षु बैठा था। उसकी गोद में वही हरिण था—वह यत्न से उसके पैर से तीर निकाल कर उसके घाव पर पट्टी बाँध रहा था।

युवक ने वहाँ पहुँच कर क्रोध से कहा—तू कौन है, पाखण्डी?

"तुम्हारा कल्याण हो!"—वृद्ध भिक्षु ने सिर उठा कर कहा।

"पर तू है कौन?"

"मैं भिक्षु हूँ!"

"भिक्षु, तेरा यह साहस कि मेरे आखेट को हाथ लगा सके? इसे अभी छोड़ दे!"

"क्यों?"

"यह मेरा आखेट है!"

"यह तेरा किसलिए है?"

"मैंने इसे मारा है?"

"मारने वाला किसी का स्वामी नहीं हुआ करता, शत्रु होता है; और शत्रु का कोई अधिकार नहीं होता। स्वामी होता है बनाने वाला, उसी का अधिकार भी होता है।"

"तू बड़ा धृष्ट प्रतीत होता है।"

"साधु के लिए विनय और धृष्टता क्या है?"

"तब इसे छोड़ दे—यह मेरा शिकार है।"

"नहीं, यह मेरा आश्रित दीन पशु है।"

"इसे मैंने मारा है।"

"इसकी मैंने रक्षा की है।"

सैनिक का क्रोध और तेज मानो व्यर्थ जा रहा था। ऐसे धृष्ट प्रश्नोत्तर का उसे अभ्यास न था। परन्तु वृद्ध साधु का प्रभाव उस पर पड़ रहा था। उसने कहा—तू इसका क्या करेगा?

"मैं इसे नीरोग करके छोड़ दूँगा, यह फिर आनन्द से विचरण करेगा।"

"तू अवश्य इसका मांस खायगा। तू धूर्त है, मेरा आखेट हड़पना चाहता है।"

"युवक सैनिक, शान्त हो, हिंसक से रक्षक बड़ा है। जो व्यक्ति एक कीड़ा भी नहीं बना सकता, वह इतने बड़े पशु को कैसे मारता है? इसका उसे अधिकार क्या है? हम लोग भक्षक नहीं, रक्षक हैं। निकट ही हमारा विहार है, वहाँ बहुत से बौद्ध भिक्षु हैं, जो प्राणियों की सेवा-शुश्रूषा करते हैं। रोगी जीव-जन्तु की चिकित्सा की जाती है और प्रेम और दया हमारा धर्म है।"

युवक चुपचाप खड़ा रहा। उसने कहा—मैं तेरा वह विहार देखूँगा?

वृद्ध ने चलने का आयोजन करके कहा—मेरे साथ आओ। उसके पास और भी कई रोगी और घायल पशु थे। उन सबको उसने उठाया। सैनिक ने कहा, इतना भार तुम नहीं उठा सकते, लाओ यह हरिण मैं ले चलूँ।

युवक का स्पर्श पाते ही हरिण छटपटाने लगा।

भिक्षु ने कहा—उसे मत छुओ। उसे तुमसे घृणा है। भिक्षु ने उसे गोद में ले लिया। वह शिशु की तरह उसकी गोद में सो गया।

दोनों चले। युवक का गर्व भङ्ग हुआ। वह सोचता जा रहा था—मैं समझता था, पृथ्वी भर के राजमुकुट मेरे चरणों में गिरते हैं, और सभी मेरी प्रतिष्ठा करते और मुझसे भय खाते हैं। पर यह तुच्छ पशु भी मुझसे घृणा करता है? इस वृद्ध भिक्षु में ऐसा क्या गुण है, जो यह मूक प्राणी भी इस पर विश्वास करता, प्रेम करता और आत्मसमर्पण करता है? हाय! मैं इतना अधम हूँ। एक बार उसने रक्त और धूल से भरे अपने

वस्त्रों को देखा। एक गम्भीर श्वास ली और नीचा सिर किए साधु के पीछे-पीछे चला।

७

वन-प्रदेश के एक घने कुञ्ज में वह विहार था। वहाँ पूर्ण शान्ति और आनन्द का राज्य था। उत्तप्त सूर्य की किरणें उस दुर्भेद्य वृक्ष-राशि को पार कर नहीं सकती थीं। उस सघन छाया में बहुत सी पर्ण-कुटियाँ बनी थीं, जहाँ भिन्न-भिन्न आयु के वीतराग बौद्ध साधु ज्ञानचर्चा में मग्न थे। रोगी और घायल पशु और मनुष्यों की चिकित्सा हो रही थी। सहस्रों पशु-पक्षी निर्भय किलोलें कर रहे थे। वृद्ध के पहुँचते ही दो साधुओं ने दौड़ कर वृद्ध का बोझ ले लिया और वे उनके उपचार में लगे। युवक सैनिक विमूढ़-सा खड़ा यह सब देख रहा था। ऐसी शान्ति और आनन्द उसने अपने जीवन में नहीं देखा था। एक नई भावना उसके हृदय में उदय हो रही थी—वह कुछ सोच रहा था। एक नवीन तेज उसके नेत्रों में दीप्त हो रहा था।

एक प्रचण्ड जयघोष हुआ—'महामोगलीपुत्र तिष्य की जय!' युवक ने दृष्टि उठा कर देखा—सम्मुख एक तेज-मूर्ति चली आ रही है। प्रशान्त मुखमण्डल, गम्भीर गति, महान् व्यक्तित्व। युवक ने सोचा, यह क्या? यही महाप्राण भगवान् मोगलीपुत्र तिष्य हैं, जिनके विषय में सुना गया है कि उनके दर्शन होना दुर्लभ है। और जिसे एक बार उनके दर्शन हो जाते हैं, वह धन्य समझा जाता है! युवक एकटक उस महान् शरीर को देखता रहा।

भगवान् तिष्य ने युवक के निकट आकर कहा—चक्रवर्ती सम्राट की जय हो!

एक अतर्क्य शक्ति के प्रभाव से सम्राट ने साधुवर के चरणों में सिर झुका दिया। भिक्षु-मण्डल अवाक् रह गया। भगवान् तिष्य ने कहा—सम्राट! इस वृद्ध भिक्षु ने अज्ञान में यदि कुछ अनाचार किया हो तो क्षमा करें—चक्रवर्ती से इसका परिचय नहीं।

सम्राट ने कहा—प्रभो! आज मैं कृतकृत्य हुआ। साम्राज्य के प्रचण्ड सम्मान और परिच्छद में मुझे ऐसी शान्ति नहीं मिली, जो आज मैं इस तपोवन में प्राप्त कर रहा हूँ। भगवान् के दुर्लभ दर्शन पाकर मैं और कृतार्थ हुआ। प्रभो! कलिङ्ग के युद्ध में मैंने एक लक्ष प्राणियों का वध किया है। अब देखता हूँ, वध करने से रक्षा करना श्रेष्ठ है। मैं समझता था कि पृथ्वी के महाराजा भी मेरा सम्मान करते हैं। परन्तु आज अधम प्राणी को घृणा करते देख कर मेरे मन में प्रबल आत्म-ग्लानि उदय हुई है। प्रभो! रक्षा करें। यह किङ्कर आपकी शरण है।

"सम्राट!" भगवान् तिष्य ने कहा—"आपकी धर्म में अभिरुचि हुई, यह बहुत शुभ हुआ। भगवान् बुद्ध ने भी इसी प्रकार अकस्मात् ज्ञान प्राप्त किया था। शक्ति और अधिकार द्वारा अधीनों को वश में करने की अपेक्षा प्रेम और दया से प्राणि-मात्र का जीतना श्रेयस्कर है। शरीर को अधीन करने की अपेक्षा आत्मा को वशीभूत कर लेना सच्ची विजय है। आप पृथ्वी के चक्रवर्ती सम्राट हैं; परन्तु जब आप पृथ्वी की आत्माओं को वशीभूत कर लेंगे, तो आपकी अक्षय विजय होगी। आप अमर होंगे।

सम्राट् ने नत मस्तक होकर कहा—भगवन्! मुझे सद्ज्ञान प्रदान कीजिए। मैं प्रेम और दया द्वारा प्राणियों की आत्मा को विजय करूँगा। क्षमा मेरा शस्त्र, दया मेरी नीति, और त्याग मेरा शासन होगा।

'तथास्तु' तब सम्राट् आपका नाम 'चण्डाशोक' के स्थान पर 'देवानां प्रिय' प्रसिद्ध होगा। आपका कल्याण हो, आप आज से देवताओं को प्रिय हुए। कहो—

"बुद्धं सरणं गच्छामि!
"धम्मं सरणं गच्छामि!
"संघं सरणं गच्छामि!"

सम्राट् ने पृथ्वी पर घुटने टेक कर उपरोक्त पंक्तियों को दुहराया। मोगलीपुत्र तिष्य ने पवित्र अभिसिञ्चन करके कहा—समाट् देवानां प्रिय अशोक की जय हो! आओ सम्राट्, अब मैं आपको आपके आचार्य का परिचय कराऊँगा, जिनसे गुरुवत् आपको व्यवहार करना होगा; जो परम वीतराग, महान् धर्मात्मा और एकनिष्ठ महापुरुष हैं, जिनकी आत्मा में महान् बुद्ध का निवास है। वे सदैव आपके साथ रहकर आपको कल्याण का मार्ग बतावेंगे और आपको सुमति की शिक्षा देंगे। उनके वचन का अनुसरण करके आप पृथ्वी पर और स्वर्ग में अक्षय कीर्ति प्राप्त करेंगे।

आचार्य तिष्य इतना कह कर पीछे को मुड़े। एक घने

कुञ्ज में छोटी सी कुटिया के द्वार पर जाकर पुकारा—आचार्य उपगुप्त ! सम्राट् आपकी सेवा में समुपस्थित है ?

आचार्य उपगुप्त—वही श्रेष्ठिराज उपगुप्त—पीत परिधान किए, मुण्डित सिर, विनम्रमुख कुटी से बाहर आए। सम्राट् अशोक ने पृथ्वी पर गिर कर उनको प्रणाम किया और कहा—आचार्य ! मुझे सन्मार्ग बताइए।

आचार्य उपगुप्त की मुद्रा भङ्ग न हुई, न उन्होंने दृष्टि उठाई ! उनके नेत्रों में अश्रुधारा प्रवाहित हुई। आचार्य तिष्य ने कहा—आचार्य ! सम्राट् आपके तत्त्वावधान में पृथ्वी पर धर्म-विस्तार करेंगे—आप ही सम्राट् को सन्मार्ग बताने योग्य हैं, आप सम्राट् का प्रणाम ग्रहण कीजिए।

आचार्य उपगुप्त ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—देवानां प्रिय सम्राट् की जय हो। परन्तु आचार्य ! सम्राट् का भार मुझ पर न डालें, सम्राट ! आचार्य तिष्य के रहते और कौन सम्राट् को सन्मार्ग बतावेगा ?

भगवान् तिष्य ने कहा—आचार्य ! आत्मा पर सदैव ही अज्ञान का आवरण रहता है और उस आवरण को भेद करने के लिए एक रहस्यविद् की आवश्यकता है। आप ही वह रहस्यविद् हैं। आचार्य ! अपने शिष्य का कल्याण चिन्तन कीजिए—मेरा कार्य समाप्त हुआ। यह कह कर मोगलीपुत्र तिष्य अन्तर्धान हुए। सम्राट् और उपगुप्त क्षण भर विमूढ़ रहे। अब आचार्य उपगुप्त ने नेत्र उठ कर कहा—चक्रवर्ती, भीतर कुटी में पधार कर कृतार्थ करें।

दोनों महान आत्माएँ कुटी में प्रविष्ट हुई।

८

आचार्य उपगुप्त ने कहा—हे सम्राट् ! यह दुःख उत्तम सत्य है। जन्म दुःख है, नाश दुःख है, रोग दुःख है, मृत्यु दुःख है, जिन वस्तुओं से हम घृणा करते हैं, उनका उपस्थित होना दुःख है। जिन वस्तुओं की हम अभिलाषा करते हैं, उनका न मिलना दुःख है। सारांश यह कि जीवन की पाँचों कामनाओं में लगे रहना दुःख है। दुःख के कारण का उत्तम सत्य यह है। लालसा पुनर्जन्म का कारण है, जिसमें सुख और लालच होते हैं। दुःख के दूर होने का उत्तम सत्य यह है—वह लालसा के पूर्ण निरोध से समाप्त होता है। यह निरोध किसी कामना की अनुपस्थिति से, लालसा को छोड़ देने से, लालसा के बिना कार्य चलाने से, उसकी मुक्ति पाने से, और कामना का नाश होने से होता है। सम्राट् ! क्या आप इस गूढ़ तत्व को समझे ?

"नहीं भगवन् !"

"सम्राट् ! जीवन दुःख है, जीवन और उसके सुखों की लालसा दुःखों का कारण है। उस लालसा के मर जाने से दुःख का अन्त होता है। और पवित्र जीवन से यह लालसा मर जाती है। पवित्र जीवन आठ विषयों में विभाजित किया गया है :—

"(१) सत्य विश्वास, (२) सत्य कामना, (३) सत्य वाक्य, (४) सत्य व्यवहार, (५) जीवन-निर्वाह के सत्य उपाय, (६) सत्य उद्योग, (७) सत्य विचार, (८) सत्य ध्यान।

"ये आठ विधियाँ आठ ग्रन्थों के समान हैं। शुद्ध विचार और शुद्ध विश्वासों को सीखना और उनका सत्कार करना चाहिए, उच्च उद्देश्य और कामनाएँ हृदय के नेत्र के सामने सदा उपस्थित रहनी चाहिए। प्रत्येक वाक्य में सत्यता, सुशीलता होनी चाहिए, और व्यवहार में सत्यता और पूर्ण शुद्धता। जीवन का उपाय इस प्रकार ढूँढ़ कर ग्रहण करना चाहिए, जिससे किसी जीवित या चैतन्य प्राणी को कोई कष्ट न हो। भलाई करने में तथा दया, सुशीलता और परोपकार के कार्यों में जीवन के अन्त तक निरन्तर उद्योग करना चाहिए। मन और बुद्धि से चेतन और कार्य-तत्पर होना चाहिए। शान्त और धीर विचार से जीवन को सुख प्राप्त होता है। यह कामना, मनःक्षोभ और जीवन की लालसा को जीतने का मार्ग है।

"सम्राट् ! यह तथागत बुद्ध की शिक्षाओं का सार है। आपने समझा ?"

"हाँ, आचार्य ! परन्तु संसार में सुखी कौन है ?"

"जिसने अपनी यात्रा समाप्त कर ली है, और शोक को छोड़ दिया है, जिसने अपने को सब ओर से स्वतन्त्र कर लिया है, जिसने सब बन्धनों को तोड़ डाला है, उसके लिए कोई दुःख नहीं। वह सुखी है।"

"आचार्य ! मैं सुखी नहीं हूँ। मैं सुखी होने की चेष्टा करूँगा। मुझे साधारण उपदेश प्रदान करें—मुझे कर्तव्य-पथ बतावें।"

आचार्य ने कहा—सम्राट् ! सन्मार्गी को किसी जीव

को नहीं मारना-मरवाना चाहिए और यदि दूसरे लोग उसे मारें तो उसे सराहना नहीं चाहिए। सब जन्तुओं को, चाहे वे बलवान् हों वा बलहीन—उन सबके मारने का विरोध करना चाहिए।

उसे किसी की वस्तु भी नहीं लेनी चाहिए, जिसे कि वह जानता है कि वह दूसरे की है और जो उसे दी नहीं गई है। ऐसी वस्तु उसे दूसरों को भी न लेने देना चाहिए, और जो लें उन्हें न सराहना चाहिए। उसे सब प्रकार की चोरी का त्याग करना चाहिए।

उसे व्यभिचार का त्याग जलते हुए कोयले के समान करना चाहिए। यदि वह इन्द्रियों का निग्रह न कर सके, तो उसे पर-स्त्री से व्यभिचार तो न करना चाहिए।

उसे झूठ न बोलना चाहिए, न दूसरों से बुलवाना चाहिए। जो झूठ बोले उन्हें न सराहना चाहिए। उसे सब प्रकार असत्य का त्याग करना चाहिए।

उसे कोई मादक द्रव्य न सेवन करना चाहिए—न दूसरों को पिलाना चाहिए, न पीने वालों को सराहना चाहिए।

सम्राट्! ये पाँच शील हैं, इनका सद्धर्मी को अवश्य पालन करना चाहिए।

"भगवन्! मैं आज से इनका पालन करूँगा।"

"सम्राट्! भगवान् बुद्ध कहते हैं—

"घृणा कभी घृणा से नहीं जीती जाती। घृणा प्रीति से बन्द होती है। यही इसका स्वभाव है।

"जो हमसे घृणा करते हों, उनके बीच हमें घृणा-रहित हो प्रीतिपूर्वक रहना चाहिए।

"क्रोध को प्रीति से जीतना चाहिए। बुराई को भलाई से विजय करना चाहिए। लालच को उदारता से और झूठ को सत्य से जीतना चाहिए।

"उस मनुष्य के उत्तम और फलहीन शब्द, जो उनके अनुसार कार्य नहीं करता, उस सुन्दर फूल की नाईं हैं जो रङ्ग में सुन्दर, परन्तु गन्धरहित हैं।

"भलाई करने वाला जब संसार छोड़ कर परलोक को जाता है, तो उसे वहाँ उसके भले कर्म उसके सम्बन्धी और मित्रों की नाईं उसका स्वागत करते हैं।

"वह मनुष्य बड़ा नहीं है, जिसके सिर के बाल पक गए हैं, जिसकी अवस्था बड़ी हो गई है—वह तो वृथा ही वृद्ध कहलाता है। वह मनुष्य, जिसमें सत्य, पुण्य, प्रीति, आत्मनिरोध और संयम है—वह, जो अपवित्रता से रहित और बुद्धिमान् है—वही बड़ा है।"

आचार्य उपगुप्त ने इतना कह कर ऊपर नेत्र उठाए! फिर दोनों हाथ उठाकर कहा—सम्राट् का कल्याण हो! देवानां प्रिय! प्रियदर्शी सम्राट् की धर्म-विजय हो। हे सम्राट्! इस महान् धर्म की दीक्षा आपने ली, अब आप देश-देशान्तरों में धर्म-विस्तार कीजिए।

सम्राट् ने नत-मस्तक होकर 'जो आज्ञा' कहा, और बिदा हुए।

६

सन्ध्या का समय था। सम्राट् वाटिका में धीरे-धीरे गम्भीर मुख-मुद्रा किए टहल रहे थे। समस्त भारत के चक्रवर्ती सम्राट् के सम्मुख ऐसी गहन समस्या न आई थी। उनका चिन्तनीय विषय था कलिङ्गराज का दुर्धर्ष अपघात। वे सोच रहे थे, मैंने एक हरे-भरे सुखी राज्य का अकारण विध्वंस किया। कलिङ्गराज न जाने कहाँ कैसे मारे गए। उनके युवराज भी पता नहीं कहाँ हैं। और उनका परिवार न जाने किस दुर्दशा में है। कैसे मैं इस पातक से उऋण होऊँगा।

सम्राट् के ज्ञान-चक्षु खुल गए थे और उन्हें महान् दया-धर्म का तत्व प्रकट हो गया था। वे सोच रहे थे कि किस प्रकार इस दुष्कर्म का प्रतिशोध किया जाय।

हठात् एक दण्डधर ने निकट आकर अभिवादन करके कहा—प्रभो! कलिङ्ग राजकुमार को लेकर महानायक आए हैं।

अशोक ने उत्फुल्ल होकर कहा—उन्हें अभी यहाँ ले आओ। क्षण-भर ही में कलिङ्ग राजकुमार को लेकर महानायक ने सम्राट् का अभिवादन करके राजकुमार से कहा—कुमार! सम्राट् का अभिवादन करो!

कुमार ने हँस कर कहा—महानायक, आपकी आज्ञा की आवश्यकता नहीं, आपके सौजन्य के लिए, जो आपने मार्ग भर में मुझ पर किया, मैं आभारी हूँ। अब मैं सम्राट् के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए, स्वयं सोच-समझ लूँगा। आप सम्राट् की आज्ञा लेकर जा सकते हैं।

महानायक ने विमूढ़ होकर राजकुमार के इस प्रगल्भ भाषण को सुना। वह खड़ा रह गया। सम्राट् भी चकित हुए। उन्होंने दृष्टि गाड़ कर राजकुमार की मुख-मुद्रा देखी।

कुमार ने एक कटाक्षपात करके मुख नीचा कर लिया और कहा—सम्राट्, महानायक को आज्ञा प्रदान करें तो मैं सम्राट् का अभिवादन करूँ।

सम्राट् ने महानायक को जाने का सङ्केत किया और कुमार के निकट आकर कहा—कलिङ्ग-राजकुमार! अभिवादन की आवश्यकता नहीं। मैंने तुम्हारे राज्य और परिवार के साथ बड़ा अन्याय और अत्याचार किया। मैंने तुम्हें इसलिए बुलाया है कि अब तुम्हारे पूज्य पिता का पता लगाना कठिन है राजकुमार! तुम चाहो तो मुझे उस अपराध का दण्ड दो। परन्तु मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे शत्रु न समझो प्रिय राजकुमार! क्या तुम मेरा अनुरोध रक्खोगे? छद्मवेशी राजकुमार कण्टकित होकर दो क़दम पीछे हट गए। उन्होंने धरती पर घुटने टेक कर सम्राट् का अभिवादन किया और कहा—चक्रवर्ती की जय हो! राजा राजाओं से युद्ध करते हैं—जय-विजय एक पक्ष की होती ही है। सम्राट् को विजित राज्य के बन्दी राजपुत्र के प्रति इतने शिष्टाचार की आवश्यकता नहीं

"नहीं राजकुमार! अकारण ही मैंने उस समृद्धि-शाली राज्य को भ्रष्ट किया और अब अकारण ही कुमार! तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में अपूर्व प्रेम उमड़ रहा है—यह क्या बात है? अच्छा अपना हाथ तो मुझे दो प्रिय—परम प्रिय कुमार?"

कुमार ने पीछे हट कर कहा—नहीं श्रीमान्! यह सेवक इस सम्मान के योग्य नहीं। श्रीमान् को भी शत्रु-पुत्र का इतना सत्कार करना उचित नहीं।

"शत्रु-पुत्र नहीं, कुमार! मैंने निश्चय किया है कि मैं तुम्हारे पिता का राज्य तुम्हें युद्ध-क्षति सहित लौटा दूँगा, इसके सिवा और भी जो माँगो, मैं दूँगा।"

"सम्राट् क्या सत्य ही प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं?"

"हाँ, हाँ, प्रिय कुमार! मैं वचन देता हूँ।"

"सम्राट् मुझे मेरी माँगी वस्तु देंगे?"

"अवश्य। चाहे वह सिंहासन ही क्यों न हो!"

"सिंहासन ही तक बस?" छद्मी कुमार ने कटाक्ष-पात किया।

"प्राण भी, शरीर भी!" प्यारे कुमार! तुम्हारी चितवन कितनी प्यारी है। लाओ अपना हाथ तो दो।"

"तब आपके प्राण और शरीर मेरे हुए? श्रीमान् फिर विचार लें। यह तुच्छ हाथ उपस्थित है।"

सम्राट् उसे पकड़ने को लपके। आचार्य उपगुप्त ने उच्च स्वर से पुकार कर कहा—"चक्रवर्ती! तनिक धैर्य!" चक्रवर्ती ने देखा—आचार्य दो व्यक्तियों के साथ आ रहे हैं। दोनों व्यक्ति दूर खड़े रह गए। आचार्य आगे बढ़े। सम्राट् ने आगे बढ़ कर आचार्य के चरणों में प्रणाम करके कहा—आचार्य! कलिङ्ग-राजकुमार जितेन्द्र उपस्थित हैं। मैंने इन्हें इनका राज्य और युद्ध-क्षति तो दी ही है, अपना शरीर और प्राण भी दिया—ये इसके स्वामी हैं। कुमार! आचार्य को प्रणाम करो।

छद्मवेशी कुमार आगे बढ़ कर आँखें फाड़ फाड़ कर आचार्य उपगुप्त की ओर देखने लगे! आचार्य ने आगे बढ़ कर कुमार के मस्तक पर हाथ धर कर कहा—कल्याण! कल्याण!

छद्मवेशी राजकुमार के ओंठ फड़क कर रह गए। उसके मुख से अस्पष्ट स्वर में निकला—"श्रेष्ठि...व...र" आचार्य ने सम्राट के निकट पहुँच कर मधुर मुस्कान के साथ कहा—चक्रवर्ती ने बड़ी ही बुद्धिमत्ता से अपना प्राण और शरीर सुपात्र को दिया। हाँ, अब आप उस पवित्र हाथ का ग्रहण करिए! इतना कह कर आचार्य ने सम्राट् का हाथ पकड़ लिया।

सम्राट् चकित हुए। कुमार का मुख लाल हो गया। वे दो क़दम पीछे हट गए। आचार्य ने कहा—कलिङ्ग महाराज कुमारी शीला! तुमने स्वयं ही यह क्रय-विक्रय किया है, अब सङ्कोच क्यों?

सम्राट् के मुख से निकल गया—क्या कहा? कलिङ्ग महाराज कुमारी शीलादेवी! आचार्य, आप क्या कहते हैं?

आचार्य ने उधर ध्यान न देकर कहा—महाराज-कुमारी, अब अपना छद्मवेश त्याग दीजिए और तनिक निकट आइए! इतना कह कर उन्होंने कुमारी का हाथ सम्राट के हाथों में पकड़ा दिया।

दोनों का हृदय-स्पन्दन क्षण भर को रुक गया। कुछ शान्त होने पर सम्राट् ने कहा—आचार्य! कुकर्म का यह सुफल क्यों?

आचार्य ने कहा—सम्राट्! यह सुकर्म का फल है। देखिए, वह कलिङ्गराज और महाराज कुमार खड़े हैं, उनका स्वागत करें।

सम्राट् दौड़ कर कलिङ्गराज के पैरों में झुके।

कलिङ्ग-महाराज महेन्द्र ने उठा कर उन्हें छाती से लगा लिया। दोनों महानृपति तनमन से एक हो गए। इसके बाद आचार्य ने कुमारी के त्याग और साहस का सारा विवरण कह सुनाया। पिता ने पुत्री को छाती से लगाया और अपने हाथ से उसे सम्राट् के हाथों में सौंप कर कहा—सम्राट्! यद्यपि आप इसे भी मेरे देने से पूर्व ही ले चुके, परन्तु फिर भी मेरे हाथ से इसे एक बार ग्रहण कीजिए।

सम्राट् ने नत-मस्तक होकर कुमारी का पाणिग्रहण किया। साम्राज्य भर में आनन्दोत्सव की धूम होगई। कलिङ्गराज बनवासी हुए और महाराजकुमार जितेन्द्र कलिङ्ग की गद्दी पर विराजित हुए।

दमयन्ती-विलाप

[रचयिता—प्रोफ़ेसर मणिराम जी गुप्त]

(१)

सिधारे तुम कहाँ हे प्राणप्यारे,
रही जीती तुम्हारे ही सहारे!
कहो अपराध क्या है नाथ मेरा,
भला क्यों छोड़ भागे साथ मेरा!!

(२)

तुम्हारे बिन कहो कैसे रहूँगी,
विरह की वेदना कैसे सहूँगी!
भला क्योंकर न व्याकुल मीन होवे,
न तड़पे क्यों अगर जलहीन होवे!!

(३)

विजन बन में मुझे तुम छोड़ भागे,
जहाँ कोई न पीछे है न आगे!
बिलखती आपकी वन बीच दासी,
दया आती न क्या मुझ पर ज़रा सी!!

(४)

फटी जाती है मेरी हाय! छाती,
अगर फटती मही उसमें समाती!
कहाँ जाऊँ, किसे मैं अब बुलाऊँ?
कहाँ निज प्राणधन को हाय! पाऊँ!!

(५)

पड़ी जब बेख़बर मैं सो रही थी,
बिलखती भाग्य पर निज रो रही थी!
कहो क्या आपने मन में विचारा,
गए जो खींच यों मुझसे किनारा!!

(६)

खुला जब हा! अचानक नेत्र मेरा,
गया छा सामने मेरे अँधेरा!
अहो मुझ पर अचानक वज्र टूटा,
मेरा दुर्दैव ने सर्वस्व लूटा!!

(७)

अरे तू मृत्यु! क्यों जल्दी न आती,
विरह से जल रही है हाय! छाती!
निगोड़ी तू भला क्यों देर करती,
न आकर क्यों भला मम दुःख हरती!!

(८)

धरा फट जा तुझी में मैं समाऊँ,
तड़पती हूँ तनिक आराम पाऊँ!
कुटिल दुर्दैव! होती नीति तेरी,
किसी पर भी न होती प्रीति तेरी!!

(९)

न कोई हाय! तेरा भेद पाता,
मुझे तू किस लिए यों है सताता?
सदा से नाम है बदनाम तेरा,
सदा विपरीत होता काम तेरा!!

(१०)

विचरती थी कभी मैं सुख-सदन में,
रही हूँ ठोकर खा आज वन में!
कभी मम दुःख का अन्त होगा?
कभी दर्शन पुनः तव कन्त! होगा!!

विचार-रश्मियाँ

[ले० प्रोफ़ेसर विश्वमोहनकुमार सिंह जी, एम० ए०, बी० एल०]

" Wiser than wisdom is thy simple lore,
..........................Grow thou, flower ! "
—E. Arnold.

"बुद्धिमत्ता से भी उत्कृष्ट तेरी सरल कहानियाँ हैं, ऐ सुमन, तेरी वृद्धि हो !"

इन दिनों स्त्री-सम्बन्धी प्रश्न बड़ा ही जटिल, किन्तु मनोरञ्जक हो रहा है। जिस प्रकार स्वराज्य और स्वतन्त्रता के विचार लोगों के हृदय को उद्विग्न कर रहे हैं, उसी प्रकार स्त्रियों का स्वरूप और उनका जीवन में स्थान भी विचारशील जनों को बेचैन कर रहा है। जब तक हम अन्धकार में थे—मोहावच्छन्न थे, हमने उन्हें ठुकराया था, तुच्छ दृष्टि से देखा था। पर इस जाग्रति-काल में, संसार-सम्पर्क के समय में, जब हमारी आँखें खुली हैं—हमने देखा, जिसे हम सर्प समझे बैठे थे, वह सर्प नहीं, पुष्पों की माला है; काँच का ढेर नहीं, मोतियों की लड़ी है; काम का क्रीड़ास्थल नहीं, आत्मा की अनन्त पिपासा बुझाने के लिए शान्ति और आनन्द का स्रोत है। उन्हें भुलाना न होगा। उन्हें भूल कर ही हम अपने को भूल गए हैं—जन्म-सिद्ध अधिकारों से वञ्चित हो गए हैं; जीवन सुमन-विहीन कण्टकों की क्यारी बन गया है, सलिल-विहीन विशद बालुकाराशि बन गया है।

सबसे पहला प्रश्न स्त्रियों के स्वरूप के विषय में है। यहाँ स्वरूप से मतलब बाह्य सौन्दर्य से नहीं, बल्कि उनके अन्तर्तम भाव से है। हमारा सनातन आदर्श था कि स्त्रियाँ शक्ति हैं, पवित्रता की मूर्ति हैं, प्रेम की उद्गम हैं। ये ही भाव हमारी दुर्गा, पार्वती, लक्ष्मी, राधा, सीता सावित्री, दमयन्ती द्वारा प्रदर्शित किए गए हैं। हम अन्ध-परम्परा में विश्वास रखने के कारण अपनी अज्ञानावस्था में भी उन्हें शक्ति और माता के नाम से विभूषित करते रहे, परन्तु जिस प्रकार हमने सच्चे ईश्वर को खोकर पत्थरों में ही अपनी भावनाओं को परिमित कर दिया, उसी प्रकार उनकी अविच्छिन्न शक्ति को भूल कर उन्हें अबला बना दिया, उनकी चाँद-सी पवित्रता को भूल कर उन्हें दुर्गुणों का केन्द्र बना दिया, उनके स्वर्गीय स्नेह को भूल कर उन्हें काम-किल्लोलिनी बना दिया। इससे बढ़ कर दुःख की बात और क्या हो सकती है? जड़ों को काट कर कोई फल की आशा नहीं कर सकता, आँखों को फोड़ कर कोई देखने की आशा नहीं कर सकता।

दूसरा प्रश्न है स्त्रियों की शिक्षा का। इसका इतिहास भी बड़ा ही मनोरञ्जक है। जब पहले-पहल यह प्रश्न उठा, जन-समुदाय में खलबली मच गई। कितने लोग स्त्री-शिक्षा का नाम मात्र सुन कर ही सिहर उठे और कितने सुधारकों पर मनमानी गालियों की बौछारें पड़ने लगीं। दस ही वर्ष पूर्व की बात है, मैंने धुरन्धर पण्डितों को कहते सुना था कि स्त्रियों को शिक्षा देना मानो सर्प को दूध पिलाना है, उन्हें सभाओं में जोश के साथ कहते सुना कि "ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।" स्त्रियों के हृदय में सदा आठ अवगुण वर्तमान रहते हैं; मनु के आधार पर वे उन्हें शूद्र बताते थे, अतएव विद्याध्ययन की अनधिकारिणी कह कर उनकी घोर निन्दा किया करते थे। उन्हें ज़रा भी ख़्याल न था कि वे निर्लज्जता-पूर्वक अपनी ही माँ और बहिनों की धज्जियाँ उड़ा रहे हैं, जिनके प्यार में वे पले और जिनके पवित्र आशीर्वादों से वे फूले-फले हैं। यही भारत के विकट अधःपतन का समय था। सन्तोष की बात है कि समय के परिवर्तन से लोगों की सुरुचि भी बढ़ी। अब सभी एक स्वर से कह रहे हैं कि स्त्रियों की शिक्षा आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। अब हमारे सामने सवाल है कि स्त्रियों की शिक्षा की पद्धति क्या होनी चाहिए? क्या पुरुषों और स्त्रियों की शिक्षा-शैली एक ही होनी चाहिए या दो भिन्न प्रकार की? यदि भिन्न हो तो भिन्नता किन-किन विषयों में? यह प्रश्न बड़ा गहन है और सैडलर कमीशन (Sadler Commission) तक ने स्पष्ट रूप से इस पर कोई निश्चित सम्मति नहीं प्रकट की। मैं सम्यक् रूप से इस विषय पर किसी आगामी अङ्क में लिखूँगा, यहाँ मैं इतना ही कह देना चाहता हूँ कि इसका उत्तर इसी पर निर्भर है कि स्त्रियों का जीवन पुरुषों के जीवन से

बिलकुल भिन्न है वा नहीं। यदि सर्वथा भिन्न है, तो भिन्न प्रकार की शिक्षा अवश्य होनी चाहिए। पर यदि घनिष्ठ पारस्परिकता का सम्बन्ध हो और यदि जीवन, प्रकृति और जीवों के, स्त्री और पुरुषों के आकर्षण एवं प्रतिकार्य (Re-action) का एक अटूट तारतम्य हो, यदि जीवन पृथक्-पृथक् वायु-विभक्त विभागों (Air-tight compartments) में नहीं चलाया जा सकता, तो कहना पड़ेगा कि दोनों की शिक्षा सभी विषयों में एक ही प्रकार की होनी चाहिए। फिर विशेषज्ञ होना अपनी-अपनी व्यक्तिगत रुचि पर निर्भर है।

अनेक लोगों का कहना है कि स्त्रियों को गृह-सम्बन्धी विषयों की शिक्षा ही पर्याप्त होगी। पर मेरा नम्र निवेदन है कि क्या इसी से उनका जीवन पूर्णता प्राप्त कर सकेगा? क्या इसी में हमारा कल्याण है? हम फिर भी अपने पुराने आदर्श को भूलते हैं और सङ्कुचित भावों को अपने हृदय में स्थान देते हैं। हमारी माता दुर्गा आजकल की मिट्टी की मूर्ति नहीं, वह शक्ति की प्रतिमा हैं, अनीति और दुराचार की नाशिनी हैं, शिव अथवा कल्याण की नहीं। क्योंकि ग्रन्थ कहता है, ज्योंही उनका पद धराशायी शिव पर पड़ता है, वे चौंक कर खड़ी हो जाती हैं। हमारी लक्ष्मी विभव की स्वामिनी हैं, इससे उनके अर्थशास्त्रज्ञ और व्यवसाय-सम्बन्धी गुणों की संरक्षिणी होने का भास होता है। हमारी सरस्वती ललित कलाओं की अधिष्ठात्री हैं। फिर हम कैसे कहें कि हमारी स्त्रियाँ केवल सरस्वती हो सकती हैं, लक्ष्मी और दुर्गा नहीं। इसके प्रमाण भी भरे पड़े हैं। यदि अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा स्त्रियों को न दी गई होती, तो हम कैकेयी, झाँसी की रानी अथवा जोन ऑफ़ आर्क (Jone of Arc) को रणक्षेत्र में कैसे पाते? पुराने समय को छोड़िए, यदि आजकल की अवस्था का भी मनन करते हैं तो पता चलता है कि स्त्रियाँ सभी क्षेत्रों में अपनी कुशलता एवं प्रवीणता दिखा रही हैं। यदि मैं भूलता नहीं तो टर्की ही में एक स्त्री सेनानी के पद पर नियुक्त की गई है, और पुलिस में रूस, इङ्गलैण्ड, अमेरिका आदि देशों में बहुत सी युवतियाँ योग्यता-पूर्वक काम कर रही हैं। अमेरिका की बहुत सी स्त्रियों ने थोड़ी पूँजी से बिना किसी सहायता के करोड़पति बन कर अपनी व्यवसाय-बुद्धि का परिचय दिया है। वक्तृत्व-क्षेत्र में एक ओर लॉयड जार्ज (Lolyd George) हैं, तो दूसरी ओर डॉक्टर बिसेण्ट (Dr. Besant) हैं; शारीरिक क्षेत्र में एक ओर राममूर्ति हैं तो दूसरी ओर ताराबाई; राजनीति-विज्ञान में भी महारानी एलिज़ाबेथ तथा नूरजहाँ का नाम अमर रहेगा। काव्य-संसार में भी, भारत ही को लीजिए, मीराबाई, तरुलता दत्त, सरोजिनी, महादेवी वर्मा, सुभद्रा देवी इत्यादि का स्थान कुछ कम नहीं है। आजकल के विश्वविद्यालयों के परीक्षा-फलों के देखने से पता चलता है कि स्त्रियाँ गणित-जैसे कठिन शास्त्रों में भी अपनी प्रखरता का परिचय दे रही हैं। मुझे तो कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं मालूम होता, जहाँ वे कृतकार्य न हो सकती हों।

पर प्रश्न हो सकता है कि इससे जीवन में उच्छृङ्खलता के प्रवेश करने का भय है। किन्तु यह सर्वथा भ्रान्ति है। सभी सब काम नहीं कर सकते। व्यक्ति-विशेष अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार अपना क्षेत्र बना लेता है। पर सभों को इस चुनाव के लिए बराबर अवसर न देना भयङ्कर अन्याय है। मेरा शुद्ध विचार है कि पुरुष को जैसे राजनीति, विज्ञान एवं रण-शास्त्र में दक्ष होना चाहिए, वैसे ही ललित-कलाओं और गृह-सम्बन्धी विषयों में भी। उसी प्रकार स्त्रियों को जैसे ललित-कलाओं एवं मातृत्व-सम्बन्धी विषयों में पारङ्गत होना चाहिए वैसे ही राजनीति, विज्ञान एवं युद्ध-शास्त्र में भी; क्योंकि ज्ञान के बिना परस्पर सहानुभूति नहीं होती और सहानुभूति के बिना प्रेम और आनन्द स्वप्न-मात्र है। यदि स्त्रियों को राजनीति तथा सामाजिक संस्थाओं से अलग रक्खा जायगा तो फल यह होगा कि कल-कारख़ानों में काम करने वाली स्त्रियों, बच्चों तथा बाल-विधवाओं पर वही अत्याचार होता रहेगा जो आजकल हो रहा है, स्त्रियों का हिन्दू क़ानूनों में वही असहाय स्थान बना रहेगा जो अब है। अतएव जीवन के सभी क्षेत्रों में स्त्री-पुरुषों का अधिकार बराबर है, और उन्हें उनकी प्रसुप्त विभूतियों के विकाश के लिए बराबर अवसर न देना अत्याचार नहीं तो और क्या हो सकता है?

एक और प्रश्न, जो इस समय बहुत ज़ोर पकड़ रहा है, वह है स्त्री-पुरुषों अथवा पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध का। उनका परस्पर व्यवहार किस प्रकार का होना चाहिए

जिसमें प्रेम-ग्रन्थि अकाट्य बनी रहे और जीवन-नौका स्नेह-वीचि पर अविघ्न विचरती रहे। बरनर्ड शॉ (Bernard Shaw) तथा अन्यान्य अङ्गरेज़ी लेखकों से प्रभावान्वित हो, हिन्दी लेखकों में भी स्पष्टवादिता कुछ आने लग गई है। सुतरां, ये लोग भी इस गूढ़ विषय पर अधिक से अधिक स्पष्ट शब्दों में अपने विचारों को व्यक्त करने लगे हैं। वास्तविकता के दृष्टि-विन्दु से यह अच्छा अवश्य है, क्योंकि साफ़ कहने ही से मनोमालिन्य दूर होता है, पर साहित्य के दृष्टि-कोण से किञ्चित् भावनिरोध आवश्यक है, क्योंकि किसी भी कारण से सौन्दर्य का आदश क्षत-विक्षत नहीं किया जा सकता। सत्य हो, पर सुन्दर भी अवश्य हो, साथ-साथ कल्याणकर भी हो, तभी साहित्य का ध्येय ऊँचा रह सकता है, तभी यह अनश्वर भी हो सकता है।

जो हो, इस विषय पर बहुत से ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं। श्री० कृष्णकान्त मालवीय की 'सोहागरात' और 'मनोरमा के पत्र' हिन्दी-संसार में नई चीज़ें हैं। 'निर्वासित' का 'स्मृति-कुञ्ज' और 'कमला के पत्र' तो उच्च कोटि के मनोवैज्ञानिक साहित्य हैं। इसके अतिरिक्त श्री० सन्तराम जी के लेखों तथा अन्यान्य आख्यायिकाओं ने इस विषय पर विशेष प्रकाश डालने की चेष्टा की है। इनकी शिक्षाओं का मूल्य चाहे जो हो, पर यह एक अत्यन्त गूढ़ रहस्य का निर्देश करता है जो अब तक शिष्टता के परदे में छिपा था। आजकल की वह वैवाहिक प्रथा, जिसमें दो युवक-हृदयों के जोड़ने का उत्तरदायित्व केवल ब्राह्मणों के पञ्चाङ्गों तथा गुरुजनों के विचारों पर रहा है, कभी सुखकर नहीं हुई है। केवल जाति-बहिष्कार एवं अन्यान्य कठोर दण्ड-विधानों के आधार पर ही इस अनिवार्य प्रेम का क़ानून जारी रहा। किन्तु अब आलोक के इस युग में पता चलता है कि शान्तिपूर्ण धरा के नीचे विषाद का ज्वालामुखी धधक रहा था। यदि ऐसा न होता तो पति-पत्नी के सुखी होने का प्रश्न लोगों के हृदय पर इतना अधिकार न जमाता। अतएव यह प्रश्न विवाह के प्रश्न की ओर जा पहुँचता है। जब तक इसका निर्णय नहीं हो जायगा, तब तक पति-पत्नी के सुखी होने का प्रश्न जड़ को छोड़ पत्तों को सींचने के ही तुल्य है।

यह समस्या इतनी जटिल एवं कोमल है कि स्वतन्त्र विचार प्रकट करने में हिचकिचाहट होती है और भय भी लगता है। पाश्चात्य देशों को देखने से पता लगता है कि उनकी वैवाहिक रीति में स्वच्छन्दता की मात्रा अत्यधिक है। कोर्टशिप (Courtship) की प्रथा में आन्तरिक प्रेमोत्पादन की प्रवृत्ति न होकर, बाध्य होकर कामुक प्रेम करने की प्रवृत्ति ही अधिक होती है। युवकों के प्रेमाश्रुओं और अबाधित हृदयाञ्जलि से व्यथित हो कितनी ही युवतियाँ प्रेम न होने पर भी विवाह-पाश में परिबद्ध हो गई हैं। एक ही समय विभिन्न युवकों की उथल-पुथल करने वाली आहों से कितनी युवतियों ने विह्वल हो अपने स्वर्गीय सौन्दर्य-सौरभ को यों ही वायु में लुटा दिया है। कितनों ही को अपनी चञ्चलता और अदम्य आवेश के कारण प्राणान्त तक करना पड़ा है। फिर जब हम उनके तलाक़ के मुक़दमों की संख्या देखते हैं तो कहना पड़ता है कि उनका गार्हस्थ्य जीवन कभी आदर्श नहीं हो सकता। जब हम भारत की ओर आते हैं तो और भी चकाचौंध हो जाती है। क्या गान्धर्व विवाह श्रेयस्कर है? पर शकुन्तला के दुखों से हृदय दहल उठता है। क्या स्वयम्बर इस समय सम्भव है? क्या स्वतन्त्र-प्रेम हो—बिजली की तरह आने वाला प्रेम! जैसा कि पार्वती ने किया था, सावित्री ने किया था, दमयन्ती ने किया था। कम से कम मैं इस बात को ज़ोर देकर कहूँगा कि प्रेम में ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं, कशमकश नहीं, जाति-पाँति नहीं; यह हृदय अथवा आत्मा की एक चिनगारी है, जो चाहे जिसे भस्मीभूत कर दे। शेक्सपियर ने इसी बात को कितनी सुन्दरता से कहा है—"Who has ever loved that loved not at first sight"—अर्थात्, आज तक किसने प्रेम किया जिसके हृदय में चार आँखें होते ही प्रेम की उत्पत्ति नहीं हो गई? इतिहास इसका साक्षी है, नाम गिनाने की आवश्यकता नहीं। सभी युवक-हृदय जानते हैं कि आज तक जितने आदर्श-प्रेमी हो गए हैं, सभी पलक लगते न लगते एक दूसरे के हो गए, ऐसे हुए कि द्वेषी संसार उनका विच्छेद न कर सका, दुष्ट काल भी जिन्हें जुदा न कर सका, वे अनन्त की गोद में रहे, एक ही होकर रहे। हृदय फड़क उठता है, दमयन्ती बिना इन्द्रियों के उत्तेजित हुए ही मुग्ध हो गई, केवल राजहंस की प्रशंसा ही ने उसकी आत्मा की वीणा को प्रमोदित कर दिया, उसकी प्रसुप्त प्रेम-रागिनियों को जगा दिया। नल-दमयन्ती का सम्मिलन ही नहीं, सम्मिश्रण

हो गया। दान्ते (Dante) ने बियट्रीस (Beatrice) को अपने जीवन भर में एक ही बार, एक ही क्षण के लिए देखा था, पर उसका सारा जीवन बियट्रीसमय हो गया और उसके प्रस्फुटित हृदय की अलौकिक मधुरिमा उसी लावण्यमयी की कोमल क्षणिक स्मृति की अर्चना करती रही। यही प्रेम है, इसी में जीवन का सौरभ है। इसे कोर्टशिप ला नहीं सकती, माता-पिता की संरक्षकता पा नहीं सकती, ब्राह्मणों की गणना उगा नहीं सकती! सुतरां विवाह का मूल-मन्त्र प्रेम, देश, काल, धर्म तथा जाति-पाँति से परे है। इसका नियम अबाधित है, अपरिहार्य है, चाहिए केवल हृदय को तोलने की शक्ति, साफ़-साफ़ देखने की शक्ति।

यदि इसी भव्य और उदात्त नींव पर विवाह-भवन बनाया जाय, तो इसके सुन्दर और सुखकर होने की सम्भावना है। उसी अवस्था में आजकल की पुस्तकों द्वारा प्रेमकला की शिक्षा की आवश्यकता न होगी, क्योंकि प्रेम वह कला है, जिसे प्रकृति स्वयं अपने जीवों को सिखा कर भेजती है; यह आत्मा की वह परम कमनीय तथा सूक्ष्म ज्योत्स्ना है जिसे कोई भी कलाविद या वैज्ञानिक सिखा नहीं सकता। माता अपने बच्चे को प्यार करने के लिए सिखाई नहीं जा सकती; भाई को अपने बहिन को प्यार करना सिखाया नहीं जाता, उसी प्रकार पति-पत्नी का परस्पर स्नेह सिखाया नहीं जा सकता। यह बाह्य कारवाइयों से सम्बन्ध नहीं रखता, इसका सम्बन्ध है किसी अगोचर अन्तर्तम तार से, जिसे प्रेमालु हृदय ही अनुभव कर सकते हैं, हृदयङ्गम कर सकते हैं, पर बजा नहीं सकते।

आजकल के कितने ही लेखों और गल्पों में पढ़ा है, नवयुवतियों को नाज़-नख़रे, नोंक-झोंक और कामुकता को जगाने वाले चोंचले करने की शिक्षा दी गई है। इन लेखकों के मत में नवयुवतियों की लज्जाशीलता ही पुरुषों को वेश्यावृत्ति की ओर ले जाती है। पर मेरा उनसे कहना है कि अपने छिछोरपने को वे सुन्दर घरों में न ले जायँ, प्रेमपूर्ण कुलवतियों को वेश्या न बनाएँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वेश्याओं को लोगों को लुभाने के लिए अपने शतशः सुकुमार भावों का प्रदर्शन करना पड़ता है, क्योंकि वे प्रेम से रिक्त हैं। अतएव अपने को आकर्षक बनाना उनके लिए अनिवार्य हो जाता है। पर जिन्हें एक बार भी प्रेम की दिव्य सुरभि का अनुभव हो चुका है, वे जानते हैं कि वाराङ्गनाओं के इन भावों में कोई सार नहीं, उनके नाज़-नख़रों में कोई सुधा नहीं, उनके भ्रूकुटि-सञ्चालन में कोई स्वाद नहीं। वे काग़ज़ के फूलों के समान हैं, मिट्टी के फलों के समान हैं। उन लेखकों को युवकों की प्रकृति सुधारना चाहिए, न कि निष्पाप, निष्कलङ्क हृदयों को पङ्कनद की ओर ढकेलना! क्या स्त्रियों को ही केवल पुरुषों की वासनाओं की पूर्ति करनी चाहिए वा पुरुषों को भी स्त्रियों की प्रकृतिजनित चेष्टाओं का आदर करना चाहिए? मैं तो समझता हूँ इन बाहरी साधनों का कोई प्रयोजन ही नहीं। यदि विवाह पारस्परिक प्रेम के आधार पर स्थापित किया जाय, तब तो एक दूसरे के दृष्टिपात से ही, नहीं-नहीं स्मृति-मात्र से हीं दोनों में एक नवीन शक्ति सञ्चरित हो जायगी; तभी रमणियों का आनन्द-स्रोत होना, शक्ति का उद्गम-स्थल होना सार्थक है। फिर रही परस्पर लुभाने की बात; मुझे हँसी आती है जब इसे भी सिखाने का लोग अधिकार दिखाते हैं और प्रकृति को भी वे कृत्रिम बनाने की चेष्टा करते हैं। जिस समय दो प्रेमाकुल हृदयों का सङ्गम होता है, उस समय उनके सुन्दर नृत्य को, उनके आनन्द-व्यथित बुदबुदों को, अधर-पल्लवों के अनन्त बार सम्मिलन को, उनके स्नेह-सने नेत्रों के मधुर गान को प्रकृति के सिवा कुशल से कुशल कौन नटवर सिखला सकता है? हाँ, जब दो हृदयों का स्रोत दो भिन्न-भिन्न ओर प्रवाहित हो रहा है, तो निस्सन्देह उन्हें मिलाने के लिए कृत्रिम नाज़-नख़रों के नाले की आवश्यकता होती है। पर विवाह, विवाह नहीं रह जाता, केवल उद्दण्ड पाशविक वासनाओं की तृप्ति का एक साधन-मात्र रह जाता है!

सुतरां यह स्पष्ट है कि हमारे समाज में संशोधन की नहीं, क्रान्ति की आवश्यकता है। कोई अपने अङ्गों को काट कर सुखी नहीं हो सकता। स्त्री-समुदाय को कुचल कर हम भी उत्थान की आशा नहीं कर सकते। हमें उन्हें शिक्षित करना होगा और उनको विकाश के लिए पूर्ण अवसर देना होगा, ताकि उनका जीवन-पुष्प मुकुलित होकर ही न रह जाय, वरन् पूर्णरूप से प्रस्फुटित होकर अपने सौन्दर्य से, सौरभ से, आलोक से, इस धरणी को स्वर्गभूमि बना दे। उचित शिक्षा होने ही से

कुरीतियाँ क्रमशः शिथिल होती जायँगी और स्त्री-पुरुष का परस्पर सम्बन्ध भी अधिकाधिक स्नेहास्पद होता जायगा। इङ्गलैण्ड के जगद्विख्यात् नाट्यकार बरनर्ड शॉ ने अपने नाटकों द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि स्त्री-पुरुष के बलात् आकर्षण में प्रेम का लेश मात्र भी नहीं है; यह प्रकृति की युक्ति है, जिससे वह अपने को जीती-जागती रख सके, और अपनी संख्या बढ़ा सके; पर मैं कहूँगा कि यह प्रकृतिवाद केवल आधा सत्य है, क्योंकि इस सबसे परे "एकोऽहंद्वितीयो नास्ति" की भावना, उस परम एकत्व की वेदना जो) शिव-पार्वती के अर्द्धाङ्गी रूप में दिखलाया गया है) रह-रह कर कभी स्वप्नवत्, तो कभी नीरव हाहाकार की भाँति हमारे हृदयों में उठा करती है। हाँ, कितने ही इसे सुनी-अनसुनी कर देते हैं, पर कितने इस अनपेक्षित, सुदूर, उस पार की ध्वनि से विह्वल हो उठते हैं और लाख प्रयत्न करने पर भी उसकी रेख मिटा नहीं सकते।

पर आजकल के वाध्य-प्रेम में कोई सार नहीं। प्रत्येक विवाहित पुरुष और स्त्री इस बात से परिचित है। पति-पत्नी के प्रेम का नाट्य होता है; दोनों एक दूसरे को प्यार करने का भास मात्र करते हैं, पर वास्तव में प्यार नहीं करते। मैं नहीं कहता कि सबों की यही दशा है, पर बहुतों की है, इसमें संशय नहीं। जिन्होंने 'चन्द्रशेखर' 'हृदय की परख' और 'हृदय की प्यास' पढ़ा है, वे जानते हैं कि सच्चे प्यार और प्यार के भास में कितना दारुण युद्ध होता है। यह युद्ध चलता रहेगा अवश्य, पर हमारा कर्त्तव्य है कि इन युद्धों की संख्या और भीषणता कम करने की चेष्टा करें। और यह तभी सम्भव है जब हम स्वच्छ, स्वतन्त्र प्रेम के पूर्ण विकाश को अवसर दें। बिना इसके जीवन मरुभूमि है, श्मशान है, और इसी के सम्मोहन प्रकाश में संसार के काँटे फूल होंगे, इसी की प्राणान्तक धूमराशि जीवनदायिनी ज्योत्स्ना बन जायगी।

क्या हमारे युवक निष्पक्ष हो इसका मनन करेंगे?

आना

[रचयिता—श्रीमती महादेवी जी वर्मा]

(१)

जो मुखरित कर जाती थी,
मेरा नीरव आवाहन।
मैंने दुर्बल प्राणों की,
वह आज सुला दी धड़कन॥

(२)

थिरकन अपनी पुतली की—
भारी पलकों में बाँधी।
निस्पन्द पड़ी हैं आँखें—
बरसाने वाली आँधी॥

(३)

जिसके निष्फल जीवन ने,
जल-जल कर देखीं राहें।
निर्वाण हुआ है देखो,
वह दीप लुटा कर चाहें॥

(४)

निर्घोष घटाओं में छिप,
तड़पन चपला की सोती।
झञ्झा के उन्मादों में—
घुलती जाती बेहोशी।

(५)

करुणामय को भाता है,
तम के परदों में आना।
हे नभ की दीपावलियो,
तुम पल भर को बुझ जाना॥

राजकुमारी मैयाँ का वेदनापूर्ण सन्देश
(ख़ास 'चाँद' के लिए)
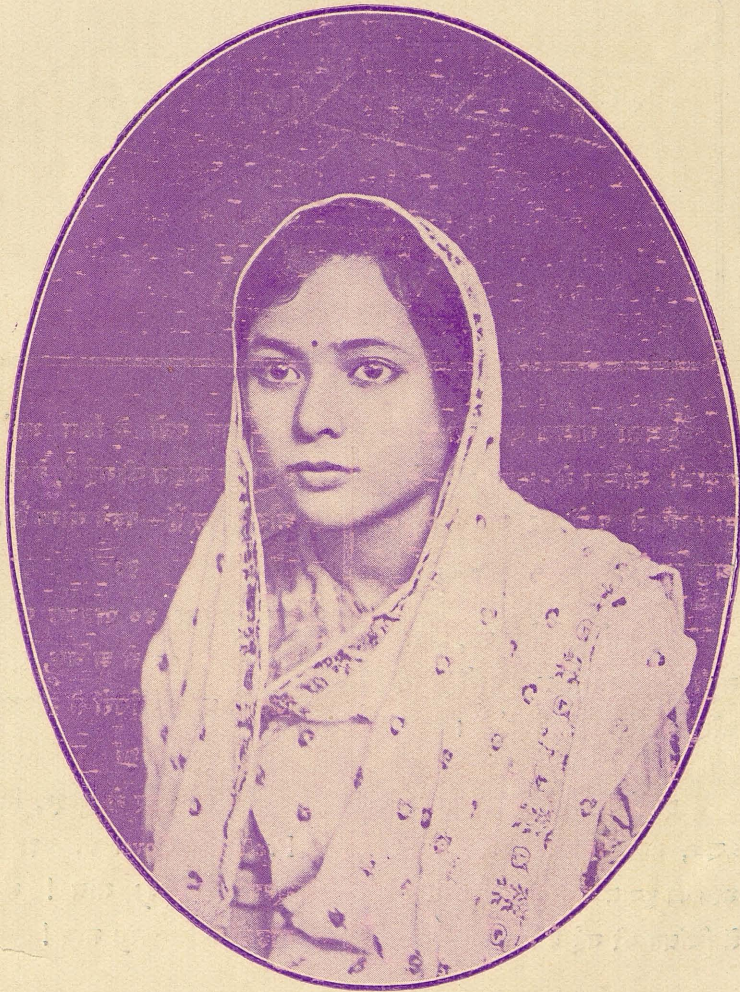
बहिनो तथा भाइयो !

यदि भिन्न-भिन्न इजलासों में किए हुए मेरे रहस्योद्घाटन का कुछ भी मूल्य है और यदि अत्याचार-पीड़ित स्त्रीत्व के रक्षणार्थ भाई खड्गबहादुरसिंह बिष्ट द्वारा प्रदर्शित त्याग की उदार भावनाएँ अभी तक व्यर्थ नहीं गई हैं, तो मातृत्व तथा मनुष्यत्व के पवित्र नाम पर आप लोगों से मेरी यही विनय है कि उन घृणित एवं कुत्सित सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध तुरन्त युद्ध ठान दीजिए, जिनसे कन्याओं का क्रय-विक्रय करने वाले नारकीय नर-पिशाचों को तरह-तरह से प्रोत्साहन मिलता है !

—राजकुमारी मैयाँ

सौन्दर्य

[ले० श्री० चन्द्रगुप्त जी वार्ष्णेय, बी० एस्-सी०]

प्रकृति की लीला विचित्र है। उसके गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करना, तथा विकट उलझनों को सुलझाना मानवी शक्ति से परे है। अनेक स्थलों में हमको केवल कल्पना के आश्रित होना पड़ता है। सौन्दर्य भी एक ऐसा ही जटिल विषय है। कहने को तो हम वस्तुओं को सुन्दर अथवा कुरूप कह जाते हैं, परन्तु हममें से अधिकांश इस बात से अनभिज्ञ हैं कि सुन्दरता की कुञ्जी स्वयं हमारे हृदय में ही है। यह कुञ्जी हमारे ही मस्तिष्क के साँचे में ढली है, अतएव प्रत्येक ताले को खोलने के लिए उपयुक्त नहीं है। दूसरों को सुन्दर प्रतीत होने वाली वस्तुएँ हमको भी सदा वैसी नहीं प्रतीत होतीं। ऐसा क्यों होता है? तथा सुन्दर वस्तुओं की ओर हमारा चित्त स्वतः ही क्यों आकर्षित होने लगता है? इन्हीं विषयों की मीमांसा करने के अभिप्राय से, हमने प्रस्तुत लेख में, सौन्दर्य की परिभाषा एवं परिपाटी की कुछ मनोवैज्ञानिक व्याख्या पाठकों के सम्मुख रखने की चेष्टा की है। आशा है कि यदि और कुछ नहीं तो इसके द्वारा पाठकों की विचार-शक्ति को मनन करने के लिए एक नूतन विषय अवश्य उपस्थित हो जायगा।

इन्द्रधनुष सुन्दर है; वीणा-निनाद सुन्दर है; अरुणोदय की लाली से संयुक्त उषाकाल भी सुन्दर है; ऐसा क्यों है? इन्द्रधनुष नयनाभिराम है, वीणा की झङ्कार कर्णेन्द्रियों को रुचिकर है एवं प्रभात का समय हृदय का समुत्फुल्लकारी है। कहने का तात्पर्य यह है कि वस्तुओं की सुन्दरता हमारी ज्ञानेन्द्रियों के अनुभव पर ही निर्भर है। प्रत्येक सुन्दर वस्तु किसी न किसी ज्ञानेन्द्रिय को एक विशेष प्रकार का आनन्द प्रदान कर, अन्त में हृदय के आह्लाद का कारण होती है। किन्तु सुन्दरता का यह सिद्धान्त, गणित के सिद्धान्तों की भाँति विश्वव्यापी एवं अपरिवर्तनशील नहीं है। सुन्दरता मानसिक विषय है, अर्थात् इसकी कसौटी मस्तिष्क है। भिन्न-भिन्न प्रकृति के मनुष्यों के मस्तिष्क का गठन भिन्न-भिन्न प्रकार का होना अनिवार्य है, अतएव सौन्दर्य की कसौटी एक सी न होने के कारण 'अमुक वस्तु सबको प्रिय है' ऐसा नहीं कहा जा सकता। सौन्दर्य किसी वस्तु-विशेष का अन्तर्हित गुण नहीं है, वह तो हमारा किसी वस्तु को विचार में लाने का प्रकार मात्र है। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि सुन्दरता कोई ऐसी कार्यकारिणी शक्ति नहीं है जो प्रत्येक हृदय-पटल पर प्रभाव उत्पन्न कर सके, वरञ्च वह तो स्वयं हमारी कार्यकारिणी एवं कल्पना-मूलक विचार-शक्ति का परिणाम है। सुन्दर वस्तुओं के अवलोकन से भावुकों के हृदय में विकार अवश्य उत्पन्न होता है, परन्तु इस विकार का सञ्चालन तथा उसकी रचना पूर्णतया मस्तिष्क के ही अधीन है।

व्यक्तित्व, देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार सौन्दर्य का आदर्श भी बदलता रहता है। एक वस्तु यदि किसी को प्रिय है तो दूसरे को अप्रिय। इन्द्रधनुष, वीणा-वाद्य तथा उषाकाल सबको ही सुन्दर नहीं प्रतीत होते। ग्रीस के कुशल कारीगरों द्वारा निर्मित पत्थर की मूर्तियाँ, सुप्रसिद्ध चित्रकार रविवर्मा की अत्युत्कृष्ट चित्रकारी अथवा शरत्पूर्णिमा की ज्योत्स्नामयी रात्रि में सुधांशु की पीयूषवर्षिणी कलाओं से शुभ्र स्फटिक के समान दीप्तिमान ताजमहल, एक नीरस हृदय में सौन्दर्यानुभव की तरङ्ग नहीं उत्पन्न कर सकते। इसका कारण यह नहीं कि उस व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियाँ निश्चेष्ट हैं, वरन् यह कहना चाहिए कि उसका मस्तिष्क इन वस्तुओं एवं कतिपय आदर्श-कल्पनाओं के सम्बन्ध निर्धारित करने में असमर्थ है। इन्हीं वस्तुओं को एक बुद्धिमान् कल्पना के सूत्र में आबद्ध कर हृदय का हार बना लेता है।

सङ्गीत के विषय में भी ऐसा ही कहा जा सकता

है। श्रीयुत विष्णु दिगम्बर जैसे सङ्गीत कलाविद् का गान भी बहुतेरों को कर्णकटु प्रतीत होता है। इसमें उनकी कर्णेन्द्रियों का कोई दोष नहीं है। हमारे देश की भील, सन्थाल, इत्यादि जङ्गली जातियों में प्रचलित राग सुशिक्षित सङ्गीतानुरागियों को अवश्य अरुचिकर होंगे। पर सम्भव है कि जिस गान का श्रवणामृत पान कर आधुनिक श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो जाते हैं, वही कालान्तर में जङ्गली की उपाधि से विभूषित कर दिया जाय। अस्तु—

इससे सिद्ध हुआ कि सौन्दर्य वस्तुओं का ऐसा गुण नहीं है जो उनमें अन्तरङ्ग एवं स्थायी हो। सुन्दरता केवल एक मुद्रा है, जो द्रष्टा अथवा श्रोता अपनी इच्छानुरूप वस्तु पर अङ्कित कर देता है। हमने अपने हृदय में जो आदर्श स्थापित कर लिया है, उससे सामञ्जस्य रखने वाली प्रत्येक वस्तु हमें सुन्दर भासित होती है। अर्थात् कल्पित तथा समक्ष उपस्थित वस्तुओं का एकीकरण ही हमारा सौन्दर्य-ज्ञान है। इसी एकीकरण के अभाव से हम अनेक वस्तुओं को उदासीनता तथा घृणा की दृष्टि से देखने को बाध्य हो जाते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बाल्यावस्था में हम जिन वस्तुओं की ओर आकर्षित होते हैं, वे ही कालान्तर में हमें अग्राह्य हो जाती हैं। इसी प्रकार युवावस्था में साधारण दृष्टिगोचर होने वाली वस्तुएँ प्रौढ़ावस्था में सुन्दर प्रतीत होने लगती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारी प्रियता का मुकुट विभिन्न वस्तुओं को अर्पण होता रहता है। जाति, देश, काल इत्यादि व्यक्तियों की ही रुचि के अधीन हैं, अतएव इनमें भी सौन्दर्यादर्श तदनुरूप परिवर्तित होता रहता है। उदाहरणार्थ, अफ्रिका के हबशी इस सम्बन्ध में जैसी अभिरुचि रखते हैं, उससे सभ्य देशवासी कदापि सहमत नहीं हो सकते।

उपरोक्त प्रमाणों पर विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि सुन्दरता का कोई निश्चित रूप न तो है, और न हो सकता है। मनुष्य की मानसिक शक्ति अपरिमित एवं अस्थिर होने के कारण, सौन्दर्य का आदर्श किसी नियम अथवा सिद्धान्त के अन्तर्गत नहीं हो सकता। हम सांसारिक तथा काल्पनिक पदार्थों की तुलना कर, दोनों में निकटतम सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा किया करते हैं। मानसिक विकास के साथ-साथ कल्पना-क्षेत्र भी विस्तीर्ण एवं परिमार्जित होता जाता है, अतएव पूर्व-निर्धारित सम्बन्ध कुछ ही समय में विशृङ्खल हो जाते हैं। दृष्टिकोण में परिवर्तन हो जाने के कारण वस्तुएँ नवीन रूप में दिखलाई पड़ने लगती हैं। फल यह होता है कि पूर्वोक्त प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करने के लिए पुनः नूतन वस्तुओं की ओर चित्त का झुकाव होता है। एवं सौन्दर्यादर्श नित्य इसी प्रकार स्थानान्तरित होता रहता है। यदि हम एक वायुयान में बैठकर अथवा अन्य किसी प्रकार ऊँचे उठने लगते हैं, तो क्रमशः नीचे की वस्तुएँ हमारी दृष्टि से पतित होती जाती हैं, तथा ऊपर की वस्तुएँ हमारा ध्यान आकृष्ट करने लगती हैं। इसी प्रकार शिक्षा के प्रभाव से आदर्श का तल समुन्नत हो जाने के कारण, जो वस्तुएँ पहले सुन्दर प्रतीत होती थीं वे हेय हो जाती हैं, तथा जो वस्तुएँ पहले हृदयग्राही नहीं थीं उनमें ही, अब अनेक सूक्ष्मताएँ दीख पड़ने से, सौन्दर्य के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। यह बात उदाहरण से और भी स्पष्ट हो जायगी। हबशी चपटी नासिका, मोटे-मोटे ओष्ठ, कटि-पर्यन्त लटकते हुए उरोज, तथा कज्जल-वर्ण शरीर को ही स्त्री-जाति के सौन्दर्य की पराकाष्ठा समझता है। प्रत्येक युवती की वह अपने काल्पनिक चित्र से तुलना कर, तथा पूर्व-कथित अङ्गों को अनिन्द्य सुन्दरी मान, अपनी प्रेम-पात्री नियत करता है। दैवयोग से यदि वही हबशी किसी सभ्य देश में जाकर निवास करने लगे, तो भिन्न परिस्थिति एवं शिक्षा के प्रभाव से उसकी मानसिक अवस्था अवश्य बदल जायगी। प्रारम्भ में तो तद्देशीय स्त्रियाँ उसे सौन्दर्य-विहीन ही देख पड़ेंगी, परन्तु कुछ समय पश्चात् मोटे ओष्ठाधर, चपटी नाक इत्यादि उसके लिए सौन्दर्य-द्योतक नहीं रहेंगे। जिस स्त्री को वह पहले रूपराशि-सम्पन्न समझता था, उसी को अब अवज्ञा की दृष्टि से देखने लगेगा। बस, मनुष्य-मात्र की यही अवस्था है। जलवायु, परिस्थिति, आचार-व्यवहार, शिक्षा इत्यादि के कारण विभिन्न जाति के मनुष्यों की प्रवृत्तियाँ भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं, अतएव जैसी वस्तुएँ एक जाति को प्रिय हों वैसी अन्य देश-वासियों को बहुधा साधारण अथवा अप्रिय प्रतीत होती हैं।

यह बात अनेक उदाहरणों द्वारा सिद्ध की जा सकती है कि वास्तव में सौन्दर्य केवल एक मानसिक कर्म है,

किसी वस्तु का गुण नहीं। हिमालय की हिमाच्छादित एवं गगनस्पर्शी चोटियाँ एक दूर देश से आए हुए पथिक का हृदय अनिर्वचनीय आनन्दोल्लास से परिपूर्ण कर देती हैं। इसके विपरीत उन्हीं के मध्य में जीवन व्यतीत करने वालों के हृदय में उन्हें देख कर सौन्दर्य के भाव किञ्चित् मात्र भी नहीं जाग्रत होते। सम्भव है कि भय अथवा बन्धन के विचार उन्हें अधीर कर दें। भय इस कारण कि अकस्मात् हिम की नदी आकर उनको कष्ट न पहुँचावे, तथा बन्धन इस कारण कि उनको परित्याग करके वे अन्यत्र जा भी नहीं सकते। परन्तु पथिक को उनमें एवं अपने कल्पित आदर्श में कतिपय सम्बन्ध अनुभव होने लगते हैं जिनके कारण वे शिखर उसे सुन्दर दृष्टिगोचर होते हैं। हिम-मुकुट-विभूषित, आकाश-चुम्बित तथा उन्नत-मस्तक गिरि-शृङ्ग उसे तत्काल अलभ्य, अव्यक्त, अलौकिक, अपरिवर्तनशील एवं परम पुनीत जान पड़ते हैं। उनकी रचना अव्यक्त, एवं पदार्थ तथा रूप अपरिवर्त्तनशील ज्ञात होता है। वे अमित ऊँचाई तथा विस्तार होने से अलभ्य एवं अलौकिक; तथा तारागण-खचित गगन-मण्डल से आवृत्त रहने के कारण परम पुनीत मालूम होते हैं। पथिक, उपरोक्त सर्व गुणों की समष्टि रूप, उन हिमगिरि शृङ्गों को निज-सौन्दर्य-मन्दिर में प्रतिष्ठित करता है। किन्तु यह मन्दिर तो उसी का निर्माण किया हुआ है। सुन्दरता पर्वत-शृङ्गों में निहित नहीं है, वरन् स्वयं उसके हृदय में तथा उसके मस्तिष्क में है। उसने कल्पना के दिव्य रङ्ग से रञ्जित कर इनको अपने लिए सुन्दर बना लिया है। इस कल्पना के अभाव में यही गिर-शिखर केवल जड़वत् प्रतीत होते हैं, अतएव इनको देख कर एक गँवार के हृदय में श्रम, असुविधा, भय इत्यादि के भाव उदय होना स्वाभाविक ही है।

इसी प्रकार जिस समय भगवान् भुवन-भास्कर अपनी दैनिक यात्रा से क्लान्त हो अस्ताचल की ओर अग्रसर होते हैं, तथा उनकी प्रिया पश्चिम दिशा अपने प्रियतम का आगमन जान उनके स्वागत के लिए अपूर्व शृङ्गार धारण करती है, उस समय की अवर्णनीय शोभा से कौन सा भावुक मुग्ध न होगा? तेजोमय दिवस एवं अन्धकार-पूर्ण रात्रि का सहमिलन, विविध वर्णों का दैवी सङ्गठन तथा दिग्दर्शन, पक्षिगण का सुमधुर कलरव, इत्यादि विविध प्रभावोत्पादक घटनाओं का सन्निपात इस दृश्य को एक अनूठी छटा प्रदान कर मनोमोहक बना देता है। हमारा जीवन क्षणभङ्गुर, परिवर्त्तनमय एवं ईश्वराधीन है, जब यही सादृश्य हम सन्ध्या-काल की प्राकृतिक घटनाओं में पाते हैं, तो इस नैसर्गिक दृश्य की शोभा और भी अनुपम हो जाती है। प्रकृति के रहस्यों की तुलना अपने जीवन के रहस्यों से करना मनुष्य का स्वभाव है। इसी कारण, असाधारण सौन्दर्य का जो प्रभाव हमारे अन्तस्तल पर पड़ता है, उसमें सदैव विषाद की कुछ मात्रा मिश्रित होकर उस प्रभाव को अधिक कार्यक्षम बना देती है। सुन्दर वस्तु के दर्शन-मात्र से हमको उस वस्तु की, संसार की तथा अपनी अनित्यता बोध होने लगती है, जिससे हमारे हृदय-सागर में वैराग्य की एक लहर आलोड़ित होकर प्रत्यक्ष रूप में हमारे चित्त के विषाद का कारण होती है। किन्तु उल्लिखित सम्बन्ध न खोज सकने के कारण एक अशिक्षित व्यक्ति पर इन घटनाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, और सूर्यास्त का दृश्य उसे तनिक भी सुन्दर प्रतीत न होगा। हाँ, ऋतु-ज्ञान के निमित्त यदि उसकी दृष्टि आकाश की ओर उठ जाय तो कोई आश्चर्य नहीं।

स्त्री-जाति के सौन्दर्य की भी ऐसी ही विवेचना की जा सकती है। समग्र भारत में सुन्दरता के लिए विख्यात होने पर भी यह सम्भव नहीं कि अफ्रिका, पापुआ अथवा जापान के अधिवासी, एक भारतीय सुन्दरी के सौन्दर्य की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करें। इसी प्रकार यदि इन देशों की कोई तरुणी इधर पदार्पण करे तो उसका भी यही हाल होगा। परन्तु फिर भी वे सब की सब सुन्दरी हैं; इस कारण नहीं कि सौन्दर्य-गुण उनमें स्वभावतः समाविष्ट है, वरन् इस कारण कि वे निज-निज देशवासियों के सौन्दर्यादर्श से निकटतम सादृश्य रखती हैं। भारतीय, अफ्रिकन, पापुअन तथा जापानी यौवन के रूप की जैसी कल्पना करते हैं, इन स्त्रियों में से किसी एक को उसके अनुरूप पाकर सौन्दर्य की पुष्पाञ्जलि उसकी भेंट कर देते हैं। हम कह आए हैं कि हिमालय तथा सूर्यास्त की शोभा से हमारा हृदय विषादयुक्त हो जाता है। एक सौन्दर्य-सम्पन्न युवती के दर्शन से भी विषाद के भाव उसी प्रकार जाग्रत होते हैं। कारण स्पष्ट है। जो आदर्श-मूर्ति हमारी कल्पना के सिंहासन पर सुशोभित है, वह पारलौ

किक है, अर्थात् हम उसे क्षणभङ्गुर तथा परिवर्तनशील नहीं समझते। परन्तु यौवन अल्पकालिक एवं अस्थिर है, अतएव एक युवती के दर्शन से जनित हृदय की अवस्था में विषाद का कुछ सम्मिश्रण अवश्यम्भावी है। यह विषाद इस विचार से उत्पन्न होता है कि सभी सांसारिक पदार्थों के समान यौवन भी अनित्य एवं निस्सार है।

अतएव हम पुनः इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि सौन्दर्य किसी वस्तु का ऐसा आन्तरिक गुण नहीं है, जैसा मिश्री में माधुर्य अथवा फूल में सुगन्ध। यदि हम किसी वस्तु को सुन्दर सम्बोधन करते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं है कि हमारे देखने से पूर्व उस वस्तु में कोई ऐसा सर्वमान्य तथा अविनाशी लक्षण अन्तर्हित था, जिसके कारण वह केवल हमको ही नहीं, बल्कि सारे जगत् को सुन्दर प्रतीत होती। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक नहीं कि हमको सुन्दर प्रतीत होने वाली सम्पूर्ण वस्तुओं में कुछ समानता हो। जिस प्रकार सारे संसार की मीठी वस्तुओं में मिठास पाया जाता है, ऐसा ही कोई एक गुण सर्व-सुन्दर वस्तुओं में मिलना असम्भव है। हिमालय पर्वत, सन्ध्या का सुहावना समय, तथा एक सौन्दर्यमयी कामिनी; इन तीनों में किसी प्रकार की तुलना नहीं है, किन्तु एक भावुक के लिए यह तीनों ही सुन्दर हैं। वस्तुएँ गोलाई होने के कारण गोल, स्वाद के कारण स्वादिष्ट, कठोरता के कारण कठोर इत्यादि, कहलाती हैं; परन्तु यदि इसी प्रकार का कोई निश्चित गुण अथवा नियम प्रत्येक सुन्दर वस्तु में ढूँढ़ निकालने की चेष्टा की जाय तो वह निष्फल होगी। प्रथम तो भिन्न-भिन्न मानसिक प्रवृत्तियों के कारण व्यक्तिगत आदर्श ही असमान है; दूसरे एक व्यक्ति प्रत्येक वस्तु के आदर्श रूप की कल्पना करता है, अतएव सौन्दर्य की परिपाटी का एक ही नियम के वशवर्त्ती होना अस्वाभाविक है।

वस्तुओं को सुन्दर दर्शाने वाली मानसिक क्रिया में यदि कोई समतत्व है, तो केवल यह है कि वह सदा वैयक्तिक रुचि के अनुसार आदर्श की कल्पना किया करती है। यदि किसी भौतिक पदार्थ में कल्पित आदर्श के कुछ भी चिन्ह लक्षित हो जायँ तो वह उसी को सुन्दर मान लेती है। कल्पित आदर्श एवं लक्षित वस्तु में जितना निकट सम्बन्ध होगा उतनी ही सुन्दर वह प्रतीत होगी। वस्तुओं के सौन्दर्य की कक्षा इसी सिद्धान्त पर निर्भर है। संसार में अनेक रूपसी हैं, परन्तु कल्पित मूर्त्ति से तुलना करने पर जान पड़ता है कि कोई अधिक है, कोई न्यून। आदर्श से प्रत्येक अङ्ग में सादृश्य रखने वाली वस्तु जगत में असम्भव है। आदर्श एवं वास्तविक के मध्य में, इनको पृथक् करने वाला, एक अगम्य सागर सदा विराजमान रहेगा। यदि कोई सांसारिक वस्तु आदर्श के तुल्य हो जाय तो आदर्श की महिमा ही नष्ट हो जाय। हमारा ध्येय अपरिमित तथा अव्यक्त है। हम अपने आदर्श में अलौकिक गुणों का समावेश देखते हैं। परन्तु पार्थिव पदार्थ परिमित होने के कारण अलौकिक नहीं हो सकते; अतएव आदर्श के साथ वास्तविक की तुलना करते समय चित्त में विषाद, दया अथवा वियोग के भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। सायङ्काल तथा यौवन की छवि अल्पकालिक हैं, अतएव हमारे हृदय में इनके प्रति दया का भाव उमड़ कर हमारे आकर्षित होने का मुख्य साधन बन जाता है। हिमाचल कल्पान्त-पर्यन्त इसी रूप में रहेगा, परन्तु हमारा शरीर शीघ्र ही पञ्चतत्व को प्राप्त हो जायगा; इस प्रकार के विचार उसकी शोभा को द्विगुणित कर देते हैं। इस प्रकार उक्त तीनों दृश्य चित्त में एक अव्यक्त क्षोभ को जन्म देते हैं। प्रथम दो की क्षणभङ्गुरता पर हम दयार्द्र हो जाते हैं, एवं तीसरी के दर्शन से हमें स्वयं अपनी अवस्था पर खेद होने लगता है।

हमारी सौन्दर्योपासना-प्रवृत्ति अथवा सौन्दर्यानुराग का कारण जानना अब कठिन नहीं है। यदि कोई बालक बाज़ार में सुन्दर खिलौना देख पाता है, तो घर आकर माता-पिता से उसे ला देने का आग्रह करता है। मान लीजिए कि उसके माता-पिता वह खिलौना एक दिन पश्चात् देने की प्रतिज्ञा करते हैं। जब तक वह खिलौना बालक के पास न आ जाय, तब तक उसे धैर्य नहीं होता। खिलौना के प्राप्त हो जाने पर बालक को जैसी हार्दिक प्रसन्नता होती है, ठीक उसी प्रकार का आनन्द हमें किसी सुन्दर वस्तु के मिल जाने से होता है। यदि वह सुन्दर वस्तु हमसे विलग हो जाय तो विवशता वश हमारे हृदय में वैसी ही वेदना होती है, जैसी बालक के हृदय में उसका खिलौना बलात् छिन जाने पर। इस अपार विश्व में क्या हम बालकों के समान नहीं हैं? मानस-मन्दिर में प्रतिष्ठा पाने योग्य

जो आदर्श हमने कल्पित कर रक्खा है, उसे मूर्तिमान पाकर भी क्या हमें सुख न होगा ? अस्तु—

जिस प्रकार बालक सर्प की चमकती हुई देह से आकृष्ट होकर निशङ्क हो उसे पकड़ने की चेष्टा करता है, इसी प्रकार हम समझते हैं कि सुन्दर वस्तुओं से हमें किसी प्रकार की हानि पहुँचना असम्भव है । एक सुन्दर स्त्री अथवा पुरुष यदि कोई गुरुतर अपराध भी करे तो हम तुरन्त उसे क्षमा प्रदान करने को तत्पर हो जाते हैं । भगवान् विष्णु ने इसी सौन्दर्य से दानवों को वशीभूत कर अमृत का घट छीन लिया था । कहना न होगा कि संसार के सारे मस्तिष्कयुक्त प्राणी सौन्दर्योपासक हैं । नृत्य करता हुआ मयूर मयूरिनियों को उस प्रकार लुभा सकता है, जिस प्रकार मनुष्यों को । अपने हृदय के आराध्य-देव को मूर्तिमान पाकर हम उसकी उपासना करते हैं, उससे प्रेम करते हैं, उसके सब अपराध क्षमा करते हैं; बस यही हमारी सौन्दर्योपासना है—यही हमारा सच्चा सौन्दर्यानुराग है ।

एक बात रह गई है । उसे कहे बिना यह निबन्ध पूर्ण होता नहीं प्रतीत होता । अब तक हमने वस्तुओं के केवल बाह्य सौन्दर्य की व्याख्या की है । परन्तु वस्तुओं का आन्तरिक सौन्दर्य इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है । यह संसार माया से परिपूर्ण है, अतएव यहाँ की अनेक वस्तुओं का बहिरङ्ग उनके अन्तरङ्ग के अनुरूप नहीं है । प्रकृति ने मणि-भूषित, सुचिक्कण देह वाले सर्प को विषधर बनाया है, तथा कठिन, कुरूप नारियल के गर्भ में मधुर गिरी उत्पन्न की है । अतएव प्रियदर्शन वस्तुएँ भी कभी-कभी हमारे लिए हानिप्रद सिद्ध हो जाती हैं । मनुष्य-मात्र का आन्तरिक सौन्दर्य हृदय की शुद्धता, पवित्रता एवं स्थिरता में है । रूप में सुन्दर न होने पर भी, हृदय का प्रकाश मनुष्य को एक अपूर्व सौन्दर्य-ज्योति से आलोकित कर देता है । यदि किसी सुन्दर देह में पवित्र हृदय का निवास हो तो कहना ही क्या है । फिर तो तुलसीदास जी के शब्दों में—

> सुन्दरता कहँ सुन्दर करई ।
> छबि गृह दीप-शिखा जनु बरई ॥

परन्तु इसके विपरीत कलुषित हृदय वाला मनुष्य सौन्दर्य-राशि होने पर भी हमारी घृणा का पात्र होने के योग्य है । गोसाईं जी ने ठीक ही कहा है—

> मन मलीन तन सुन्दर कैसे ।
> विषरस-भरा कनक-घट जैसे ॥

अतएव मनुष्य-जीवन में हृदयगत सौन्दर्य का होना परमावश्यक है । बाह्य सौन्दर्य के अभाव में आन्तरिक सौन्दर्य उसका स्थानापन्न हो सकता है, परन्तु आन्तरिक सौन्दर्य के अभाव की पूर्ति बाह्य सुन्दरता द्वारा नहीं हो सकती । हमको वस्तुओं का ग्रहण अथवा परित्याग केवल उनके बाह्य रूप के ही अनुसार करना उचित नहीं है । हमारे ध्येय ऐसे उच्च बनने चाहिएँ कि हम केवल सर्वाङ्ग सुन्दर वस्तुओं की ओर आकृष्ट हों, बाह्य रूप के साथ-साथ आन्तरिक रूप की भी परीक्षा करना हमें इष्ट हो; अन्यथा हमारा निर्वाचन समुचित न होगा । बाह्य सौन्दर्य की तीव्र धारा में तिनके की भाँति न बह कर, हमको सदैव यह ध्यान में रखना चाहिए कि—

> इक बाहर, इक भीतरे, इक मृदु दुहुँ दिसि पूर ।
> ईस रचे जग त्रिविध नर, बेर, बदाम, अँगूर ॥

बेर, बदाम, तथा अङ्गूर के उदाहरण से पाठक हमारा अभिप्राय भली प्रकार समझ गए होंगे, अतएव हम भी अपना लेख यहीं समाप्त करते हैं ।

एक व्यक्ति ने अपने कञ्जूस भाई से कुछ रुपया उधार माँगा । कञ्जूस भाई बोला—मैं छः रुपया सैकड़ा सूद लूँगा ।

वह व्यक्ति बोला— छः रुपया सैकड़ा ! ऐसा अन्धेर मत कीजिए । भला जो हमारे स्वर्गीय पिता स्वर्ग से यह बात देखेंगे तो उन्हें कितना दुख होगा ।

कञ्जूस—जहाँ पर वह हैं वहाँ से देखने पर उन्हें छः तीन ही दिखाई देगा ।

हिन्दुस्तान से लौटकर एक अंगरेज़ परिवार विलायत गया । वहाँ बच्चा खिलाने के लिए एक अंगरेज़ दाया रक्खी गई । दाया ने बच्चे की माता से कहा—बच्चा मेरे पास नहीं रहता, रोता है ।

बच्चे की माता बोली—ठीक है, हिन्दुस्तान में जो दाया इसे खिलाया करती थी वह काली थी । अच्छा तू अपने मुँह पर थोड़ी जूते की काली पॉलिश मल ले ।

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह

[लेखक—"पागल"]

दूसरा खण्ड

७

ताराके पत्र ने मेरी उत्सुकता पर ऐसा बाँध बाँध दिया है कि मैं डॉक्टर साहब को सामने पाकर भी उनसे उसके सम्बन्ध में कुछ भी पूछताछ न कर सका। परन्तु भीतर ही भीतर मेरी आत्मा उसका हाल जानने के लिए अकुला रही थी, जिसके कारण अन्य किसी विषय पर बातचीत करने में मेरा जी न लगता था। फिर भी सन्तोषानन्द ने किसी न किसी तरह घुमा-फिरा कर मुझे जहानारा की कहानी कहने के लिए बाध्य ही कर दिया और मैं विवश होकर कहने लगा।

अच्छा सुनिए। जहानारा के पास मैंने अपना ख़त तो भेज दिया, मगर बाद को मैं बहुत डरा कि ऐसा न हो कि कहीं वह नाराज़ होकर इसकी शिकायत पिता जी के कानों तक पहुँचा दे। इसी चिन्ता में मुझे रात भर नींद न पड़ी। ईश्वर से मनाता रहा कि वह पत्र उसे न मिले और कमरे में झाड़ू देने वाला उसे रद्दी समझ कर बुहार ले जाय। मगर दूसरे दिन दोपहर को जब मैं अपने मकान के सामने एक तितली पकड़ने के लिए उसके पीछे दबे पैरों चुपके-चुपके क़दम बढ़ा रहा था कि इतने में एक आदमी मेरे सामने आकर बोला—यहाँ कोई अलिन्द रहता है?

मैं—हाँ, मेरा नाम है। क्यों?

वह—तुम्हीं हो? अच्छा, मेरे साथ आओ।

जब वह मुझे लेकर जहानारा की कोठी के हाते के अन्दर घुसा, तब तो मेरे होश उड़ गए। सुन्दरता निरखने का शौक़ चूल्हे में गया। समझ लिया कि यह उसी ख़त का नतीजा है और अब मेरी ख़ैरियत नहीं है। मगर करता तो क्या करता? मैं कुछ ऐसा हक्का-बक्का हो रहा था कि उस वक़्त मुझसे भागते भी न बन पड़ा।

जब मेरे होश कुछ ठिकाने हुए तो देखा कि सामने एक मख़मली कोच पर जहानारा बैठी हुई है और पास ही मैं खड़ा हूँ। हम दोनों के सिवाय कमरे में उस वक़्त और कोई न था। उसने मुझे बड़े ग़ौर से सर से पैर तक देखा। उसके बाद जेब से मेरा वही ख़त निकाल कर मेरे सामने फेंक कर बोली—यह हरकत तुमने की है?

उसकी आवाज़ में रुखाई होते हुए भी कितना माधुर्य था, कितनी मिठास थी कि मैं मस्त होकर उसकी झनकार ही सुनता रह गया। मेरी कला की प्यास जाग्रत हो गई। डर एकाएक मेरे दिल से छू-मन्तर हो गया। मेरी पहली दृष्टि में लड़कपन की घबराहट थी, जिसके कारण जिस तरह किसी अपराधी को उसको दण्ड देने वाली सर्वशक्तिशालिनी महारानी प्रतीत होती है, उसी तरह वह मुझे दिखाई पड़ी थी। मैं सहम गया था, मगर अब मेरी कला की दृष्टि खुल जाने से मैं उसे इस तरह निडर होकर क्या, बल्कि बड़े चाव से देख रहा था, जिस तरह कोई उत्तम चित्रकार अपने आदर्श मॉडल (Model) को उत्सुक नेत्रों से निरखता है।

जहानारा—बोलो, यह हरकत तुमने की है?

मैं—हाँ, हुई तो मुझी से है।

जहानारा ने त्योरी चढ़ा कर कहा—क्यों?

मैं—यह मुझसे पूछने की बात नहीं है।

जहानारा—तब किससे पूछूँ?

मेज़ पर एक आइना रक्खा हुआ था। मैंने उसे लपक कर उठा लिया और उसे उसके सामने करके कहा—इससे पूछिए।

जहानारा एकाएक अपनी कोच पर से उछल पड़ी। उसके चेहरे पर से रुखाई एकदम उड़ गई। और अब वह अपनी मुस्कराहट को किसी तरह भी न रोक सकी।

वह हँसती हुई बोली—उफ़ ओ! अभी से तुम्हारा यह हाल है। ख़ैर! बैठ जाओ। तुम तो बड़े दिलचस्प मालूम होते हो। हाँ, बताओ, क्या सचमुच तुम मेरा चित्र खींचना चाहते हो?

मैं—नहीं तो लिखता क्यों?

जहानारा—मगर क्यों?

मैं—ताकि आपको हर वक़्त देख सकूँ।

उसने मुस्कराकर सर झुका लिया। फिर मुझे कनखियों से देख कर कहा—"कै आमदी कै पीर शुदी?" भला चित्र बनाना भी जानते हो?

मैं—कोशिश करके देख लूँ, तब हाँ या नहीं कह सकता हूँ। पहले कैसे बताऊँ?

उसने हँस कर पूछा—अगर कोशिश करने पर भी नहीं बना सके तो इसकी क्या सज़ा होगी?

मैं—फिर मुझसे आप दुबारा बनवाइए। बार-बार बनवाइए।

वह खिलखिला कर हँस पड़ी।

जहानारा—भई वाह! ग़ज़ब की चाल चलते हो। दाँव हारने में भी बाज़ी हाथ से नहीं जाने देते। मगर क्या तुम सचमुच चित्रकार हो? अगर हो तो तुमने इतनी छोटी उम्र में यह मुश्किल हुनर किस तरह सीख लिया?

मैं—हुनर जानने के लिए सच्चा शौक़ चाहिए, उम्र की लम्बाई नहीं। मैं भला अभी अपने को किस तरह चित्रकार कह सकता हूँ? अभी तक तो मुझे कभी कोई उत्तम चित्र बनाने का अवसर ही नहीं मिला। हाँ, अगर आप मुझ पर कृपा करें और मैं अपनी कोशिश में कामयाबी हासिल कर सकूँ तो शायद मैं अपने को चित्रकार कहने का साहस कर सकूँगा।

उसका चेहरा एकाएक गम्भीर हो गया। कुछ देर तक वह मुझे एक अजीब निगाह से देखती रही। उसके बाद मुस्करा कर बोली—अच्छी बात है, मैं तुम्हारे लिए 'तख़्ती-ए-मश्क़' बनूँगी। जब तुम इस बात पर तुले बैठे हो तो मैं भी तुम्हें नाउम्मीद नहीं करना चाहती। कब से बनाओगे?

मैं—चित्र खींचने का सामान पिता जी से रुपए माँग कर मँगवा लूँ तब, क्योंकि मैं हाल ही में यहाँ आया हूँ। मेरे पास अभी कुछ है नहीं।

जहानारा—अच्छा, कल इस वक़्त तुम अपने मकान पर ही रहना, कहीं जाना मत।

दूसरे दिन दोपहर को मैं फिर जहानारा के सामने लाया गया। उस समय वहाँ पर चित्रकारी के सामान जितने भी हो सकते हैं, सब मौजूद मिले। उनमें से अब भी मेरे पास बहुत-कुछ हैं। सच तो यह है कि उसी की बदौलत मैं चित्रकार हुआ और उसी की दी हुई चीज़ों से मैंने पहले-पहल अपनी चित्रशाला की स्थापना की।

सन्तोषानन्द—मैं समझता हूँ, तुमने उसका चित्र खींचने में ज़रूर ही कामयाबी हासिल की होगी?

मैं—हाँ, डॉक्टर, सौभाग्य से मैं इस काम में पूरे तौर से सफल हुआ। यों तो मनमाने चित्र चुपके-चुपके मैं खींचा ही करता था। मगर चित्रकार बन के चित्र खींचने का वह मेरा पहला ही उद्योग था। इसी से मैं उस समय बहुत घबराया हुआ था। मगर मेरे सच्चे उत्साह ने मेरा बेड़ा किसी तरह पार लगा दिया, और तब से मैं चित्रकार मशहूर हो गया।

सन्तोषानन्द—सच्चा शौक़ कभी बेकार नहीं जाता। हाँ, तो क्या उसी दिन से तुमने उसका चित्र खींचना शुरू कर दिया?

मैं—नहीं, उस दिन तो वह बात-बात पर हँसती ही रही। जैसा भाव मैं उसकी छवि में दिखलाना चाहता था वैसा वह अपनी सूरत पर झलका ही न सकी। क्योंकि जब वह हँसना बन्द करती थी तो वह एकदम गम्भीर हो जाती थी। इसी लिए मैं उस दिन रूठ कर चला आया।

सन्तोषानन्द—अरे! तुम उससे रूठने भी लगे? जिसको सलाम करने के लिए बड़े-बड़े नवाब अपना अहोभाग्य समझते थे। यह साहस तुम्हें कैसे हुआ भाई?

मैं—साहस दिलाने ही से साहस उत्पन्न होता है। मुमकिन है, उसी ने मुझे इस बात के लिए हिम्मत दिलाई हो या यह मेरा लड़कपन हो। क्योंकि रूठना-मचलना तो नित्य ही होता था। कभी वह रूठती थी और कभी मैं।

सन्तोषानन्द—जब तुम रूठते थे तो भला वह भी कभी तुम्हें मनाती थी?

मैं—हमेशा। वरना मैं रूठता ही क्यों ?

सन्तोषानन्द—ठीक कहते हो। गोकि कोई इस बात का ख़्याल करके जान-बूझ कर नहीं रूठता, फिर भी उसके दिल के भीतर यह आशा गुप्त रूप से ज़रूर होती है, जो उसे मचलने के लिए उभारती है। हाँ, पहले-पहल उसने तुम्हें किस तरह मनाया ?

मैं—मैं तीसरे दिन उसी वक़्त पर बुलाया गया। जहानारा मुँह फेरे हुए कुछ पढ़ रही थी। मेरी आहट पाते ही उसने मुझे देखा और बड़े तपाक से मुस्करा कर कहा—ओहो ! तुम आ गए। × × × खड़े क्यों हो, आओ बैठो।

इतना कह कर उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और ले जाकर अपने साथ अपनी कोच पर बिठा लिया। सामने एक छोटी सी मेज़ पर तश्तरियों में कुछ फल चुने हुए थे।

जहानारा—लो, पहले कुछ नाश्ता कर लो, तब आगे कोई बातचीत हो।

मैं—मुझे तो भूख नहीं है। क्षमा कीजिए।

जहानारा—वाह ! फल खाने में भूख की क्या ज़रूरत ?

मैं—मगर मैं बिना भूख के कुछ खाता नहीं।

जहानारा—तुम्हें न सही, मुझे तो भूख लगी है। कम से कम मुझी को मदद दो।

मैं—बेहतर है, लीजिए फलों को छीले देता हूँ।

जहानारा—यहीं तक नहीं, बल्कि उनको ख़ुद खाओ भी !

मैं—इसके लिए माफ़ी चाहता हूँ।

जहानारा—जी नहीं ; यह नहीं होगा। खाना पड़ेगा। क्या कुछ छुआछूत का ख़्याल है ? अगर यह हो भी तब भी मैं तुम्हें ज़बरदस्ती खिलाऊँगी; और अपने ही हाथ से। देखूँ, तुम कैसे नहीं खाते हो।

इतना कह कर उसने एक केला मेरे मुँह में ठूँस दिया। लड़कपन में बदला लेने की बड़ी इच्छा होती है। इसलिए मैंने भी नारङ्गी की एक फाँक लेकर उसे खिलाना चाहा। उसने मेरा हाथ हटा दिया। मेरी इच्छा और तेज़ हो चली और मैं ज़बरदस्ती करने लगा। वह कोच से उठ कर भागी। मैंने दौड़ कर उसे पकड़ा और उसकी गर्दन में हाथ डाल दिया। उसकी ठुड्डी पकड़ कर उसका मुँह ऊपर किया और दूसरे हाथ से उसे नारङ्गी खिला दी। उसी वक़्त हमारी-उसकी निगाहें चार हुईं। उसकी दृष्टि में एक अद्भुत आकर्षण था। चितवन में एक अपूर्व मादकता थी। उसकी सूरत एक विलक्षण ज्योति से दमक रही थी। मेरा दिल बड़े ज़ोरों से धड़क उठा। मेरे हृदय में एक नई अभिलाषा उत्पन्न हुई। उसे मैं किसी तरह भी रोक नहीं सका। बल्कि उसी के आवेश में मैं कुछ ऐसा उन्मत्त हो गया कि मैंने तड़ाक से उसका मुख चूम लिया।

सन्तोषानन्द—अरे ! यहाँ तक ?

मैं—ठहरो डॉक्टर ! इस वक़्त बड़ी पुरानी याद उभर उठी है। इसे अब किसी तरह कह लेने दो। हम दोनों उस वक़्त आपे में नहीं थे। एक दूसरे के बाहुपाश में आप से आप बँध गए थे। एकाएक जहानारा बिजली की तरह छटक कर इस बन्धन से निकली और झुँझला कर बोली—उफ़ ! तुमने यह क्या किया ? तुमने मेरी रही-सही ज़िन्दगी में भी आग लगा दी। जाओ, तुमसे अब तस्वीर नहीं खिचाऊँगी। तुम बड़े ख़राब हो।

मैं उसकी बातों का अर्थ समझ न सका। बस इतना जाना कि वह मुझसे नाराज़ हो गई। अब मुझे होश हुआ और अनुभव किया कि मुझसे पागलपन में क्या हो गया। मैं डर, लज्जा और पश्चात्ताप से वहीं पर गड़ गया और थर-थर काँपने लगा। माफ़ी माँगने के लिए मेरे मुँह से बोल भी न फूटा। जहानारा लड़खड़ाती हुई अपनी कोच पर जा गिरी और बड़ी देर तक अपना मुँह छिपाए चुप बैठी रही। मेरी आँखों से पश्चात्ताप के आँसू निकल पड़े।

मुझे हिलता-डोलता न पाकर उसने सर उठा कर मेरी तरफ़ देखा और पूछा—क्यों, खड़े क्यों हो ? अरे ! रोते हो ? क्यों ?

मैंने नीची नज़र किए लड़खड़ाती हुई आवाज़ में कहा—जो सज़ा देनी हो, दीजिए ; मगर हाथ जोड़ता हूँ, नाराज़ न होइए। मुझे ख़ुद ही नहीं मालूम कि मुझसे कैसे यह अपराध हो गया।

कोई उत्तर न पाकर मैंने डरते-डरते निगाह उठाई। देखा कि उसकी भी आँखें डबडबाई हुई हैं और सूरत से घोर चिन्ता टपक रही है। अब तो मुझसे नहीं रहा

गया। मैं दौड़ कर उसके सामने घुटने टेक कर बैठ गया और उसके घुटनों पर अपना सिर रख के बोला—हाय! मैं नहीं जानता था कि आपको इतना रञ्ज है। ईश्वर के लिए मुझे माफ़ कीजिए। नहीं, मैं माफ़ी नहीं चाहता। मुझे कड़ी से कड़ी सज़ा देकर अपना दुख हल्का कीजिए।

उसने एक हाथ से मेरा सर उठा कर कहा—सज़ा चाहते हो तो सज़ा दूँगी। मगर पहले इन फलों को खाकर मेरी तस्वीर तो बनाना शुरू करो।

मैं—नहीं, मुझे पहले सज़ा चाहिए।

जहानारा—अच्छा तो यह लो।

यह कह कर उसने मुझे शर्माई हुई निगाहों से देखा और मेरे गाल पर एक हल्की सी चपत लगा कर मुस्करा पड़ी। बस, मुझे भी मुस्कराहट आ गई और मैं हँसता हुआ उठ कर चित्र बनाने की तैयारी करने लगा।

८

थोड़ी देर चुप रहने के बाद डॉक्टर साहब के आग्रह से मुझे जहानारा की कहानी फिर शुरू करनी पड़ी। मैंने बहुत-कुछ टालने की कोशिश की, मगर उनके सवालात के आगे मेरा कुछ बस न चला, और मैंने ठण्डी आह खींच कर यों कहना आरम्भ किया :—

आप पूछते हैं कि जहानारा कौन थी? यह मैं नहीं जानता। बस इतना जानता हूँ कि वह साक्षात् देवी थी। जितना ही मैं उससे मिलता था उतनी ही अधिक मेरी श्रद्धा उसके लिए बढ़ती थी। चित्र बनाते-बनाते जब कभी उसकी ओर ताकता था और उसकी निगाहों में वही आकर्षण और वही छलकती हुई मादकता पाता था तो मैं एक अजीब लालसा से छटपटाने लगता था, जिससे बेताब होकर कभी तूलिका फेंक कर कमरे में टहलता था और कभी सर पकड़ कर बैठ जाता था। वह घबरा कर पूछती थी 'क्या हुआ?' तब मैं बहाना कर देता था कि मेरा सिर दुख रहा है। उस वक्त़ वह मुझे कोच पर ज़बरदस्ती लिटा देती थी और मेरा सर अपनी गोद में लेकर दबाने लगती थी। हाय! वह मुझे कितना मानती थी! मैं बता नहीं सकता डॉक्टर!

मैंने बहुत जी लगा कर उसका चित्र खींचा था। तीन दिन तक उस पर उसकी नज़र नहीं पड़ने दी। वहाँ से चलते समय मैं उस पर पर्दा डाल कर उसे तागे से बाँध देता था, और उसे खोल कर देखने के लिए अपनी क़सम दिला देता था। चौथे दिन उसकी तस्वीर की निगाहों में भी वही बात पैदा होगई जो मुझे उन्मत्त कर देती थी। फिर क्या था, वह छबि एक अलौकिक आभा से दमक उठी। उस वक्त़ मैं अपनी सफलता की ख़ुशी किसी तरह भी सँभाल न सका। झट ताली बजा कर चिल्ला उठा कि मार लिया है।

जहानारा तस्वीर देखने के लिए व्याकुल होगई। उसको अपनी तरफ़ आते हुए देख कर मैं भी उसको रोकने के लिए खड़ा होगया।

जहानारा—अब तो मैं आज तुम्हारी कारीगरी ज़रूर देखूँगी, चाहे जो हो।

मैं—आज नहीं, कल। अभी थोड़ी सी कसर है।

जहानारा—हाथ जोड़ती हूँ।

मैं—मैं भी हाथ जोड़ता हूँ। बस एक दिन और सब्र करो।

"जान गई। तुम तस्वीर-वस्वीर कुछ नहीं खींच रहे हो। ख़ाली सामने बिठाल कर मुझे उल्लू बना रहे हो।"—जहानारा ने कुछ रुखाई से कहा।

मेरे दिल पर चोट सी लगी। मैंने उसी तरह जवाब दिया—अच्छा, तो फिर आज ही देख लीजिए, आइए।

वह रुष्ट होकर बोली—नहीं देखूँगी। वहाँ कुछ होगा भी। जब तुम्हारे ऐसे छोकरे तस्वीर बना सकेंगे तो दुनिया के और मुसौविर फिर क्या करेंगे?

मेरे बदन में आग लग गई। मैंने झट 'स्टैण्ड' को घुमा कर उसकी तरफ़ कर दिया। उसकी नज़र जैसे ही उस पर पड़ी, वह ताज्जुब में चीख़ उठी, और दौड़ कर मुझसे लिपट गई। मगर मैं निर्जीव पुतली की भाँति सर झुकाए ज्यों का त्यों खड़ा ही रहा। कमरे के बाहर लोगों के आने की आहट मालूम हुई। वह मुझे छोड़ कर तुरन्त अलग होगई। वह उस वक्त़ मारे ख़ुशी के दीवानी हो रही थी और उसके चेहरे पर आनन्द की दमक और आँखों से हर्ष की धारा बरस रही थी। मैनेजर ने द्वार खटखटा कर बाहर ही से पूछा—ख़ैरियत तो है, आप चिल्लाईं क्यों?

उत्तर में उसने कहा—अन्दर आइए!

तुरन्त ही थियेटर के कर्मचारियों से कमरा भर गया

और वाह! वाह! की ध्वनि गूँज उठी। सब लोग चित्र देखने में लगे हुए थे और मैं चुपके से कमरे के बाहर हो गया।

इसके दूसरे दिन पिता जी स्नान करके नहीं लौटे। मेरा दिल न जाने क्यों आपसे आप घबराने लगा। मुझसे न रहा गया। मैं दौड़ कर नदी पर गया। गङ्गा के घाट पर भीड़ लगी हुई थी। मालूम हुआ कि कोई आदमी डूब गया है और उसके कपड़े सीढ़ियों पर रक्खे हुए हैं। कपड़ों को पहचानते ही मैं मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

सन्तोषानन्द—ठहरो! आओ ज़रा टहल आवें।

मैं—डॉक्टर, तुम मेरे आँसुओं का ख़याल न करो। मैं दुःख झेलते-झेलते ख़ूब मँझ गया हूँ। घबराने की कोई बात नहीं है।

सन्तोषानन्द—नहीं। शाम हो चली है। इस वक्त़ बैठना ठीक भी नहीं।

ख़ैर, ज़रा घूम आने से मेरा शोक कुछ हल्का हुआ और आवाज़ भी साफ़ होगई, और बातचीत का फिर वही सिलसिला शुरू हुआ।

सन्तोषानन्द—तुम्हारे रिश्तेदारों में से क्या कोई ऐसा न था, जो उस वक्त़ तुम्हारे सिर पर हाथ रख सकता?

मैं—रिश्तेदार किसके नहीं होते? मगर यह लोग अच्छे दिनों के लिए होते हैं। बुरे दिनों में तो कोई कम्बख़्त आँख उठा कर देखता भी नहीं। यही तो और भी मुसीबत थी कि पिता जी की आँख बन्द होते ही मैं इस भवसागर में बिना एक तिनके के सहारे के ऊबने-डूबने लगा। जो कुछ पूँजी थी वह अशर्फ़ियों में थी और उन्हें पिता जी सदैव अपने कमरबन्द में रखते थे। उनकी लाश के साथ वे भी लापता हो गईं। उस परिवार में माँ को छोड़ कर दो विधवा चची और एक विधवा फूफी भी पिता की मुहताज थीं। घर में फञ्झी कौड़ी भी न थी कि जिससे चबेना ही पर कुछ दिन गुज़र हो सके। मैंने पढ़ने-लिखने में भी अपने चित्रकारी के शौक़ के आगे कुछ ध्यान नहीं दिया था कि जिसकी बदौलत कहीं नौकरी की कुछ उम्मीद करता। मकान का किराया अलग चढ़ा हुआ था।

सन्तोषानन्द—ऐसे गाढ़े वक्त़ क्या जहानारा ने भी कोई सहायता नहीं की?

मैं—सहायता? अरे! उसी ने तो हम लोगों की प्राण-रक्षा की, नहीं तो हम लोग कभी मर-मिट गए होते। उसे जैसे ही हमारे दुर्भाग्य की सूचना मिली, वह दौड़ी हुई हमारे यहाँ आई। तीन दिन लगातार तमाशा करने नहीं गई। चौबीसो घण्टे यहीं रह कर उसने घर सँभाला। हम लोग तो सब मरे हुए मुर्दा थे! उसी ने ढाढ़स देकर, उत्साह दिला कर, घर का ख़र्च चला कर हम लोगों को जिलाया, उसी ने मुझे चित्रकार बना कर प्रसिद्ध किया और चित्रकारी से मुझे अपनी स्वतन्त्र जीविका चलाने की राह दिखाई। वरना इस देश में कला को भला कौन पूछता है? यहाँ तो यह केवल मनोविनोद की सामग्री समझी जाती है। जीविका के लिए यहाँ बस नौकरी है, और उसके लिए बी० ए० और एम० ए० की डिग्रियों की ज़रूरत थी! और मेरे पास तो इन्ट्रेन्स की भी सार्टीफ़िकेट न थी। मैं करता तो क्या करता?

सन्तोषानन्द—मुझे उससे ऐसी ही उम्मीद थी, तभी पूछा था। हाँ, तुमने फिर वह चित्र पूरा किया?

मैं—हाँ, पाँच-छः दिन के बाद मैनेजर की ज़िद करने से किसी तरह पूरा कर दिया। क्योंकि तमाशे के विज्ञापन के लिए उसके कई फ़ोटो लेकर देश के सभी बड़े-बड़े समाचार-पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले थे। जहानारा स्वयं एक बड़ी विख्यात ऐक्ट्रेस थी। उसका चित्र छपते ही मेरा भी नाम उसके साथ प्रसिद्ध हो गया। फिर तो कई जगह से चित्र की माँग आने लगी और मेरा इस तरह गुज़र-बसर होने लगा। उन्हीं दिनों वह कम्पनी बड़ी धूम-धाम से एक नया तमाशा तैयार कर रही थी। उसके सभी पर्दे बम्बई से आ चुके थे। मगर जहानारा ने केवल मुझे सहायता देने के लिए अपने पार्ट में कुछ परिवर्तन कर दिया, जिसके कारण एक नए पर्दे की ज़रूरत पड़ गई। तमाशा सातवें दिन होने वाला था। इतना समय न था कि बम्बई से नया पर्दा बनवा कर मँगवाया जाय। इसलिए उसके बनाने का काम मुझे सौंपा गया और मैंने भी रात-दिन जान लड़ा कर वक्त़ पर उसे तैयार कर दिया। मैनेजर उससे इतना ख़ुश हुआ कि मुझे स्थायी रूप से सौ रुपए माहवार पर नौकर रखना चाहा। मैंने भी उसे ख़ुशी-ख़ुशी स्वीकार कर लेने का इरादा किया।

मगर जहानारा ने न जाने कौन सी खुरपेंच लगाई कि मेरी मनोकामना सफल न हुई।

सन्तोषानन्द—श्रोह ! मैं समझ गया। वह तुमसे भागना चाहती थी।

मैं—हाँ, ऐसी ही कुछ बात थी। इसी से मेरी तबीयत उससे कुछ खटक गई।

सन्तोषानन्द—क्यों ?

मैं—क्योंकि मुझे तो न जाने उन दिनों क्या हो गया था कि मैं हर वक़्त उसके देखने के लिए बेचैन रहता था। हर सायत बस उसी के सामने बैठा रहना चाहता था। श्रौर मुझे उसके साथ रहने का मौक़ा भी ईश्वर ने दिया तो उसी ने भाँजी मार दी। यहीं तक नहीं, बल्कि जब-जब मैं उसके पास जाता था, वह कोई न कोई बहाना करके मेरे पास से चल देती थी। मेरे यहाँ जब श्राती तब सीधे श्रौरतों में घुस जाती थी। इससे जाना कि उसे मेरी परवाह तनिक भी नहीं है। श्रौर मैं जल मरा।

सन्तोषानन्द—मूर्ख हो। वह तुम्हें हद से ज़्यादा चाहती थी—इतना कि वह तुम्हारे जीवन की राह में काँटा बनना नहीं गवारा कर सकी। इसी से तुमसे भागती थी।

मैं—काँटा बनना कैसा ?

सन्तोषानन्द—श्राप ही मालूम हो जायगा। श्रागे कहो तो।

मैं—ख़ैर ! इसका कारण कुछ भी हो, मगर मैंने उसके व्यवहार को अपनी लड़कपन की बुद्धि के अनुसार ऐसा ही समझा श्रौर उससे कुछ चिढ़ा हुश्रा रहने लगा। इसी तरह ढाई महीने बीत गए, श्रौर कम्पनी दूसरे दिन यहाँ से कूच करने को तैयार हुई। ख़बर पाते ही मैं एकाएक न जाने क्यों तड़प उठा। अपनी बेचैनी सँभाल न सका। सीधे उसके पास दौड़ा। वह हाथ पर गाल रक्खे घोर चिन्ता की मूर्ति बनी हुई थी। श्राँखों से श्राँसुश्रों की धारा बह रही थी।

मैंने जाते ही बेताब होकर पूछा—जहानारा ! जहानारा ! क्या तुम जा रही हो ?

उसका चेहरा खिल उठा। उसकी श्राँखों में एक अजीब तृष्णा की झलक दिखाई दी। मगर उसने तुरन्त ही अपना मुह फेर कर गम्भीर भाव धारण कर लिया, श्रौर श्राँसू पोंछ कर बोली—तो फिर × × × हाँ, तुम्हारी तस्वीर की उजरत अभी तक नहीं दी है। बोलो, क्या लोगे ?

मैं—उजरत में तुमने तो मेरी जीविका दी। इससे बढ़ कर दुनिया में भला पुरस्कार क्या हो सकता है ?

जहानारा—यह तो तुम्हारी क़िस्मत श्रौर मिहनत ने दिया। मुझसे जो कुछ लेना चाहते हो, कहो !

मैं—अगर तुम मुझे कुछ देना ही चाहती हो तो अपने साथ मुझे चलने की श्राज्ञा दो। बस, इसके सिवाय श्रौर मुझे कुछ नहीं चाहिए।

जहानारा—ग़ैर मुमकिन है।

मैं—हाय ! जहानारा, तुम्हें किस तरह बतलाऊँ कि मुझे तुम्हारे बिछुड़ने का कितना कष्ट हो रहा है।

वह मुँह फेर कर रुँधे स्वर में बोली—उफ़ ! यह न कहो। × × × इसके सिवाय तुम श्रौर क्या चाहते हो ? बोलो, बोलो !

मृत्यु की यन्त्रणा से तड़पने वाला जब श्रारोग्यता से एकदम निराश हो जाता है, तब वह क्षणिक शान्ति ही पाना अपना श्रहोभाग्य समझता है। इसलिए मैंने लड़खड़ा कर कहा—अच्छा, तो फिर मुझे एक बार वही अपराध करने दो, जो पहले दिन मुझसे अनजाने हो गया था।

यह कह कर मैंने अपने दोनों हाथ फैलाए। उसे हृदय से लगाकर चुम्बन करने के लिए लपका। वैसे ही वह खड़ी हो गई श्रौर बीच ही में मेरे हाथों को पकड़ कर समेट दिया, श्रौर उन्हें अपनी मुट्ठी में कस कर दबा लिया। फिर तुरन्त ही उन्हें झटक कर बोली—नहीं-नहीं। हाय ! जाश्रो भी, लड़कपन मत करो। उफ़ ! जाश्रो !

इतना कह कर बिजली की तरह वह ख़ुद ही कमरे से भाग गई, श्रौर मैं अपना-सा मुँह लेकर रह गया।

* * *

रात के ढाई बजे थे। मैं अपने मकान के बाहर बरामदे में बिस्तर पर करवट बदल रहा था। उस रात को थिएटर का श्राख़िरी तमाशा था। थिएटर के कुछ कर्मचारी उसी रात को साढ़े चार बजे की गाड़ी से यहाँ से रवाना होने वाले थे। मैं जहानारा से इतना जला हुश्रा था कि उससे फिर पूछने भी न गया कि वह

किस गाड़ी से जायगी। फिर भी मेरी तबीयत उसके लिए छटपटा रही थी। मेरा दिल इसी शङ्का से धड़क रहा था कि कहीं वह भी न आज ही चली जाय। यह ख़्याल मेरे कलेजे में तीर की तरह ज्यों-ज्यों चुभने लगा, त्यों-त्यों उसे एक बार फिर देखने की लालसा मुझे बुरी तरह सताने लगी। तमाशे से ऐक्टर लौटने लगे। जहानारा की भी मोटर आ गई। जी में आया, उसके फाटक पर दौड़ जाऊँ। मगर वह ख़ुद ही मेरे मकान की तरफ़ आती हुई दिखाई दी। दिल में ठान लिया कि चाहे कुछ हो, मगर आज मैं उसे अपने कलेजे के भीतर छिपा लूँगा। बला से वह नाराज़ हो जाय, परवा नहीं। उसे इनकार करने या भागने का मौक़ा ही न दूँगा।

ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ रही, थी त्यों-त्यों मेरा दिल बड़े ज़ोरों से धड़क रहा था। वह बिलकुल ही मेरे पास आ गई, मैं चारपाई पर उठ बैठा। दूसरे ही क्षण मैं झपट कर उससे चिमट जाता कि इतने में द्वार खोल कर भीतर से कम्बख़्त नौकरानी न जाने क्यों निकल पड़ी। जहानारा कतरा के मेरे मकान में घुस गई।

वह भीतर मेरे घर की औरतों से मिल रही थी और मैं बाहर तकिए में मुँह छिपाए रो रहा था। कुढ़-कुढ़ कर मन ही मन कह रहा था कि देखो उसे बूढ़ी स्त्रियों की मुहब्बत है, मेरी नहीं। अगर खड़ी-खड़ी मुझसे दो बातें कर लेती तो उसका क्या बिगड़ता? क्या नौकरानी उसे बात करने से मना कर देती? नहीं, वह मुझे जलाना चाहती है और इसी लिए दिखला रही है कि मुझे तुम्हारी परवा नहीं है। अच्छा जाओ, मैं भी अब मुँह छिपाए पड़ा रहूँगा और तुमसे नहीं बोलूँगा। तुम्हें चलते समय सलाम भी नहीं करूँगा। जाओ, चली जाओ।

सन्तोषानन्द—यह तुम्हारी मूर्खता थी, जो तुमने उसके बारे में ऐसा ख़्याल किया। वह तुम पर मरती थी, तुम पर जान देती थी। वह तुम्हीं से मिलने आई थी। अगर तुम्हारे घर की स्त्रियों से उसे मुहब्बत थी, तो बस तुम्हारे ही कारण।

मैं—मुमकिन है। मगर मैं अपने ही विश्वास पर अटल रहा। थोड़ी देर के बाद मुझे मालूम हुआ कि कोई मेरी मसहरी हटा कर मेरी बग़ल में बैठ गया। मेरे कान में एक सुरीली आवाज़ पड़ी—अलिन्द! अलिन्द! क्या जुदाई की घड़ी भी मुझसे न बोलोगे? क्या अपनी उजरत भी लेना भूल गए?

इसके बाद न जाने कैसे हम दोनों बाहुपाश में एकदम गुथ गए, और दोनों के ओंठ एक-दूसरे से चिपक गए। परन्तु हाय! आँख झपकते ही वह स्वर्गीय स्वप्न अलोप हो गया। हवास कुछ ठिकाने हुए तो जाना कि मैं बिस्तरे पर अकेला सिर धुन रहा हूँ और जहानारा के फाटक से एक मोटर स्टेशन वाली सड़क पर गरजती हुई जा रही है। मेरे मुँह से बेअख़्तियार 'आह' निकल पड़ी और मैं कलेजा थाम कर बैठ गया।

सुबह को तकिए के नीचे एक लिफ़ाफ़ा मिला। उसमें सौ-सौ रुपए के पाँच नोट थे और एक ख़त भी था। वही पाँच सौ रुपए मैं अब तक बचाए हुए हूँ। हज़ार मुसीबतों में भी उसमें का एक पैसा नहीं ख़र्च किया।

सन्तोषानन्द—और वह ख़त?

मैं—शायद वह भी कहीं रक्खा हो। हाँ, याद आया।

मैंने आलमारी का एक गुप्त ख़ाना खोला और उसमें से वह ख़त निकाल कर डॉक्टर साहब के हाथ में दे दिया।

(क्रमशः)

(Copyright)

ब्रह्म-समाज

[ले० श्री० कन्हैयालाल जी शास्त्री, विशारद]

भारतवर्ष अत्यन्त प्राचीन देश है और यहाँ की प्राचीन सभ्यता अब तक नष्ट नहीं होने पाई है। निस्सन्देह उसमें अनेक परिवर्तन हुए, लेकिन बीज वही पुराना है। परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तन करते रहने से उसका नाश नहीं हुआ। प्राचीन सनातन वैदिक हिन्दू धर्म के सिद्धान्त इतने व्यापक थे कि उसके दायरे के भीतर हर प्रकार के विचार रखने वालों के लिए जगह थी। प्रत्येक धर्म के साथ आचार-सम्बन्धी नियम भी लगे रहते हैं और यही नियम उस धर्म के मानने वालों की सामाजिक रीति-रिवाज और आपस के व्यवहार के रूप में प्रकट होते हैं।

हिन्दुओं के आचार-सम्बन्धी नियम—सामाजिक रीति-रस्म—भी काफ़ी उदारता के साथ बनाए गए थे और परिस्थिति के अनुसार उनमें भी बराबर परिवर्तन होता आया था। किन्तु कई कारणों से यह परिवर्तन एकाएक रुक गया और उसी समय से हिन्दू-धर्म और समाज का ह्रास होने लगा। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में हमारी अवनति चरम-सीमा तक पहुँच चुकी थी। बहुत दिनों तक तो हम अपने प्राचीन गौरव के मद में अपनी गिरती हुई अवस्था को पहचान ही न सके। हम यही राग अलापा करते थे कि हमारा प्राचीन गौरव ऐसा ऊँचा था और हमारे पूर्व-पुरुष ऐसे विद्वान् और प्रतिभाशाली थे कि दुनिया में उनका कोई सानी न था। उस समय हम यह नहीं समझ रहे थे कि हमारे पूर्व-पुरुष कितने ही ऊँचे रहे हों, लेकिन अब तो हम गिर चुके हैं। यदि कोई हमें गिरा हुआ कहता था तो हम उसका यही अर्थ लगाते थे कि हमारे पूर्वज भी गिरे हुए थे, क्योंकि अज्ञान के कारण हमारा यह ख़याल था कि हमारा वर्तमान जीवन और रहन-सहन हमारे पूर्वजों के ही अनुसार है। हम यह भूल गए थे कि हमारी प्राचीन सभ्यता क्या थी। हममें जो अनेक प्रकार की निन्दनीय कुरीतियाँ आ गई थीं, उन्हें ही हमने अपनी प्राचीन सभ्यता का आवश्यक अङ्ग समझ रक्खा था। जब किसी समाज का मानसिक विकास रुक जाता है, तब वह धर्म के वास्तविक तत्वों को भूल जाता है। उचित और अनुचित का विवेचन करने की शक्ति उसमें नहीं रह जाती। पुरानी बातों को वह इस प्रकार पकड़ लेता है, जैसे अबोध बालक अपने किसी आत्मीय के मृत शरीर को मोहवश पकड़े रहता है। साधना के वाह्य अङ्ग का आन्तरिक उद्देश्य नष्ट हो जाने से अनेक प्रकार की कुप्रथाएँ प्रचलित हो जाती हैं और तरह-तरह के अनाचार दृष्टिगोचर होते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हमारे सामाजिक रीति-रिवाजों में भयानक कुरीतियाँ उत्पन्न हो गई थीं। हमारे सामाजिक नियम अपने ऊँचे आदर्श और लक्ष्य से हट कर हृदयहीन बाहरी आडम्बर मात्र रह गए थे। परिणाम-स्वरूप अनमेल-विवाह, विधवाओं की करुणाजनक अवस्था, सती की क्रूर प्रथा, तिलक-दहेज़ की हृदयहीनता, कुलीन ब्राह्मणों की बहुविवाह-प्रथा और अनेक दूसरी बुराइयाँ समाज को जर्जरित कर रही थीं। धार्मिक विचारों में भी ऐसा ही विचारहीन परिवर्त्तन हो गया था। हमारे प्राचीन धर्म-ग्रन्थों और दर्शन-शास्त्रों में ईश्वर-सम्बन्धी ऊँचे विचारों के रहते हुए भी, उनकी जानकारी न होने के कारण हम अन्धकार में पड़े हुए थे और नाना प्रकार के देवी-देवताओं और भूत-प्रेतों की पूजा हमारे देश में प्रचलित थी। सर्वशक्तिमान एक ईश्वर का विचार मानों उस समय हम लोगों के बीच था ही नहीं। जिस समय हम ऐसे अन्धकार की गोद में पड़े हुए थे, उसी समय देश में अङ्गरेज़ी शिक्षा का प्रचार प्रारम्भ हुआ। अङ्गरेज़ी शिक्षा द्वारा यूरोपीय समाज और ईसाई-धर्म से हमारा सम्पर्क हुआ। उस समय हमने अपनी तत्कालीन गिरी हुई अवस्था से यूरोपियन समाज और ईसाई-धर्म की तुलना की तो हमें मालूम हुआ कि उनके सिद्धान्त और उनके जीवन का आदर्श हमसे कहीं ऊँचा है। स्मरण रहे कि हम अज्ञानवश अपनी तत्कालीन पतित अवस्था और तत्वहीन ऊपरी आडम्बरों को ही अपने धार्मिक

सिद्धान्तों का व्यावहारिक रूप समझ रहे थे। नतीजा यह हुआ कि अङ्गरेज़ी शिक्षित समाज यूरोपियन समाज और ईसाई-धर्म की ओर झुका; उसी में सत्य का अंश देख कर ज़ोरों से उसे अपनाने लगा। अङ्गरेज़ों की सभी बातें अच्छी समझी जाने लगीं, लोग अङ्गरेज़ी रीति-रिवाज में रहने और ईसाई-धर्म स्वीकार करने में ही अपना गौरव समझने लगे। यह प्रवाह उसी अवस्था में रुक सकता था जब लोगों को—शिक्षित समाज को—यह विश्वास हो जाता कि हमारे जीवन और धर्म का आदर्श ईसाई-सम्प्रदाय के आदर्श से छोटा नहीं है। और यह विश्वास हिन्दू-धर्म के प्राचीन ऊँचे आदर्श को सच्चे रूप में सामने रखने से ही हो सकता था।

इस समय हमारे प्राचीन विचारों को नए प्रकार से समझाने वालों की आवश्यकता थी और यह महान् कार्य राजा राममोहन राय ने किया। यों तो ब्रिटिश-काल में एक ईश्वर की आराधना का मत रामचरन और रामवल्लभ नामक व्यक्तियों ने भी क्रमशः 'रामसनेही' और 'रामवल्लभी' मतों के नाम से चलाया था, लेकिन अङ्गरेज़ी शिक्षा के समागम में रहते हुए शिक्षितों के बीच में अपने मत का प्रचार करने वाला ब्रह्म-समाज ही पहला मत था।

जिस समय ब्रह्म-समाज की स्थापना हुई, उस समय वह हिन्दू-समाज के एक धार्मिक सम्प्रदाय के समान था। वह केवल एक ईश्वर को मानता था और उसका विश्वास था कि ईश्वर सर्वव्यापी है और वह किसी भी वस्तु में विशेष रूप से उपस्थित नहीं रहता—सर्वत्र समान रूप से व्याप्त है। इस कारण यह समाज मूर्तिपूजा का विरोधी है। आगे चल कर जब देश में समाज-सुधार का कार्य बढ़ चला, तब ब्रह्म-समाज के लोग ही उसके भी अगुवा थे और उन्होंने ब्रह्म-समाज के उद्देश्यों में समाज-सुधार का कार्य भी रक्खा। इसी मार्ग पर आगे चल कर भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज अथवा नवविधान और साधारण ब्रह्म-समाज के रूप में उसका विकास हुआ। इस समय तक प्राचीन हिन्दू-धर्मग्रन्थों की बहुत-कुछ खोज हो चुकी थी और शिक्षित समाज ने यह देख लिया था कि उसमें भी एक ईश्वर की आराधना है और उस प्राचीन वैदिक हिन्दू-धर्म का आदर्श बहुत व्यापक है। इस समय ब्रह्म-समाज का धार्मिक अङ्ग शिथिल पड़ गया और वह मुख्यतया हिन्दू-धर्म का एक सामाजिक सम्प्रदाय हो गया है।

ब्रह्म-समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय का जन्म हुगली ज़िला अन्तर्गत राधानगर में २२ वीं मई, सन् १७७२ ईसवी को हुआ था। आपके पिता मुर्शिदाबाद के नवाब की मातहती में एक छोटे ज़मींदार थे। उस समय की प्रथा के अनुसार अरबी और फ़ारसी की शिक्षा पाने के लिए राममोहन पटने भेजे गए। वहाँ उन्होंने क़ुरान और सूफ़ियों के ग्रन्थों को पढ़ा। सूफ़ियों का मत उन्हें बहुत पसन्द आया। वहाँ से लौट कर घर पर वे मूर्ति-पूजा के ख़िलाफ़ लेख लिखा करते थे। उनके पिता को यह बात बहुत नापसन्द थी। उन्होंने कई बार राममोहन को ऐसे लेख लिखने से मना किया और उनके विचार भी पलटने चाहे, पर इसका कुछ भी असर नहीं हुआ। अन्त में उन्होंने राममोहन को घर से निकाल दिया। उत्साही राममोहन घर से निकल कर हिमालय की यात्रा करते हुए तिब्बत पहुँचे। वहाँ बौद्ध-धर्म का अध्ययन किया और लौटने पर चार वर्षों तक काशी में रह कर संस्कृत ग्रन्थों का भी ख़ूब अनुशीलन किया। इसके बाद उनके पिता ने उन्हें घर आने की इजाज़त दे दी। घर आकर आपने फ़ारसी में "तोहफ़तुल-मुवाहदीन" (अर्थात् एक ईश्वर के मानने वालों को उपहार) नामक पुस्तक लिखी। आपने कुछ काल तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नौकरी भी की थी और उसी समय अङ्गरेज़ी भी पढ़ी थी। नौकरी के दिनों में काम से लदे रहने पर भी आप धर्मग्रन्थों के अध्ययन के लिए समय निकाल लिया करते थे। सन् १८१४ ईसवी से आप कलकत्ते में रहने लगे। यहीं से पहले-पहल आपने वेदान्त का अनुवाद प्रकाशित कराया और एक 'आत्मीय सभा' स्थापित की। इस सभा में धार्मिक विषयों का विचार और प्रचार होता था। सन् १८१६ ईसवी में यह सभा टूट गई। राममोहन राय ने उपनिषदों का अर्थ करके उन्हें प्रकाशित करना प्रारम्भ किया और मूर्तिपूजा के विरोध में कई परचे लिखे। इससे कट्टर मूर्तिपूजक हिन्दू आपके विरोधी हो गए। सन् १८२० ईसवी में आपने ईसामसीह के नैतिक और दार्शनिक उपदेशों का एक संग्रह प्रकाशित कराया। इससे हिन्दुओं का विरोध और बढ़ा। ईसाई भी बिगड़े; क्योंकि इस संग्रह में

ईसामसीह के सम्बन्ध में कही जाने वाली चमत्कारिक बातें नहीं लिखी गई थीं। ईसाइयों ने ट्रिनिटी (Trinity) के सिद्धान्त पर बहस चलाया और इस बहस में राजा राममोहन राय ने बहुत विद्वत्ता के साथ ट्रिनिटी का खण्डन करके ईश्वर की एकता साबित की। उनके इस कार्य का ऐडम नामक एक नवागत अङ्गरेज़ पर बड़ा असर पड़ा और वे यूनिटेरियन चर्च (Unitarian Church) में शरीक हो गए। यूनिटेरियनों का सिद्धान्त राजा साहब के सिद्धान्त से बहुत-कुछ मिलता-जुलता था। इसलिए राजा साहब भी ऐडम के साथ उनकी प्रार्थना में शरीक होते थे। यूनिटेरियनों का एक सङ्घ बना, पर आगे चल कर वह टूट गया।

ब्रह्म-समाज की स्थापना के मूल कारणों के सम्बन्ध में दो प्रकार की बातें कही जाती हैं। कुछ लोगों का तो कहना है कि यूनिटेरियनों का सङ्घ टूट जाने पर इसकी आवश्यकता प्रतीत हुई। दूसरे लोगों का कहना है कि एक दिन जब राजा साहब यूनिटेरियनों की प्रार्थना से लौट रहे थे, तब उनके सहकारी ताराचन्द चक्रवर्ती और चन्द्रशेखर देव ने कहा कि हमें एक ऐसा समाज स्थापित करना चाहिए, जिसमें पूर्णतया हमारे ही सिद्धान्तों के अनुसार प्रार्थना हुआ करे। अन्त में २० अगस्त, सन् १८२८ ईसवी को ब्रह्म-समाज की स्थापना हुई। प्रति शनिवार को समाज की बैठक हुआ करती थी, जिसके आरम्भ में दो तेलगू ब्राह्मण किनारे के कमरे से वेदपाठ किया करते थे। इस कमरे के दरवाज़ों पर परदा लगा रहता था। वेदपाठ के बाद उत्सवानन्द विद्यावागीश उपनिषद् के मन्त्र पढ़ते थे और पीछे से रामचन्द्र विद्यावागीश बँङ्गला में उसका अर्थ करते थे, तत्पश्चात् आपका एक उपदेश भी होता था।

सन् १८३० ईसवी में राजा राममोहन राय ने इङ्गलैण्ड की यात्रा की और २७ सितम्बर, सन् १८३३ ईसवी को ब्रिस्टल में आपका स्वर्गवास हो गया! राजा साहब की इङ्गलैण्ड-यात्रा के पश्चात् द्वारकानाथ ठाकुर और रामचन्द्र विद्यावागीश ब्रह्म-समाज का काम सँभालते रहे। सन् १८४१ ईसवी से महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर भी समाज में आ मिले। इस समय तक समाज के वेदपाठ वाले कमरे में अब्राह्मणों के प्रवेश करने की मनाही थी। इसीलिए उस कमरे के दरवाज़े पर परदा पड़ा रहता था और अब्राह्मण लोग दूसरे कमरे में बैठते थे। महर्षि ने देखा कि यह समाज के सिद्धान्तों के प्रतिकूल होता है। आपने इस भेदभाव को उठा दिया। समाज के लिए कुछ नियम और सदस्यों के लिए प्रतिज्ञाएँ बनाई गईं। सन् १८४३ ईसवी में सब से पहली बार नियमानुसार ब्रह्म-समाज के सदस्य दीक्षित किए गए। रामचन्द्र विद्यावागीश आचार्य बनाए गए और देवेन्द्रनाथ तथा उनके बीस साथियों ने दीक्षा ली। समाज की ओर से अक्षयकुमार दत्त के सम्पादकत्व में 'तत्वबोधिनी पत्रिका' प्रकाशित होने लगी। इसमें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजेन्द्रलाल मित्र आदि विद्वानों के लेख छपते थे। इस पत्रिका द्वारा समाज का प्रचार-कार्य बहुत बढ़ा। बङ्गला भाषा की भी उन्नति होने लगी। महर्षि ने राजनारायण बोस की सहायता से उपनिषदों का अङ्गरेज़ी भाषा में अनुवाद प्रकाशित कराना प्रारम्भ किया। संस्कृत भाषा और उपनिषदों की शिक्षा देने का भी समाज की ओर से प्रबन्ध किया गया। अभी तक ब्राह्मणों का कोई एक धर्म-ग्रन्थ न था। अपने विश्वास के अनुसार वे एक ईश्वर की उपासना किया करते थे। ईश्वर की उपासना के कई मन्त्र महर्षि ने उपनिषदों से निकाले थे। अब उन्होंने 'ब्राह्म-धर्म' नामक पुस्तक का सङ्कलन किया। इसके दो भाग थे—एक में आचार आदि के सम्बन्ध में नियम और दूसरे में धार्मिक विश्वास। यह ग्रन्थ महाभारत, वेद और उपनिषदों के आधार पर बनाया गया। इन ग्रन्थों में जो बातें इनके मत से मिलने वाली थीं, उन्हें तो इन्होंने ले लिया था और शेष बातें छोड़ दी थीं। वेदों को ये लोग ईश्वरीय ग्रन्थ नहीं मानते। ब्राह्म-धर्म में ईश्वर और मनुष्य का सम्बन्ध पूज्य और पूजक का है।

इस स्थान पर इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि इस समय ब्राह्म-धर्म का हिन्दू-धर्म से क्या सम्बन्ध था। हिन्दुओं में और इनमें इतना भेद तो स्पष्ट ही है कि ये मूर्तिपूजा के बिलकुल विरोधी थे। केवल एक ईश्वर को मानते थे, उसके अवतारों में विश्वास नहीं करते थे और संसार की किसी भी वस्तु में उसका विशेष रूप से उपस्थित रहना भी नहीं मानते थे। हिन्दुओं के सामाजिक कार्यों से भी इनके सामाजिक कार्यों में इसी विश्वास के अनुसार भेद था। सामाजिक कृत्यों में जहाँ-

जहाँ मूर्तिपूजा होती थी उसे ब्राह्म लोग नहीं मानते थे। इसीलिए महर्षि ने श्राद्ध इत्यादि के लिए ऐसे नियम बनाए थे जिनमें मूर्तिपूजा नहीं होती थी। महर्षि देवेन्द्रनाथ प्रतिवर्ष दुर्गा-पूजा के अवसर पर अपने घर के बाहर चले जाया करते थे, और थोड़े दिनों के पश्चात् तो उन्होंने यह पूजा-पाठ अपने घर से बिलकुल ही उठा दिया। अपने पिता की मृत्यु पर महर्षि ने अपनी नई विधि से उनकी श्राद्ध-क्रिया की, जिसमें मूर्तिपूजा का अंश निकाल दिया गया था। इस कारण से उनके जाति वालों ने उन्हें जाति से निकाल दिया।

इस समय तक ब्रह्म-समाज केवल अपने धार्मिक विश्वास के कारण ही तत्कालीन हिन्दू-समाज से भिन्नता रखता था। ब्रह्म-समाजियों के समस्त सामाजिक रीति-रिवाज हिन्दुओं के से थे, केवल मूर्ति-पूजा ही वे नहीं करते थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ ही अब तक ब्रह्म-समाज के प्रधान सञ्चालक थे और ये ब्रह्म-समाज को हिन्दू-समाज का ही अङ्ग समझते थे। ब्रह्म-समाज के द्वारा समाज-सुधार का काम भी हो रहा था। पर महर्षि इस काम में बहुत आगे नहीं बढ़ना चाहते थे। सन् १८५७ ईसवी में केशवचन्द्र सेन ने समाज में प्रवेश किया। इनके साथ अनेक युवकों ने भी दीक्षा ली। अब ब्रह्म-समाज द्वारा समाज-सुधार का कार्य भी बड़ी तत्परता के साथ होने लगा। केशवचन्द्र सेन के साथ नवयुवकों का जो दल आया था, वह बड़ा ही उत्साही था। इसे समाज के केवल ईश्वर-सम्बन्धी सिद्धान्त को मानने और उसका प्रचार करने मात्र से ही सन्तोष नहीं होता था। यह दल हिन्दुओं की समस्त सामाजिक कुरीतियों को दूर करना अपना कर्तव्य समझता था, और इस दल के युवक यह भी समझते थे कि अपने में से इन कुरीतियों को दूर किए बिना हम ब्रह्म-समाजी कहला ही नहीं सकते। सन् १८५९ ईसवी में एक ब्राह्म-स्कूल खोला गया। इसमें ब्राह्मों के आचार-विचार पर बङ्गला और अङ्गरेज़ी में प्रति सप्ताह व्याख्यान होते थे। आगे चल कर सङ्गत्-सभाएँ स्थापित हुईं, जिनमें सब लोग एकत्रित होकर भगवत्-प्रार्थना करते और अध्ययन किया करते थे। इन लोगों ने बाइबल और थीयोडोर पार्कर, प्रोफ़ेसर नडिमैन, मिस कोबे आदि के ग्रन्थों को पढ़ा। सर डबल्यू० हेमिल्टन और विक्टर कज़िन के दार्शनिक ग्रन्थों का भी ये अध्ययन किया करते थे। इससे इनमें बड़ा उत्साह आया। ग्रन्थों का अध्ययन करते समय ये पुलकित हो जाया करते थे। सङ्गत में जाने से माता-पिता अथवा अन्य लोग, कितना ही क्यों न मना करें, पर ये लोग नहीं मानते थे। इससे नवयुवकों के आचरण में बड़ा सुधार हुआ। इन लोगों ने जात-पाँत का विभेद छोड़ दिया। जनेऊ को भेद-भाव का परिचायक समझ कर त्याग दिया। जिन त्योहारों में मूर्ति-पूजा होती थी उनके उत्सवों में शरीक नहीं होते थे। वेश्या का नाच न देखने और मद्यपान न करने की इन लोगों ने प्रतिज्ञाएँ कीं। इनमें इतना सेवा-भाव और उत्साह था कि ये समाज के कल्याण के लिए अपनी जान न्योछावर कर देने के लिए तैयार रहते थे, सत्य पर हमेशा दृढ़ रहते थे, कोई झूठ बात मुँह से न निकल जाय, या कोई झूठी प्रतिज्ञा न कर बैठें—इस भय से ये सदा 'मैं इस बात की चेष्टा करूँगा' 'मेरा यह विचार है'—इत्यादि प्रकार से बोला करते थे। ईश्वर की प्रार्थना में ये अपने पापों के लिए दुःख प्रकट करते और उनसे छुटकारा पाने के लिए विनती करते थे। यह बात इनमें ईसाई-धर्म के संसर्ग से आई थी। महर्षि देवेन्द्रनाथ की प्रार्थनाओं में ये बातें न थीं, उनमें आनन्द का भाव था।

इन्हीं दिनों विजयकृष्ण गोस्वामी और उनके अन्य मित्र ब्रह्म-समाज में शरीक हुए। महर्षि देवेन्द्रनाथ की दूसरी लड़की सुकुमारी का ब्याह और केशवचन्द्र सेन के लड़के करुणचन्द्र का जातकर्म नई पद्धति के अनुसार हुआ। केशवचन्द्र के नातेदारों ने भी उन्हें छोड़ दिया। लेकिन समाज-सुधार का काम तेज़ी से आगे बढ़ चला। केशवचन्द्र सेन के अनुयायी नवयुवकों ने जात-पाँत का बन्धन तो तोड़ ही डाला था, अपने में से एक का विवाह उन लोगों ने नीच कहाने वाली जाति की एक लड़की से कर दिया। फिर ब्राह्म-रीति से एक विधवा का भी विवाह करा दिया। इनके इन सब कार्यों से पुराने ख़्याल के हिन्दू क्रोध के मारे जले जाते थे। इन कार्यों में शरीक होने वाले नवयुवक घरों से निकाले जाने लगे, उन्हें कई तरह की यन्त्रणाएँ दी जाने लगीं; लेकिन इस सब से उनके उत्साह की वृद्धि ही होती रही। महर्षि देवेन्द्रनाथ भी इन लोगों के कार्यों से पूरी तरह

बङ्गाल के प्रसिद्ध समाज-सुधारक तथा ब्रह्मसमाज के प्रवर्त्तक

स्वर्गीय राजा राममोहन राय

सहमत न थे। वे चाहते थे कि ब्राह्मों को केवल अपने धार्मिक सिद्धान्त का प्रचार करना चाहिए और सामाजिक रीति-रिवाज को लोगों की व्यक्तिगत राय पर छोड़ देना चाहिए। इन्हीं दिनों विजयकृष्ण गोस्वामी ने उन्हें लिखा कि भेदभाव का परिचायक जनेऊ पहनने वालों को समाज का उपाचार्य न बनाइए। पत्र पाकर महर्षि बड़े असमञ्जस में पड़ गए। वे जनेऊ पहनने या न पहनने के प्रश्न को ब्रह्म-समाज के सिद्धान्त से सम्बद्ध नहीं समझते थे। आख़िर इन लोगों के सन्तोष के लिए उन्होंने अपनी इच्छा के ख़िलाफ़ जनेऊधारियों को उपाचार्य पद से अलग करने का निश्चय किया। लेकिन बीच ही में एक ऐसी घटना हो गई, जिससे यह निश्चय कार्य-रूप में परिणत न हो सका। समाज की प्रबन्ध-समिति से भी केशवचन्द्र के पक्ष के लोग अलग कर दिए गए। "तत्त्वबोधिनी पत्रिका" का सम्पादन-कार्य भी इन लोगों के हाथ से ले लिया गया। अब इस दल के लोगों ने 'धर्म-तत्व' नामक दूसरा पत्र निकाला। केशवचन्द्र का विचार महर्षि से मिल कर काम करने का था, लेकिन साथ ही वे नवयुवकों को भी नाराज़ करना नहीं चाहते थे, इसलिए वे नवयुवकों के साथ ही रहे। जब इस नए दल का प्रचार-कार्य बढ़ा, तब बम्बई और मद्रास प्रान्त से भी व्याख्यानों के लिए बुलावे आए और केशवचन्द्र ने उन प्रान्तों का दौरा किया। फल-स्वरूप बम्बई में प्रार्थना-समाज और मद्रास में वेद-समाज की स्थापना हुई।

२३ जुलाई, सन् १८६९ को इस नवयुवक-दल की ओर से महर्षि देवेन्द्रनाथ के पास एक पत्र भेज कर प्रार्थना की गई कि या तो ऐसे लोगों को उपाचार्य बनाइए जो जातिभेद-परिचायक जनेऊ न पहनते हों या किसी दूसरे दिन उपासना के लिए हमें समाज का भवन दिया कीजिए। इसी समय से ब्रह्म-समाज में फूट पैदा हुई। महर्षि ने इस पत्र का उत्तर देते हुए लिखा कि—'जनेऊधारियों को उपाचार्य न बनाने की प्रार्थना स्वीकार नहीं की जा सकती, क्योंकि वे और आप लोग दोनों ही एक ईश्वर की उपासना के प्रश्न को प्रधान रूप से सामने रख कर समाज में शरीक हुए थे। इसके सिद्धान्तों के प्रचार के लिए आपने और उन्होंने समान रूप से कष्ट सहे हैं। इस समय यदि सामाजिक प्रश्न पर उनके विचार बहुत आगे नहीं बढ़े हुए हैं और ब्रह्म-समाज के मुख्य सिद्धान्त को वे उसी प्रकार मानते हैं, तो मैं उन्हें अलग नहीं कर सकता। समाज का भवन प्रार्थना के लिए आप लोगों को दूसरे दिन देना भी उचित नहीं है, इससे आपस की फूट बढ़ेगी।' महर्षि का यह उत्तर पाकर इन लोगों ने ११ नवम्बर, सन् १८६६ को ब्राह्मों की एक सभा की और 'भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज' के नाम से अपनी एक अलग संस्था स्थापित की। जो लोग समाज-सुधार के काम में बहुत आगे बढ़े हुए थे वे सब इसमें शरीक हो गए। अब महर्षि ने अपने समाज का नाम 'आदि ब्रह्म-समाज' रक्खा। समाज-सुधार के प्रश्न को समाज का आवश्यक कार्य न समझते हुए उसे लोगों की इच्छा पर छोड़ देने का विचार रखने वाले लोग महर्षि के साथ आदि-ब्रह्मसमाज में रहे। इस समय से ब्रह्म-समाज दो भागों में विभक्त हो गया। इन दोनों में केवल सामाजिक प्रश्नों पर मतभेद था। महर्षि ब्रह्म-समाज को हिन्दू-समाज का ही एक अङ्ग समझते थे और उसका मुख्य कार्य धार्मिक ही मानते थे। आदि ब्रह्म-समाज की स्थिति बाबू राजनारायण बोस के निम्न-लिखित लेख से स्पष्ट हो जाती है—"यद्यपि ब्राह्म-धर्म एक सार्वभौम धर्म है, किन्तु इसे सार्वभौमिक रूप प्रदान करना असम्भव है। भिन्न-भिन्न देशों में उसका भिन्न-भिन्न रूप हो जायगा, इसी लिए आदि-समाज ने अपने सिद्धान्तों का हिन्दुओं में प्रचार करने के लिए हिन्दू-रूप धारण किया और हिन्दुओं के अनेक रीति-रिवाजों को भी स्वीकार कर लिया है। समाज-सुधार के कार्य को वह लोगों के व्यक्तिगत विचार पर छोड़ देता है। वह इसकी अपेक्षा मूर्तिपूजा छोड़ने और आचरण की पवित्रता पर अधिक ज़ोर देता है।" भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज वाले समाज-सुधार के काम को भी ब्रह्म-समाज का उतना ही महत्वपूर्ण अङ्ग समझते थे, जितना मूर्तिपूजा के त्याग को। दोनों समाजों में यही अन्तर था।

भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज के नवयुवक उत्साह के साथ समाज-सुधार के काम में आगे बढ़े। ये अक्सर ऐसे भी कार्य कर बैठते थे, जिसे केशवचन्द्र बहुत नापसन्द करते थे। समाज-सुधार के नए जोश में बहुत लोग अपनी पत्नी सहित स्टेशनों पर अङ्गरेज़ों के साथ बैठ कर

भोजन किया करते थे। स्त्रियों के लिए एक नए प्रकार की पोशाक बनवाई थी, जो आधी अङ्गरेज़ी और आधी हिन्दोस्तानी तरीक़े की थी। ये लोग अपनी स्त्रियों को यही अद्भुत पोशाक पहना कर उन्हें साथ ले घूमने निकलते थे। इससे देखने वाले और ख़ास कर बच्चे बहुत हँसा करते थे, लेकिन अपनी धुन में ये किसी की परवा नहीं करते थे। यह सब काम ये सच्चे दिल से समाज के लिए कल्याणकारी समझ कर ही करते थे। प्रचार के काम में इन लोगों ने बहुत कष्ट सहे। विजयकृष्ण गोस्वामी के कहने से इन लोगों ने अपने समाज में भी वैष्णवों के समान सङ्कीर्तन जारी किया। २२ अक्टूबर, १८६७ को भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज की दूसरी बैठक हुई। पहली बैठक में भी प्रबन्ध के लिए कोई समिति नहीं बनाई गई थी और इस बार भी न कोई समिति बनी और न कोई नियम बना। ईश्वर को तो सभापति बनाया और केशवचन्द्र सेन मन्त्री बने। सङ्कीर्तन के प्रवेश के बाद लोग केशवचन्द्र की पूजा करने लगे। लेकिन उन्होंने मना कर दिया। १८७० ईसवी में केशवचन्द्र इङ्गलैण्ड गए और वहाँ से लौट कर उन्होंने एक 'इण्डियन रिफ़ॉर्म एसोसिएशन' बनाया और इसके द्वारा ग़रीबों की सहायता, स्त्री-शिक्षा, मादक द्रव्य-निषेध और सस्ते दाम में ग्रन्थों के प्रकाशन का काम करने लगे।

सन् १८६८ में यह प्रश्न उठा कि ब्राह्म-पद्धति के विवाह जायज़ हैं या नहीं। भारत-सरकार के क़ानून-सदस्य ने कहा कि वे विवाह क़ानून से जायज़ नहीं हैं। इस पर भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज वालों ने उसे जायज़ क़रार दिलाने के लिए भारत-सरकार से एक क़ानून बनवाना चाहा, लेकिन आदि ब्रह्म-समाज वालों ने इसका विरोध किया। उनका कहना था कि हमारी विवाह-पद्धति में हिन्दुओं की पद्धति से कोई फ़र्क़ नहीं है। इनके विरोध से उस क़ानून का नाम 'ब्राह्मो-मैरिज ऐक्ट' न होकर 'सिविल मैरिज ऐक्ट' हुआ। आगे चल कर भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज में भी फूट के लक्षण दिखाई देने लगे। न तो इसकी कोई नियमावली थी और न कोई प्रबन्ध-समिति। ईश्वर की अध्यक्षता में केशवचन्द्र सेन अपनी इच्छानुसार इसका सञ्चालन करते थे। यह बात बहुतों को नापसन्द थी। समाज-सुधार के प्रश्न पर भी कुछ लोग बहुत बढ़े हुए ख़्याल के थे और केशवचन्द्र उनसे सहमत न होते थे। इन लोगों ने चाहा कि प्रार्थना के समय स्त्री-पुरुष सब एक साथ बैठा करें, पर केशवचन्द्र इस बात पर राज़ी नहीं हुए। लेकिन इन लोगों ने भी नहीं माना और अपने समस्त कुटुम्ब वालों को साथ लेकर बैठने थे। स्त्रियों की शिक्षा के सम्बन्ध में भी केशवचन्द्र के विचार इन लोगों से मिलते न थे। वे स्त्रियों को गणित, विज्ञान, दर्शन आदि विषयों की शिक्षा देना नहीं चाहते थे—केवल गृहकार्य की शिक्षा पर्याप्त समझते थे। लेकिन ऐसे लोग भी इस समाज में थे, जो ऊँची से ऊँची शिक्षा स्त्रियों को दिलाना चाहते थे। इन लोगों ने हिन्दू-महिला-विद्यालय स्थापित किया। बहुत दिनों तक यह बङ्ग-महिला-विद्यालय के नाम से चलता रहा और आगे ड्रिङ्कवाटर बेहयून के कॉलेज में मिला दिया गया। कुछ लोगों का यह विचार था कि केशवचन्द्र यह समझते हैं कि ईश्वर का उन्हें आदेश हुआ करता है और इसलिए वे चाहते हैं कि सब लोग उनकी बातों को ज्यों की त्यों मान लिया करें। इस विचार से भी लोग उनसे असन्तुष्ट थे, और अन्त में कूचबिहार वाले विवाह का प्रश्न ऐसा उठा, जिससे कि असन्तुष्ट होने वालों को मौक़ा मिला और साधारण ब्रह्म-समाज के नाम से उन्होंने अपनी एक अलग संस्था क़ायम कर ली।

कूचबिहार के महाराज नाबालिग़ होने के कारण अङ्गरेज़ अफ़सरों की देख-रेख में रहा करते थे। इन अभिभावकों ने उनका विवाह केशवचन्द्र की लड़की से करना चाहा। महाराज की अवस्था उस समय १६ वर्ष से कम थी और केशवचन्द्र की कन्या भी १४ वर्ष से कम की थी। ब्राह्म-पद्धति के अनुसार इतनी अवस्था में (अर्थात् लड़कों का १६ और लड़कियों का १४ बरस से कम उमर में) विवाह नहीं हो सकता था। केशवचन्द्र को यह विश्वास दिलाया गया था कि इस विवाह में मूर्तिपूजा न होगी। अन्त में कई कारणों से वे विवाह पर राज़ी हो गए। कहते हैं कि इस विवाह के लिए उन्हें ईश्वर का आदेश भी मिला था। अस्तु—

विवाह हुआ और उसमें कई बातें केशवचन्द्र की इच्छा के विरुद्ध हुईं। कहा जाता है कि उन्हें इसमें धोखा दिया गया। आख़िर इनके विरोधियों ने १५ मई, सन् १८७८ ईसवी को एक सभा करके निम्न-लिखित प्रस्ताव द्वारा साधारण ब्रह्म-समाज की स्थापना की:—

"ब्रह्म-समाज में नियमानुसार सङ्गठन के अभाव पर यह सभा दुःख प्रकट करती है और इससे उत्पन्न होने वाली अनेक प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने तथा भारतवर्ष में एक ईश्वरवाद के प्रचार-कार्य में समस्त ब्रह्म-समाज के विचारों का प्रतिनिधित्व और सहयोग प्राप्त करने के विचार से एक समाज की स्थापना करती है, जिसका नाम 'साधारण ब्रह्म-समाज' होगा।"

अब ब्रह्म-समाज तीन भागों में विभक्त हो गया। उत्साही कार्यकर्ताओं के इस प्रकार निकल जाने का केशवचन्द्र के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे उदास रहने लगे। आगे परमहंस रामकृष्ण से उनकी भेंट हुई और हिन्दू-धर्म तथा मूर्ति-पूजा सम्बन्धी उनके विचारों में बड़ा परिवर्तन हुआ। उनका ईश्वर-सम्बन्धी सिद्धान्त बहुत उदार हो गया। सन् १८८० के 'सण्डे-मिरर' नामक पत्र में आपने इस प्रकार लिखा था—"हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा सर्वथा उपेक्षणीय या त्याज्य नहीं है। ईश्वर की विभूतियों की साकार उपासना ही मूर्तिपूजा है। इसमें से रूप-रङ्ग निकाल देने पर जो रह जाता है, वही स्वर्गीय विधान है। एक ईश्वरवादी मूर्ति को तो त्याग देता है, परन्तु जिन भावनाओं से वह मूर्ति बनी है, उन्हें नहीं छोड़ सकता। हिन्दू लोग जिन मूर्तियों की पूजा करते हैं, उनमें से प्रत्येक मूर्ति ईश्वर की एक विभूति का परिचायक है और उसे एक नाम दे दिया गया है। नवविधान में विश्वास करने वाला व्यक्ति उस परमात्मा की उपासना करता है, जिसमें हिन्दुओं की तैंतीस कोटि देवताओं की विभूतियाँ हैं।" सन् १८८१ ईसवी में केशवचन्द्र ने भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज का नाम 'नवविधान' रक्खा। आगे चल कर इसकी ओर से अधिक काम नहीं हुआ। ८ जनवरी, १८८४ ईसवी को केशवचन्द्र सेन का देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु के बाद इसमें और भी शिथिलता आ गई। इस बात पर झगड़ा चला कि केशवचन्द्र के बाद अब उपासना के समय वेदी पर दूसरा व्यक्ति बैठ सकता है या नहीं? बहुत झगड़े के बाद निश्चय हुआ कि उपासना करने वाला वेदी पर तो बैठ सकता है, पर जिस ग़लीचे पर केशवचन्द्र बैठते थे उस पर वह नहीं बैठेगा। समाज में नियमावली का अभाव ही साधारण ब्रह्म-समाज की स्थापना के आसन्न कारणों में मुख्य था। अतः साधारण ब्रह्म-समाज ने पहले ही से अपने नियम बना लिए थे, अतः इसका काम सङ्गठित रूप से चलने लगा। इस समाज की ओर से स्त्री-शिक्षा का कार्य विशेष रूप से हुआ। प्रचार-कार्य करने के लिए विद्वान् लोग बाहर भेजे गए। पण्डित शिवनारायण अग्निहोत्री पञ्जाब में प्रचार करते रहे। आगे साधारण ब्रह्म-समाज के लोगों से मतभेद हो जाने के कारण, उन्होंने इससे अपना सम्बन्ध तोड़ लिया और सन् १८८७ ईसवी में देव-समाज की स्थापना की। इस समाज में शिवनारायण देवगुरु कहे जाते हैं।

सन् १८६४ ईसवी में केशवचन्द्र ने जब दक्षिण की यात्रा की थी, तब मद्रास में वेद-समाज की स्थापना हुई थी। इसके सिद्धान्त ब्रह्म-समाज से मिलते-जुलते थे। १८६९ में श्रीधरालू नायडू इसके मन्त्री बनाए गए। आगे चल कर उन्होंने इसका नाम 'दक्षिण भारतीय ब्रह्म-समाज' रक्खा। श्रीधरालू नायडू बड़े उत्साही और सच्चे कार्यकर्ता थे। ग़रीबी में बहुत कष्ट सह कर वे काम करते थे, पर अपने दुःखों को अपने मित्रों पर भी प्रकट नहीं करते थे। आजकल दक्षिण भारत में ब्रह्म-समाज की और भी शाखाएँ हैं। बम्बई में १८६७ ईसवी में प्रार्थना-समाज की स्थापना हुई थी। उस प्रान्त में भी इसकी कई शाखाएँ हैं। इनके धार्मिक सिद्धान्त तो ब्राह्मों के ही समान हैं, पर सामाजिक रीति-रिवाजों में ये हिन्दू ही हैं। शादी-विवाह तथा अन्य कार्यों में इन्होंने जात-पाँत का बन्धन नहीं तोड़ा, उसे हिन्दुओं की भाँति ही मानते हैं।

ब्रह्म-समाज की स्थापना और उसके विकास का यही संक्षिप्त वृत्तान्त है। इसके द्वारा हिन्दू-शास्त्रों और हिन्दू-सभ्यता का नए सिरे से प्रचार प्रारम्भ हुआ। देश की हीनावस्था के बाद ब्रह्म-समाज जाग्रति के प्रकाश की पहली किरण था। अङ्गरेज़ी शिक्षा के प्रचार से आरम्भ में जो बुराइयाँ उत्पन्न हुई थीं, वे ब्रह्म-समाज के प्रचार से दूर हुईं। ईसाई-धर्म और यूरोपियन समाज की ओर शिक्षित-समाज झुक रहा था। पर ब्रह्म-समाज ने यह दिखला दिया कि हिन्दू-धर्म और समाज का आदर्श बहुत ऊँचा है और इसे हेय समझ कर दूसरी ओर झुकना अपनी अज्ञानता है। ब्रह्म-समाज की स्थापना के बाद शिक्षित समाज के लोगों का ईसाई होना बन्द हो गया। ब्रह्म-समाज पूरी तरह से हिन्दू-समाज का एक अङ्ग है।

आरम्भ में जब तक इसने एक ईश्वरवाद के प्रचार को ही अपना मुख्य कार्य बनाया था, तब तक यह समाज हिन्दू-समाज का एक धार्मिक सम्प्रदाय था। पर आगे भारतवर्षीय ब्रह्म-समाज की स्थापना के बाद इसका सामाजिक कार्य प्रधान हो गया और धर्म के सम्बन्ध में इसकी यह धारणा होने लगी कि हिन्दू-धर्म के ईश्वर-सम्बन्धी सिद्धान्त इतने उदार और व्यापक हैं कि ब्रह्म-समाज भी उसके अन्तर्गत आ जाता है। इस प्रकार विकास के उत्तरकाल में ब्रह्म-समाज हिन्दू-धर्म का एक सामाजिक अङ्ग हो गया।

चन्द्र

[रचयिता—श्री० रमाशङ्कर जी मिश्र 'श्रीपति']

(१)

हृदय में भर कर नव-उल्लास,
नील-नभ की मञ्जूषा खोल,
सुधाकर ! आते क्यों, निर्व्याज—
लुटाने अपनी निधि अनमोल ?

(२)

मधुरिमा से मिश्रित हे चन्द्र !
सरसता के हो तुम आगार।
कोकिला के अन्तर-उन्माद,
कुञ्ज गिरि कानन के शृङ्गार॥

(३)

सुधा-लहरों के अगणित जाल,
बिछा देते सुषमा-भण्डार।
विश्व-रञ्जन ममता की मूर्त्ति,
प्रकृति के तुम हो नव उपहार॥

(४)

यन्त्रणा कर देते तुम दूर,
सृष्टि के निखरे यौवन-फूल।
रजत-किरणों का लख नव-रूप,
स्वप्न-सा जग जाता है भूल॥

(५)

जगमगा जाती जग में ज्योति,
चकोरों में उठता उल्लास।
पपीहा भी पा जाता शान्ति,
कुमुदगण कर उठते मृदु-हास॥

(६)

विधायक हो शोभा के धाम,
मनोभावों के मञ्जुल तार।
काव्य सरिता के हो हिम-शृङ्ग,
अतुल निधि के तुम कोष अपार॥

(७)

कलित वसुधा करती कल्लोल,
विभव का तनता सुखद वितान।
अमरता का पाकर पीयूष,
अमर बन करते कवि गुणगान॥

हमारे धर्मगुरु

[ले० श्री० वासुदेवप्रसाद जी मिश्र, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

मैं "चाँद" के पाठकों का ध्यान एक नवीन, किन्तु रोमाञ्चकारी घटना की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ, जो सम्भवतः उन्हें न मालूम होगी, और साथ ही यह भी बतलाना चाहता हूँ कि हिन्दू-धर्म के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में नैतिक उच्छृङ्खलता का अभाव नहीं हो रहा है, प्रत्युत इसकी अधिकता ही होती जाती है। आप यह न सोचिए कि मैं एक उदाहरण मात्र लेकर सर्वव्यापी निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न कर रहा हूँ। नहीं, ऐसा कदापि नहीं है। आपको मेरे वाक्यों की पुष्टि भारत के किसी भी प्रान्त के देशी भाषा के समाचार-पत्रों में मिलेगी, चाहे वे गुजराती के हों, चाहे बङ्गला अथवा तामिल-तेलगू के। तब आपको मालूम पड़ेगा कि मैं अत्युक्ति-मय शब्दों का प्रयोग नहीं कर रहा हूँ। मैं जिस घटना का वर्णन कर रहा हूँ, उसने तो गुजरात प्रान्त भर में हलचल मचा दी है और इस पर बम्बई के अधगोरे पत्र "टाइम्स ऑफ़ इण्डिया" ने हिन्दुस्तान के धार्मिक पूज्यपादों की अच्छी खिल्ली उड़ाई है।

गुजरात के अहमदाबाद नामक नगर में एक विशाल जैन-मन्दिर है। उसमें श्रीजयविजय जी नाम से प्रसिद्ध एक जैन-यती रहते थे। आपने अब संयम का परित्याग कर असंयम धारण किया है और अपने धार्मिक जीवन की भी इति-श्री कर डाली है। तदनुसार एक सुन्दरी जैन-विधवा से आपका विवाह भी सानन्द तथा सकुशल—कुछ विरोध के रहते हुए भी—सम्पन्न हो गया है। इतना ही करके आप शान्त न रहे—यदि रहते तो आपके विवाह का समाचार तो खींच-खाँच कर प्रकाशित हो ही जाता और 'चाँद'-जैसा कोई समाज-सुधारक पत्र आपके कार्य की आलोचना भी करता। तब न तो हमें आपकी स्पष्टवादिता पर अपने विचारों को प्रकट करने का सुअवसर मिलता और न एक आधुनिक मुनिवर के वैवाहिक-प्रतिज्ञा-बन्धन में जकड़ने का कारण ही। मुनिजी ने विवाह-संस्कार की समाप्ति होने पर तुरन्त एक वक्तव्य प्रकाशित करा डाला और उसमें अपने सत्कार्य का समर्थन भी किया तथा उसके कारण भी समझा दिए। बेचारे चेलों के समुदाय पर, जो आपको आदर्श-चरित्र महात्मा मानते थे, जो अनभ्र वज्रपात इससे हुआ, उससे आपका सरोकार ही क्या? आप कहते हैं—"पिता जी की मृत्यु के अनन्तर जब मैं षोडश-वर्षीय बालक मात्र था, मैंने अपने सम्प्रदाय के अनुसार 'दीक्षा' ले ली। तदनन्तर १३ वर्ष पर्यन्त तो पूर्ण-रूपेण ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया" किन्तु यह अधःपतन कैसे हुआ—इस महान् परिवर्त्तन का कारण भी उन्हीं के शब्दों में ध्यान से सुनिए—"जब मेरे समान यतियों को विशाल भवनों में रहना आवश्यकीय हो जाता है—उनमें रहना ही पड़ता है—जब उदर-तृप्ति के अर्थ सुस्वादु, चटपटा मसालों से भरा हुआ, गर्म भोजन ही दिया जाता है; जब अनन्य सुन्दरी नव-युवतियों का संसर्ग जनसमूह के प्रत्यक्ष व एकान्त में होता ही रहता है—और इन सबसे जब एक जैन साधु का मानसिक व शारीरिक अधःपात दिन पर दिन होना अवश्यम्भावी है—तब आश्चर्य तो तभी करना चाहिए था कि जब काम का उद्दाम प्रवाह मुझे बलात् बहा न ले जाता।" किन्तु यह आश्चर्य करने का अवसर 'चाँद' के पाठकों को दुर्भाग्यवश न मिला। बेचारे जयविजयजी सांसारिक मोह-पाश में बँध ही तो गए और एक अत्यन्त सुन्दरी विधवा को, जो भक्ति-भाव प्रदर्शित करने आपकी सेवा में उपस्थित हुआ करती थी, ले ही डूबे!

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि आपने विवाह अन्त में किया क्यों? सन्यास के वस्त्र धारण करने पर गृहस्था-श्रम आपको क्यों आकर्षक प्रतीत हुआ? उत्तर वही है, जो बरसों से हमारे कानों में सुनाई पड़ता आ रहा है—वही उत्तर, जो मठों के मठाधीश, तीर्थों के पण्डे, पुण्य-क्षेत्रों के पुरोहित—यदि झूठ बोल कर आत्मा का हनन न करें—देंगे, वही कारण है आपके भी विवाह करने

का। दीक्षा तो ली—दीक्षा-सम्पन्न मुनिवर तो हो गए—किन्तु परिस्थिति का प्रवाह रोकने की क्षमता न आई। मानव-प्रकृति स्वभावतया दुर्बल है—वह इतनी शक्ति-सम्पन्ना साधारणतया नहीं रहती है कि मोह से परिपूरित वातावरण में स्थिर रह सके, यह सभी लोग जानते हैं और स्वीकार करते हैं। हम उन महात्माओं के सम्मुख श्रद्धा-भक्ति समन्वित हृदय से नत-मस्तक होने में आगा-पीछा नहीं करते जो परब्रह्म परमात्मा का चिन्तन शुद्ध-चित्त और पापरहित आत्मा से करते हैं। किन्तु क्या हम समर्थ रामदास, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, महर्षि दयानन्द, और स्वामी विवेकानन्द ऐसे यती साधु प्रत्येक मन्दिर में, प्रत्येक तीर्थ में और गङ्गातट की प्रत्येक कुटिया में पाते हैं? यदि पाते ही, तो क्यों आज ऐसे विचार होते? खेद तो यही है कि हमारे ही गुरु—हमारे ही पुरोहित—हमारे ही उपदेशक—हमारे ही स्वर्ग के ठेकेदार—हमें पाप-कूप में गिराने वाले हैं!! हमारे जय-विजय जी के परितापमय शब्द—यदि वे सत्य ही ऐसे पश्चात्तापमय हृदय से निकले हुए हैं—इन्हीं भावों के द्योतक हैं। 'गोविन्द-भवनों' की कमी नहीं है, वे तो चारों ओर भरे पड़े हैं! कमी है तो उनके प्रकट करने वालों की, उन्हें प्रकाश दिखलाने वालों की—उनकी नारकीय अर्द्ध-रात्रीय लीलाओं को नग्न-स्वरूप में हम लोगों के सामने लाने वालों की!! परिताप का विषय तो यही है कि जानते हुए भी हम लोग अनजान-से बने रहते हैं। दुर्गुण के लीला-स्थल, पाप-गृहों को हम परमात्मा के भक्तों का भक्ति-वास समझते हैं—उन्हें अपना परम हित मानते हैं। अन्त में अपनी ही स्त्रियों का धर्म नाश करके, प्रयत्न करते हैं इन्हीं बातों को गुप्त रखने का कि हमारी अपकीर्त्ति न हो और मिस मेयो जैसी लेखिकाएँ हमारे धर्म की खिल्ली न उड़ा सकें!

यती और मुनि जैन-सम्प्रदाय ही में नहीं हैं, उन्हीं के "दीक्षा-गुरु" नहीं हैं, उन्हीं के पूज्य नेता धर्म-कर्म के स्थानों में नहीं हैं—हमारे भी साधु-सन्त, गुरु-स्वामी, महन्त-संन्यासी हैं, हम भी अपने पूजा-स्थलों में बिना पुजारियों की सहायता के और उनको भेंट चढ़ाए भली-भाँति पूजा नहीं कर पाते; हमारे भी मन्दिर-प्रवेश का "डङ्का" ज़ोर से घण्टा बजा कर यही लोग करते हैं, हमारे भी गङ्गा-स्नान बिना पण्डों की सहायता के नहीं होते हैं, हमें भी इन्हें दान और दक्षिणा देना आवश्यक है और हम यह भी देखते हैं कि ये हमें इसके लिए कितना तङ्ग करते हैं। हमारे घरों की देवियाँ भी बिना पण्डितों की सहायता के अपने व्रत नहीं कर सकतीं और उनकी समाप्ति पर पूजा-पाठ, "हरतालिका-कथा" और "सत्यनारायण-कथा" के निमित्त पण्डितों को, जिनमें से अधिकांश संस्कृत के ज्ञान से पूर्णतया वञ्चित रहते हैं, बुलाया करती हैं।

किन्तु भला हो मुनिवर का, जो इतनी दयार्द्र प्रकृति के थे। आपके हृदय में दया का स्रोत उमड़ आया—उन अनाथ, धनहीना ललनाओं के वास्ते, जो संसार में पद-पद पर सङ्कट का सामना करती हैं। उस स्रोत के उमड़ आने पर क्या हुआ? उन्हीं के शब्दों में सुनिए—"मैंने महीनों तक पलकों पर पलकें नहीं रक्खीं। मैं जाग-जाग कर यही सोचता रहा कि क्या करूँ—विवाह ही अपना कर डालूँ (और उस ललना का पुनर्विवाह?) अथवा साधु ही बना रह कर "मुनिवर" कहलाता रहूँ। अन्त में मैंने एक निष्कर्ष निकाला। वह निष्कर्ष यह था कि गर्हित से गर्हित कुकर्मों को छिप-छिप कर करने—परदे के पीछे, जनसमूह से दूर, एकान्त में निशिदिवा पाप-पङ्क में रत रहने की अपेक्षा विधवा का पुनर्विवाह और अपना विवाह ही कर डालना श्रेयस्कर है।" तदनन्तर मुनिवर ने खुल्लम-खुल्ला यही किया और इसका शुभ-समाचार तथा एक विधवा के त्राण की सुखदायिनी वार्त्ता पत्रों में प्रकाशित भी हो गई। संन्यास तो एक कोने में धर दिया गया और एक जैन मुनिवर का एक जैन नवयुवती ललना के साथ यह पाणिग्रहण-संस्कार विगत नवम्बर मास में सम्पन्न हो गया।

पाठको, आइए पहले मुनिवर जयविजयजी को एक बार हृदय से इस स्पष्टवादिता पर बधाई तो दे ही दें। क्योंकि साधुगण तो इस प्रकार से स्वयं अपनी पोल खोल कर न तो अपनी आलोचना ही कराते हैं, न अपने सम्प्रदाय पर लोगों को छिद्रपात का अवसर ही देते हैं। फिर बताइए कि जब कभी ऐसे पुजारियों और पण्डितों, पण्डों और साधुओं की लीला हमारे कानों तक पहुँचती है, तब हम लोगों के रोंगटे, यह वृत्तान्त सुन कर खड़े होते हैं या नहीं? जब वही पाप-कथा हमारी ही

माताओं-बहिनों और कुल-स्त्रियों के ऊपर आप-बीती के रूप में प्रकट होती है, तब वह घृणास्पद, करुणापूर्ण और वीभत्स हो जाती है या नहीं? यहाँ पर मैं यह भी बताना चाहता हूँ कि हम लोगों की 'गुरुडम-लीला' अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी है। यदि सदाचारी और सम्मान्य गुरु हों तो हमें कुछ भी कहना नहीं है, परन्तु उनमें से अधिकांश तो हैं "नारि मुई घर सम्पति नासी, मूड़ मुड़ाय भए सन्यासी" की श्रेणी के। यदि आप इनसे स्वयं परिचित होना चाहें तो अपने ही प्रान्त के शहरों, गाँवों और देहातों में जाइए और देखिए। आप देखेंगे, जीवन-यापन के अन्य साधन न पाकर, स्त्री की मृत्यु के बाद अथवा इसी प्रकार के कारण उपस्थित होने पर अनेक पाखण्डी गेरुआ वस्त्र धारण कर बीतराग सन्यासी का स्वाँग रचते हैं और प्रायः इसी विचार में मग्न रहते हैं कि कब कोई आँख का अन्धा चेला अपनी स्त्रियों को हमें सौंपता है अथवा कब कोई भक्ति की भूखी, वचनामृत की प्यासी ललना हमें अपनाती है। यह लीला युक्त-प्रदेश में ही अधिक है और इस प्रकार के आडम्बर से रहने वाले, सुख के उपासक, धनी-मानी परिवारों को चेले बनाने के इच्छुक, चेले-चेलियों की भक्ति के प्यासे, उनके धर्म-कर्म के ठेकेदार और अवसर पाने पर उनसे रास-लीला रच कर उनके लिए और अपने लिए 'स्वर्ग में सीट' रिज़र्व कराने वाले ज़्यादातर वही हैं। सबसे लज्जा और ग्लानि का विषय तो यह है कि पढ़े-लिखे, सभ्य और सुशिक्षित, ज़मींदार और साहूकार आदि इन्हीं पर लट्टू रहते हैं और इन रागी 'गुरुदेवों' के इशारों पर प्राण तक देने को तैयार रहते हैं।

मैंने स्वयं प्रयाग के अर्ध-कुम्भी मेले में ऐसे साधुओं की और नागा लोगों की पूजा सम्मान्य और सुशिक्षित घरों की स्त्रियों को करते और धन की ढेरी उनके सामने रखते देखा है।

किन्तु प्रश्न यह है कि इसके लिए ज़िम्मेदार कौन है? हम या हमारी स्त्रियाँ, या ये लोग? ज़िम्मेदार हमी हैं, जो अपनी स्त्रियों को अशिक्षिता रखते हैं और स्वयं सब जानते हुए भी भोले-भाले अनजान-से बने रहते हैं। हमारी शिक्षा, हमारी दीक्षा, हमार स्वाभिमान आदि के उपस्थित रहते भी हम आँखों के अन्धे इनकी कपट-लीला के शिकार होते हैं और अपना सर्वस्व, अपनी धरोहर इनके चरणों पर रखकर अपने को धन्य समझते हैं। यदि ऐसा न होता तो तारकेश्वर के महन्त की नारकीय लीला, गोविन्द-भवन तथा साईंखेड़ा के कलियुगी कृष्ण धर्म की आड़ में समाज पर ऐसे भयङ्कर अत्याचार कदापि न कर सकते थे। सच तो यह है कि आज हमारी बहू-बेटियों की इज़्ज़त-आबरू तथा उनका पतिव्रत इस प्रकार के धूर्तों की कृपा पर सर्वथा अवलम्बित है।

पाठको, आप इन बातों पर मनन कीजिए, विचार कीजिए और देखिए कि 'जयविजयजी' की स्पष्टवादिता और 'गोविन्द-भवन' का भण्डाफोड़ कुछ अर्थ रखता है या नहीं? यदि रखता है तो उन्हें ध्यान में रख कर कार्य कीजिए और यह निश्चय कर लीजिए कि गङ्गा-स्नान के बिना ही रहना, ऐसी डुबकियों से भला है जिनके लेने के लिए हमें इतना अधिक मूल्य देना पड़ता है। और ऐसे मन्दिरों, मठों और "गुरुदेवों" की कुटियों में कथामृत-पान और चरण-रजावलुण्ठन की अपेक्षा उनके बिना ही रहना लाखों बार भला है। ईश्वर भी सत् का सहायक और असत् का विरोधी है—वह भी सीधे और सच्चे मन द्वारा की गई सेवा और भक्ति का भूखा है। असत् भावों से प्रेरित और कुमार्गी धर्म के ठेकेदारों के माध्यम द्वारा ऐसा पापाचार करना उस सर्व-शक्तिमान परमात्मा का अभीष्ट कदापि नहीं हो सकता, यदि ऐसी बात नहीं है तो वह अनीश्वर है, ईश्वर नहीं।

हर्ष की बात है कि 'चाँद' इन प्रचलित पाखण्डों के विरुद्ध प्रयत्न कर रहा है। वह हिन्दू-जाति की कुसंस्थाओं के आमूल उन्मूलन के लिए एक महान् और सजीव आन्दोलन हाथ में ले चुका है। पढ़ी-लिखी, सभ्य और सुसंस्कृत जनता का पवित्र कर्तव्य है कि ऐसे कार्य में उसका हाथ बटावे और कूप-मण्डूकत्व और अन्ध-विश्वास को दूर करने में सहायक हो। 'चाँद' तभी समाज के अन्धकार को दूर कर भगवान् अंशुमाली की सुसंस्कृतिमयी ज्योति के प्रकाश को दृष्टिगोचर करा सकेगा।

भारतवर्ष में बाल-मृत्यु

[ले० डॉक्टर रामदयाल कपूर, एम० बी० बी० एस०]

किसी वर्ष में जितने बच्चे पैदा होते हैं, उनमें से प्रत्येक हज़ार के पीछे जितने बच्चे एक वर्ष की आयु पूर्ण करने से पहले ही मर जाते हैं उस संख्या को उस वर्ष की बाल-मृत्यु-संख्या कहा जाता है।

भारतवर्ष में प्रति वर्ष जितने बच्चे पैदा होते हैं, उनमें से एक तिहाई मृत्यु का ग्रास बनते हैं, अर्थात् प्रत्येक तीन में से एक मर जाता है और बम्बई जैसे शहरों में तो लगभग आधे मर जाते हैं, जैसा कि निम्न-लिखित चित्र-पट से स्पष्ट होगा। सन् १९२१ की भारत-वर्ष की जनसंख्या-रिपोर्ट से विदित होता है कि भारत-वर्ष में प्रति वर्ष कुल जनमृत्यु-संख्या का पाँचवाँ भाग पाँच वर्ष तक की आयु के बच्चे होते हैं, और इन बच्चों में से भी पाँचवाँ भाग वे बच्चे होते हैं जिनकी आयु एक वर्ष से कम होती है। इस रिपोर्ट से यह भी ज्ञात होता है कि इनमें से बहुत से बच्चे जन्म के पश्चात् एक सप्ताह अथवा एक मास के अन्दर ही मर जाते हैं। प्रत्येक हज़ार बच्चों में से ८०३ लड़के और ७०१ कन्याएँ मृता-वस्था (Still births) में ही पैदा होती हैं और यह संख्या इङ्गलैण्ड की अपेक्षा दुगनी है। इङ्गलैण्ड की अपेक्षा भारत-वर्ष की कुल बाल-मृत्यु-संख्या भी लगभग दुगुनी है।

निम्नलिखित तालिका से पता लग जायगा कि भिन्न-भिन्न देशों में बाल-मृत्यु-संख्या कितनी है :—

रूस	...	२४५	इटली	...	१५३
हँगरी	...	२०४	बेलजियम	...	१४१
जेमैका	...	१९१	फ्रान्स	...	१२६
लङ्का	...	१८९	अमेरिका	...	१२४
प्रशिया	...	१६८	इङ्गलैण्ड	...	११७
जापान	...	१५६	स्विज़रलैण्ड	...	११५
सरविया	...	१५४	स्कॉटलैण्ड	...	११२
डेनमार्क	...	१०८	ऑस्ट्रेलिया	...	७८
आयरलैण्ड	...	९४	नॉरवे	...	७०
स्वीडन	...	७८	न्युज़ीलैण्ड	...	७०

सन् १८८१ से बहुत से देशों की बाल-मृत्यु-संख्या घटती जा रही है। सन् १८८१ से १८८९ तक और सन् १९०० से १९१० तक फ्रान्स में २४·६, इङ्गलैण्ड में १५·८, स्विज़रलैण्ड में ३२·७, डेनमार्क में २०, तथा ऑस्ट्रेलिया में ३७·६ प्रति सैकड़ा बाल-मृत्यु-संख्या में न्यूनता हुई।

सन् १९११ से १९२१ तक कुल भारतवर्ष में तथा उसके भिन्न-भिन्न प्रान्तों में बाल-मृत्यु-संख्या निम्न प्रकार रही। सन् १९१८ में इन्फ्लुयेन्ज़ा रोग फैल जाने के कारण बाल-मृत्यु-संख्या में भी विशेष वृद्धि हुई।

प्रान्त का नाम	दस वर्ष की औसत (सन् १९१८ को छोड़ कर)		सन् १९१८	
	लड़के	लड़कियाँ	लड़के	लड़-कियाँ
कुल भारतवर्ष	२११	१९९	२७४	२६०
आसाम	२१०	१८९	२२६	२०७
बङ्गाल	२१४	२००	२३५	२२०
बिहार-उड़ीसा	१८९	२७७	२३८	२२५
बम्बई	२००	१८६	२९३	२८०
ब्रह्मा	२३०	१०६	२८९	२६३
मध्यप्रान्त-बरार	२७४	२४३	४१९	३७९
मद्रास	१९४	१७७	२३७	२२३
पश्चिमोत्तर प्रान्त	१७८	१७४	२४३	२२४
पञ्जाब	२०३	२०२	२६१	२६४
संयुक्त-प्रान्त	२२९	२१९	३०८	२९८

भारतवर्ष के कुछ बड़े-बड़े शहरों की बाल-मृत्यु-संख्या इस प्रकार है :—

बम्बई	...	...	५५६
नागपुर	...	...	४२०
कलकत्ता	...	...	३८६
रङ्गून	...	...	३०३
मद्रास	...	...	२८२
कराँची	...	...	२४६
देहली	...	...	२३३

बाल-मृत्यु के निम्न कारण होते हैं, जिनमें से कुछ भारतवर्ष में विशेष रूप से विद्यमान हैं। इन कारणों में से आधे के लगभग ऐसे कारण हैं, जिन्हें हटाया जा सकता है।

प्रसव के पूर्व के (Antenatal) कारण

१—मद्यपान, राजयक्ष्मा, गर्भाक्षेपरोग (Eclampsia), अभिघातज रक्तस्राव (Accidental Haemorrhaoge), अपरावरोध (Placenta Praevia), फिरङ्गरोग (Syphilis), वृक्कशोथ (Nephritis) आदि माता के रोग।

२—भिन्न-भिन्न कारणों से गर्भस्राव तथा गर्भपात। (भारतवर्ष में विधवा-विवाह प्रचलित न होने के कारण विधवाओं में तथा अनेक अविवाहिता कन्याओं में भी गर्भपात बड़ी संख्या में होता है।)

३—भ्रूण (गर्भस्थ बालक) सम्बन्धी विकार तथा रोग।

४—कारख़ानों में विवाहिता तथा गर्भिणी स्त्रियों से श्रम करवाना।

५—देश की ग़रीबी।

६—परदा आदि कुप्रथाएँ, जिनसे माता का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

७—स्वास्थ्य की दृष्टि से ख़राब घरों में निवास। निवास-स्थान के आस-पास गन्दगी का एकत्रित रहना। एक ही घर में अनुचित संख्या में सारे कुटुम्ब का रहना। अन्य पुराने ढङ्ग के ख़राब व्यवहार।

८—गर्भिणी को ठीक आहार न मिलना, अर्थात् जिसमें 'विटामीन' हों, जैसे फल, शाक, दूध, घी, मक्खन, अण्डे आदि। यह स्मरण रखना चाहिए कि बनस्पति घी में विटामीन का अभाव होता है।

९—गर्भावस्था-सम्बन्धी नियमों का ज्ञान न होना।

१०—अविद्या। भारतवर्ष में अविद्या ही एक मूल कारण है, जिससे स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियम जनता में नहीं फैल सकते। सन् १९२१ की जन-संख्या-रिपोर्ट को पढ़ने से पता चलता है कि पाँच वर्ष तथा इससे अधिक आयु के पुरुष १३.९ फ़ी सैकड़ा तथा स्त्रियाँ २.१ फ़ी सैकड़ा पढ़-लिख सकती हैं, और भिन्न-भिन्न आयु के जितने पुरुष शिक्षित हैं, वह निम्नलिखित चित्र-पट से स्पष्ट हो जायगा :—

आयु			शिक्षित पुरुष	
५—१०	वर्ष	...	२.९	फ़ी सैकड़ा
१०—१५	„	...	११	„
१५—२०	„	...	१७.४	„
२० से ऊपर		...	१७.१	„

शहरों में तो कुछ लोग पढ़ते ही हैं, परन्तु ग्रामों का हाल शोचनीय है (यह स्मरण रहे कि भारतवर्ष के अधिकांश लोग ग्रामीण हैं)। खेती करने के लिए तो बालकों को शिक्षा देने की वह आवश्यकता ही क्यों समझेंगे और जो कोई पढ़ता भी है वह सरकारी नौकरी की लालच से। स्त्रियों को शिक्षा न देने के तीन कारण हैं। पुराने ढङ्ग के लोग लड़कियों को शिक्षा देना पाप समझते हैं। माताएँ कहती हैं कि लड़की को पढ़ कर कोई दफ़्तर तो खोलना नहीं है और यदि कन्या वर्ण-माला के अक्षरों को पहचानने लग गई है, तो बस यही पर्याप्त है। ख़त तो लिखने लायक़ हो गई। दूसरा कारण परदा है, जिससे स्त्री-शिक्षा में बाधा पड़ती है। और तीसरा कारण बाल-विवाह है। जब तक लड़की माता-पिता के घर रहती है, उसका थोड़ा-बहुत पढ़-लिख लेना सम्भव है, परन्तु शीघ्र ही विवाह हो जाने के कारण उसे विद्यालय छोड़ना पड़ता है। प्रायः विवाह होने से बहुत पहले ही पढ़ाई छुड़वा दी जाती है, यह समझ कर कि लड़की युवती हो गई है, उसे घर से बाहर न निकलना चाहिए।

११—बाल-विवाह। सन् १९२१ की जन-संख्या-रिपोर्ट से पता चलता है कि भारतवर्ष में प्रत्येक हज़ार स्त्रियों में पाँच वर्ष तक की आयु की ११, पाँच से दस वर्ष तक की ८८, दस से पन्द्रह तक की ३८२, और पन्द्रह से बीस तक की ७७१ स्त्रियाँ विवाहिता थीं।

यह स्मरण रखना चाहिए कि माता के स्वास्थ्य का

प्रभाव सन्तान पर अवश्यमेव पड़ता है। यदि माता का स्वास्थ्य अच्छा न होगा तो हृष्ट-पुष्ट बालक की आशा हम कैसे रख सकते हैं? कन्या का शरीर अभी भली प्रकार परिपक्व भी नहीं होता कि उसे गृहस्थी की बेड़ियों में जकड़ दिया जाता है। विवाह के पश्चात् विचार-रहित पति की अधिक विषय-वासना के कारण उस कन्या के शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उसके नाज़ुक शरीर पर गर्भावस्था तथा प्रसव और उसके पश्चात् शिशुपालन का भार, जिन्हें वह अभी सहन करने योग्य नहीं होती, डाल दिया जाता है। बार-बार और विशेषतः थोड़े-थोड़े अन्तरों पर गर्भधारण करने से उसका शरीर और भी निर्बल हो जाता है। कई बार गर्भपात हो जाने से भी शरीर पर अनिष्ट प्रभाव पड़ता है। सन्तानोत्पादन ऐसे महत्वपूर्ण कार्य के लिए, न केवल यही आवश्यक है कि जननेन्द्रियों की वृद्धि पूर्णतया हो चुकी हो, बल्कि शरीर भी पुष्ट होना अत्यावश्यक है। छोटी आयु में ही बच्चा पैदा हो जाने से नवजात शिशु को भी माता का दुग्ध उचित परिमाण में नहीं मिलता। कुछ लोग कहेंगे कि गर्म देशों में ठण्डे देशों की अपेक्षा कन्याएँ जल्दी युवावस्था को प्राप्त होती हैं, इसलिए उनका विवाह शीघ्र हो जाना चाहिए। इङ्गलैण्ड आदि अन्य देशों में कन्याएँ कम से कम १८ वर्ष की आयु तक अविवाहिता रहती हैं। यदि भारतवर्ष की गर्मी को ध्यान में रख कर इस आयु में से दो वर्ष घटा दिए जायँ तो भी १६ वर्ष होते हैं। यह न्यून से न्यून आयु है, जिसमें भारतवर्ष में कन्याओं को विवाह करना चाहिए। ऐसा करने से भारतवर्ष की स्त्रियों तथा बालकों के स्वास्थ्य में अपरिमित लाभ हो सकता है।

बाल-विवाह का एक और दुष्परिणाम यह है कि यदि पति की मृत्यु हो जावे तो पुनर्विवाह न होने के कारण उस कन्या को आजीवन दुःख के सागर में ग़ोते लगाने पड़ते हैं और जैसा कि पहले कहा जा चुका है, व्यभिचार तथा उसके द्वारा गर्भपात और बाल-मृत्यु की संख्याओं में बड़ी भारी वृद्धि होती है। निम्न-चित्रपट से भारतवर्ष तथा इङ्गलैण्ड की भिन्न-भिन्न आयु की विधवाओं की प्रत्येक १,००० स्त्रियों में संख्या का पता चलता है :—

विधवाओं की आयु		भारतवर्ष, १९२१		इङ्गलैण्ड, १९११
सब आयु की	...	१७५	...	७३.२
०—५ वर्ष की	...	.७	...	०
५—१० ,,	...	४.५	...	०
१०—१५ ,,	...	१६.८	...	०
१५—२० ,,	...	४१.४	...	०
२०—२५ ,,	...	७१.५	...	१.५

प्रसवोत्तर (Post-natal) कारण

१—अविवाहिता तथा विधवा स्त्रियों के बालकों की भली प्रकार देख-भाल न हो सकना या ऐसे बालकों की किसी प्रकार हत्या कर देना।

२—बाल-रोग विशेषतः अतिसार, प्रवाहिका (Dysentery), क्षीणता (Marasmus), संक्रामक रोग, तथा स्तम्भ रोग (Tetanus neonatorum)। माता का स्वास्थ्य अच्छा न हो तो बालक जन्म से ही निर्बल होता है और उपरोक्त सभी रोग उस पर शीघ्रता से आक्रमण करते हैं।

३—शिशुपालन, दुग्ध-पान, तथा बालक को वस्त्र पहनाने आदि के नियमों का माता को भली प्रकार ज्ञान न होना।

४—बालक-सम्बन्धी जन्म के रोग तथा मूढ़-गर्भ। प्रसव के समय बालक को चोट लग जाना। किसी कारण से बालक की नाल के कटे हुए सिरे से अत्यधिक रक्तस्राव होना। प्रसव के समय प्रसूतिका को उचित सहायता न मिलना।

५—स्वास्थ्य की दृष्टि से सूतिकागार का ठीक न होना। साधारणतः पुराने ढङ्ग के लोग प्रसव के लिए ऐसा कमरा नियत करते हैं जो अँधेरा हो, जिसमें वायु तथा प्रकाश न आ सके और जो कभी भी न बरता गया हो।

६—पुराने ढङ्ग की मूर्ख तथा अनाड़ी दाइयाँ, जिन्हें स्वच्छता तथा कृमिहीनता (Asepsis) का लेशमात्र भी ध्यान नहीं होता और यदि प्रसव के समय कोई विकार हो तो न वह उसकी उचित चिकित्सा ही कर सकती हैं।

बाल-मृत्यु को भारतवर्ष में कम करने के लिए निम्न-लिखित प्रतिरोधक उपायों का अवलम्बन करना परमावश्यक है:—

प्रसवप्राक्-उपाय

१—गर्भपूर्णता तक गर्भिणी की देख-भाल विशेषतः पाण्डु रोग (Anœmia), गर्भाक्षेप रोग, फिरङ्ग रोग, अनुचित परिश्रम आदि के लिए। पहलौठी स्त्री को यदि रजस्राव दो मास तक बन्द रहे तो उसकी पूर्णतया परीक्षा करवा लेना चाहिए और यदि गर्भाशय-सम्बन्धी कोई विकार हो तो उसकी उचित चिकित्सा करवाना चाहिए, जिससे बाद में कोई कष्ट न हो। प्रत्येक गर्भिणी के साधारण स्वास्थ्य का निरीक्षण भी करवाना चाहिए कि वह गर्भावस्था तथा प्रसव और उसके उपरान्त का कष्ट सहन कर सकेगी कि नहीं। गर्भकाल के पिछले महीनों में एक बार गर्भिणी के (विशेषतः पहलौठी के) कूल्हे का माप देखना चाहिए और यह भी पता लगाना चाहिए कि भ्रूण की स्थिति ठीक है। प्रत्येक गर्भिणी की मूत्र-परीक्षा पहले पाँच महीनों में एक-एक महीने के पश्चात् और पिछले महीनों में दो-दो सप्ताह के पश्चात् अवश्य करानी चाहिए, जिससे एलब्यूमिनमेह (Albuminuria) आदि गर्भाक्षेप के पूर्व लक्षणों का शीघ्र ही पता लग जाय और उसका प्रतिरोध किया जा सके।

२—गर्भस्राव तथा गर्भपात की उचित चिकित्सा।

३—स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का प्रचार और शिशुपालन-सम्बन्धी नियमों का ज्ञान।

४—थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् गर्भधारण न करना तथा चिरकाल तक बालक को स्तनपान न कराते रहना।

५—गर्भिणी को उचित भोजन देना, जिसमें 'विटामीन' तथा खटिक (calcium) की मात्रा अधिक पाई जाती हो, विशेषतः शाक, फल, दूध, मधु, घी आदि। गर्भावस्था-सम्बन्धी नियमों का पालन करना।

६—गर्भ-विज्ञान-सम्बन्धी प्रचार, व्याख्यान आदि।

प्रसव-सम्बन्धी (Natal) उपाय

१—सूतिकागार का स्वास्थ्य की दृष्टि से ठीक होना।

२—अनाड़ी और अशिक्षिता दाइयों के स्थान में (जिनके हाथों में सदियों से भारतवर्ष की प्रसूतिकाओं तथा बालकों के जीवन सौंपे जाते रहे हैं) कृमिहीनता के सिद्धान्तों को समझने वाली सुशिक्षिता दाइयों का तैयार करना। प्रसव के समय कृमिहीनता न रखना ही एकमात्र कारण है, जिससे अनेक माताओं को प्रसूत-ज्वर तथा अनेक बच्चों को स्तम्भ-रोग हो जाता है और वे चल बसते हैं।

प्रसवोत्तर (Post-natal) उपाय

१—बालक को उचित रीति से वायु-सेवन कराना, नहलाना, वस्त्र पहनाना और आहार देना।

२—गृह की स्वच्छता तथा माता और बालक की शारीरिक स्वच्छता।

३—बाल-रोगों की उचित चिकित्सा।

उपरोक्त उपायों के ज्ञान को जनता में फैलाने से ही भारतवर्ष की बाल-मृत्यु-संख्या में कमी होने की सम्भावना है तथा आगामी माताओं एवं सन्तान का उद्धार सम्भव है।

सजल प्रतीक्षा

[रचयिता—कुमारी गङ्गादेवी जी भार्गव "छलना"]

(१)

सकुचित हो धारण करती जब—
कमलिनि ओस-अश्रु दो चार।
आकर निज कर से है पोंछा—
करता उसका प्राणाधार॥

(२)

मैं तो विकल विक्षुब्ध हो अविरल—
बहा रही हूँ अश्रु-प्रवाह।
क्यों न हृदय-वल्लभ आकर तब—
हरते हो नयनों की दाह?

मधुर पराजय

[ले० श्री० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज']

विमला अपने बाप की इकलौती बेटी थी और मैं था अपने बाप का इकलौता बेटा। सामाजिक और धार्मिक मामलों में हम दोनों एक ही तरह के थे, मगर हम दोनों के बाप थे दो तरह के। उसके पिता जी स्त्री-शिक्षा और विलायत-यात्रा के पूरे पक्षपाती थे; मेरे बाबू जी स्त्री-शिक्षा की बात तो भला किसी तरह सुन भी लेते थे, किन्तु विलायत-यात्रा का नाम ही उनके तन-बदन में आग लगा देता था। यह वह आग होती थी, जिसकी विकराल ज्वाला में अपनी तड़पती हुई धर्म-भावनाओं को देख कर वे विकल हो उठते थे—उनकी सारी शान्ति, सारी सहिष्णुता, सारी स्थिरता इस तरह काँपने लगती थीं मानों किसी ने उनका आधार ही छिन्न-भिन्न कर दिया हो। उनकी समझ से विलायत जाने का साफ़-साफ़ मतलब अपने जाति-धर्म से च्युत होना था, अपने देव-दुर्लभ ब्राह्मणत्व से जन्म-जन्मान्तर के लिए हाथ धो बैठना था, अपने चिर-अर्जित पुण्य की राशि में पाप के दहकते हुए अङ्गारे फेंक देना था! उधर विमला के बाप, स्वयं एक प्रतिष्ठित वंश के शुद्ध सनातनी ब्राह्मण होते हुए भी, विदेश-यात्रा को शिक्षा का एक प्रधान अङ्ग मानते थे। उनका विश्वास था कि इसके बिना बीसवीं सदी का कोई भी स्त्री-पुरुष अपने युग-धर्म की पुकार का समुचित उत्तर दे ही नहीं सकता। मेरे बाबू जी शास्त्रीय धर्मों के आगे युग-धर्म का कोई अस्तित्व ही नहीं मानते थे। विमला के पिता जी शास्त्रीय धर्मों पर आस्था रखते हुए भी परम्परागत रूढ़ियों के घोर विरोधी, युग-धर्म के पवित्र उपासक और देश की पुकार का सच्चा मर्म समझने वाले थे। यही कारण था कि विमला के लिए इङ्गलैण्ड जाकर ऊँची शिक्षा पाने का मार्ग जितना सुगम था, मेरे लिए उतना ही दुर्गम।

बचपन से हम दोनों एक ही साथ लिखते-पढ़ते आ रहे थे, कभी पल भर को भी साथ नहीं छूटा था। केवल घर ही दो जगह थे, रहना अधिकतर एक ही जगह होता था। जीवन की उन बेहोश घड़ियों को बेच कर न जाने कितनी उमङ्गें बटोरी गई थीं, कितनी बड़ी-बड़ी आशाएँ मोल ली गई थीं! होश आते ही वे सब की सब बिखरती और टूटती हुई नज़र आने लगीं! उसके दिल का हाल तो नहीं बता सकता, हाँ, अपने दिल की बेचैनी मैं अभी तक नहीं भूल सका हूँ और उसे कभी भूलूँगा भी नहीं। वह बेचैनी, वह तड़प मेरे जीवन की एक दुलारी निधि है। उसे अपने कलेजे से बाहर निकालने को जी नहीं चाहता। वेदना ही एक ऐसी वस्तु है, जिसे मनुष्य भूल कर भी नहीं भूल सकता। फिर मैं ही कैसे अपनी उस पवित्र पीड़ा को भूल जाऊँ? कैसे भूल जाऊँ कलेजे की उस मीठी-मीठी कसक को, निराशा के उस मुस्कराते हुए व्यङ्ग को, बिछोह की उन मदमाती घड़ियों को? मुझे याद है—हाँ, ख़ूब अच्छी तरह याद है—उस दिन जब आँखों में प्यार की नदी बहा कर विमला ने मुझसे कहा था—"अब तो मैं जा ही रही हूँ विजय! पता नहीं ये दिन फिर कब तक लौटेंगे! चलो, फुलवारी में बैठ कर तुम्हारी कविताएँ तो सुनी जायँ" तब मैं उसे अपनी कविताएँ सुनाने के बदले फूट-फूट कर रो पड़ा था। 'पता नहीं ये दिन फिर कब तक लौटेंगे' सुनने का भी कभी अवसर आएगा, इसकी कल्पना ही नहीं की थी। सुख की मदिरा उँडेलने वाला मन भला दुख का हलाहल क्यों छूने जाता? जिसके साथ मुस्कराते हुए शैशव की सन्ध्या बिताई है, उसी के साथ बिलखते हुए यौवन का प्रभात नहीं बिता सकूँगा, यह सोचने की छुट्टी ही किसे रहती है? निराशा का यह करुण सङ्गीत, आने वाले वियोग-दुख का यह विह्वल सन्देश सुनने के लिए मैं अपने को अच्छी तरह से तैयार नहीं कर सका था। इसी लिए इन कातर शब्दों की चोट मेरे लिए उस समय और भी असह्य हो उठी! मैं किसी तरह भी अपने रुदन-वेग को न रोक सका।

बेचारी विमला भी मेरे साथ रो रही थी, लेकिन मेरी

तरह अधीरता की आँधी उठा कर, आँसू की झड़ी बरसा कर नहीं; वह रो रही थी अपनी वेदना की गहराई में छिप कर, आँसू की एक-एक बूँद को सन्ताप की ज्वाला से सुखाती हुई! मैं रोकर रो रहा था, वह बिना रोए रो रही थी। मेरी आँखों में पानी था, उसके कलेजे में आग थी। बस, इतना ही फ़र्क़ था, नहीं तो रो हम दोनों ही रहे थे।

अन्त में उसी ने कहा—इस तरह अधीर होने से कोई लाभ तो है नहीं विजय, फिर क्यों अपने मन को पीड़ा पहुँचा रहे हो? मैं भगवान् की इच्छा के आगे अपना सिर झुका चुकी हूँ। तुम भी क्या ऐसा ही नहीं कर सकते?

"नहीं विमला! मैं ऐसा नहीं कर सकता।"—रूमाल से अपने आँसू पोंछते हुए मैंने उत्तर दिया।

"क्यों?"

"मेरे भगवान् हैं ही नहीं, इसीलिए।"

"हैं ही नहीं, यह मत कहो।" विमला गम्भीरता-पूर्वक मुझे समझाने लगी—"वे तुम्हारे साथ हैं, किन्तु तुम उन्हें इसलिए नहीं देख रहे हो कि तुम्हारी आँखें किसी दूसरी वस्तु पर हैं। जब जीवन किसी अभाव की उपासना करने लगता है, तभी उसकी भगवान् से भेंट होती है, तभी वह उनकी व्यक्त सत्ता का स्पर्श कर सकता है। इसी लिए जीवन को अभावमय हो जाने का अवसर देना उसे पूर्णता की ओर ले जाना है। प्रत्येक अभाव को परमात्मा की दी हुई भीख समझ कर अङ्गीकार कर लेना ही, उनकी इच्छा के आगे सिर झुकाना और अपने को उनके योग्य बनाना है।"

सच कहता हूँ, उस समय उसकी ये तत्व-भरी बातें मेरी समझ में बिलकुल नहीं आईं। आज जितना ही इन पर विचार करता हूँ, उतना ही मेरा हृदय गद्गद हो उठता है। उस समय जीवन के इन गूढ़ मन्त्रों पर न तो विचार करने की क्षमता थी, न छुट्टी। मैं मन ही मन झुँझला उठा। मुझे ये बातें बड़ी ही रूखी लगीं। बात असल यह थी कि उस समय मैं अपने और विमला के बीच किसी और की सत्ता स्वीकार करना चाहता ही नहीं था। यौवन का नशा भगवान् ही नहीं, भगवान् के पुरखाओं तक की परवा नहीं करता। और मैं उस समय उसी नशे में चूर-चूर हो रहा था। जानता ही नहीं था कि जीवन में 'अभाव' का भी कोई हिस्सा है, और उस हिस्से का बटवारा करने के लिए स्वयं परमात्मा को कष्ट उठाना पड़ता है। इसीलिए मैं झुँझला कर बोला—मैं 'उनके' योग्य नहीं बनना चाहता और न अपने जीवन को पूर्णता की ओर ले जाना चाहता हूँ। अब वह जिधर चाहे, जाय। मैं इसकी धारा का अवरोध करने में असमर्थ हूँ। जिस चीज़ को आज तक जी-जान से चाहता आ रहा हूँ, जिसे जन्म-जन्मान्तर तक चाहता रहूँगा, उसके अभाव में अब किसी और वस्तु की चाह नहीं करूँगा। मुझे अब और कुछ नहीं चाहिए। मैं तुम्हारी एक आज्ञा चाहता हूँ। कहो, दोगी?

अपनी अन्तिम बात तक पहुँचते-पहुँचते मेरा गला आँसुओं में उलझ गया। वाणी काँपने लगी, हृदय धड़कने लगा। मेरी सारी झुँझलाहट वेदना की चञ्चल धारा में बह गई!

उसने अपने काँपते हुए अधरों पर सजल मुस्कान की एक हलकी-सी रेखा नचाकर कहा—पागल, तुम्हें इस समय आज्ञा की कौन सी ज़रूरत आ पड़ी?

हाय! उसकी उस क्षीण हँसी में जीवन की इतनी करुणा बिलख रही थी, उसके उस 'पागल' सम्बोधन में दुलार भरे अपनेपन की इतनी अतुल वैभव-राशि छिपी हुई थी कि मुझसे उस समय और कुछ नहीं कहते बना। उसके उत्तर ने मुझे निरुत्तर बना दिया।

मुझे चुप देख कर उसने पूछा—विजय, तुम क्या चाहते हो, कहो न?

मैंने बड़े कष्ट से उत्तर दिया—आज्ञा।

"किस बात की?"

"तुम्हारे साथ इङ्गलैण्ड जाकर पढ़ने की।"

"अपने पिता जी की मर्ज़ी के ख़िलाफ़?"

"हाँ, अब भी अगर वे राज़ी न हो सकें।"

"नहीं, हरगिज़ नहीं; तुम्हें मैं ऐसा करने से रोकना चाहती हूँ विजय!" उसने दृढ़ता से मेरा विरोध किया—"तुम मेरे साथ वहाँ तक नहीं चल रहे हो और वहाँ से मेरे लौटने तक और भी न जानें कितनी बातें उलट-पुलट हो जायँगी, यह सोच कर मुझे कितना दुःख हो रहा है, मैं बता नहीं सकती। तुम्हारे वहाँ ले चलने की जितनी कोशिशें हो सकती थीं, मेरे बाबू जी ने कीं। मगर भगवान् शायद हम दोनों को जीवन भर एक दूसरे से अलग

ही रखना चाहते हैं। इसीलिए बचपन से आज तक साथ रह कर भी आज मैं तुमसे दूर चली जा रही हूँ। यही कारण है कि मेरे बाबू जी के बार-बार अनुरोध करने पर भी, इतना समझाने-बुझाने पर भी तुम्हारे बाबू जी इस बात पर राज़ी नहीं हो रहे हैं कि तुम मेरे साथ इङ्गलैण्ड चलो। उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि विलायत से वापस आने पर वे तुम्हें हमारी छाया में भी नहीं आने देंगे, हमें जाति से अलग कर देंगे। मैं जानती हूँ, इसमें उनका रत्ती-भर दोष नहीं है। यह समाज का दोष है, जिसने ऐसी-ऐसी अन्धी रूढ़ियाँ पाल रक्खी हैं। ऐसी हालत में मैं तुम्हें अपने पिता का अपमान करने को नहीं कह सकती, हरगिज़ इस बात को पसन्द नहीं कर सकती कि तुम उनकी इच्छा पर विजय प्राप्त किए बिना ही वह काम कर बैठो, जिससे लोग तुम्हें घृणा की दृष्टि से देखने लग जायँ। मेरे बाबू जी भी इसे पसन्द नहीं करते। इससे तुम्हारे चरित्र पर धब्बा लगेगा और यह हमारे लिए सब से बड़े दुख की बात होगी।"

विमला की माँ बचपन में ही चल बसी थीं। उसने अपने पिता की छाती के नीचे माता का विराट् हृदय पा लिया था। उसके पिता ने उसके लिए फ़क़ीरी अख़्तियार कर ली थी। वही उनकी एक निधि थी, जिसे वे प्राणों की तरह पाल रहे थे। स्वाभाविक ही था कि उसके हृदय में पितृ-भक्ति की इतनी ऊँची तरङ्गें उठें। बड़े-बूढ़ों का आदर करना मुझे उसी ने सिखाया था। इस बात में वह मुझसे कहीं बढ़ी-चढ़ी थी। किन्तु इस समय उसकी यह आदर्शवादिता मुझे अच्छी नहीं लगी। भला अपने उस पिता की इच्छा पर मैं कैसे विजय प्राप्त कर सकता था जो जाति, बिरादरी, समाज और धर्म की रूढ़ियों के नाम पर मेरी सुकुमार से सुकुमार भावनाएँ कुचल देना सदैव अपना पहला कर्तव्य समझते थे। उसे क्या पता था कि रूढ़ियों के पुजारी किसी के हृदय का आदर करना जानते ही नहीं! उसे इसका अनुभव ही कब हुआ था कि सबके पिता सदैव पिता ही की तरह पेश नहीं आते, कभी-कभी वे वह काम भी कर गुज़रते हैं, जो बड़े-बड़े दुश्मनों के किए भी नहीं होता! ऐसे पिताओं की इच्छा पर विजय प्राप्त करना आग की चिनगारियों का चुम्बन करने से भी बढ़ कर है। यह बात विमला कभी जान ही नहीं सकती थी और मुझे उन दिनों पल-पल पर इसी एक बात का अनुभव हो रहा था। मेरे लिए यह एक ऐसा कठोर सत्य है, जिसे स्वीकार करते हुए आज भी मेरी छाती फटी जाती है। मगर मैं इसे अस्वीकार नहीं कर सकता। उस समय भी मैं इसे विमला के आगे अस्वीकार नहीं कर सका। मेरी आँखों में विवशता के आँसू उमड़ आए। मैंने कातर स्वर में व्यङ्ग किया—थोड़ी देर के लिए तुम 'विमला' से 'विजय' हो जाओ, तब शायद जान सकोगी कि मेरी क्या स्थिति है।

इस बार उसकी भी आँखें भर आईं। उसने कहा—तुम्हारी स्थिति का स्पर्श करने के लिए मुझे तुम्हारी आँखें नहीं चाहिए विजय! मेरी आँखों में जितनी ज्योति है, इनमें वस्तु-परख की जितनी शक्ति है, वह सब तुम्हीं से तो पा सकी हूँ! तुम्हारी वेदना का मर्म जानने के लिए मुझे 'विजय' बनने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी—मेरे तो रोम-रोम में 'विजय' रमा हुआ है! 'अस्तित्व-लय' के बाद भी क्या कभी 'अस्तित्व-विनिमय' हुआ करता है? मैं तुम्हारी स्थिति पर मन ही मन रो रही हूँ, मगर यह कभी नहीं कहूँगी कि मेरे प्रेम के कारण अथवा ऊँची शिक्षा पाने की लालसा से तुम अपने माँ-बाप का अनादर करो। अपनी सारी आकांक्षाओं में आग लगा कर, अपनी समस्त आशाओं की हत्या करके भी अगर तुम अपने माँ-बाप से 'अपनेपन' की भीख पाते रहोगे तो मैं इसे ही अच्छा समझूँगी। उनकी इच्छा पर विजय पाने के लिए तुम्हें तपस्या करनी पड़ेगी, और उस कठिन तपस्या का समय तुम्हारे आगे आ गया है।

इतनी मर्म-भरी बातों के बाद मैं और क्या कहता, चुप हो रहा। मगर बार-बार पोंछते रहने पर भी मेरी आँखें बरसात की नदियाँ ही बनी रहीं।

उसने फिर कहा—तुम्हारी यह दशा देख कर तो अब यही जी चाहता है कि मैं भी न जाऊँ। मगर बाबू जी जहाज़ का टिकट ख़रीद चुके हैं, इसीलिए उनसे कुछ कहते नहीं बनता।

अभी तक मेरे मन में यही कामना थी कि क्या ही अच्छा हो, अगर विमला भी न जाय, मगर उसकी ये विवशता-भरी बातें सुनते ही मेरी यह स्वार्थ-कामना इस तरह भाग गई, जिस तरह प्रेम का प्रकाश पड़ते ही हृदय की सारी कालिमा निकल भागती है। मेरे

अन्तःकरण में एक नई ज्योति जग गई। मैं बोल उठा—नहीं, मेरे लिए तुम्हारे रुकने की ज़रूरत नहीं है विमला! तुम जाओ, न जाओगी तो मुझे और भी कष्ट होगा। मैं वही करने की चेष्टा करूँगा जिसे तुम मेरे लिए उचित समझती हो। अभी मैं भगवान् के योग्य नहीं हूँ, इसलिए उनकी इच्छा पहचानना मेरे लिए कठिन है। हाँ, तुम्हारी इच्छा के आगे मेरा मस्तक सदैव झुका रहेगा। ऊँचे आदर्शों का अनुकरण बहुत ही कठिन है, किन्तु उनकी उपासना बहुत ही सरल। मैं उपासना से शुरू करता हूँ, वहाँ तक पहुँचने या न पहुँचने की बात नहीं जानता।

इस बार मेरी आँखों में आँसू नहीं थे, वाणी में सचाई का सौन्दर्य और हृदय की दृढ़ता थी। विमला की आदर्शवादिता के भीतर अब मुझे एक दुर्लभ सौन्दर्य दिखाई पड़ा। कुछ ही देर पहले जो घूँटें कड़वी मालूम हो रही थीं, वे ही अब अमृत की बूँदें बन गईं। विमला—मेरी प्यारी विमला—मुझे पहले की अपेक्षा सहस्र गुना अधिक सुन्दरी मालूम होने लगी।

मेरी बातें सुन कर उसने कहा—ऐसा करके तुम मेरे प्रेम का आदर करोगे। मगर यह तो बताओ, अब तुम्हारा क्या करने का विचार है? एम० ए० में नाम नहीं लिखाओगे?

"नहीं" मैंने सिर हिला कर मौन भाषा में जवाब दिया।

"क्यों?"

"अब पढ़ने की छुट्टी ही कहाँ मिलेगी?"

"क्यों, बैठे-बैठे करोगे क्या?"

"सामाजिक रूढ़ियों के विध्वंस की चिन्तना"—कहते हुए एक बार फिर मेरी आँखें डबडबा आईं!

विमला ने करुण-स्वर में कहा—देखो विजय, फिर तुम पागलों की तरह रोने लगे! क्या तुम समझते हो तुम्हारे ये आँसू मेरे कलेजे पर कोई असर ही नहीं पैदा करते?

मैं सँभल गया। ऐसे ही ऐसे मौक़ों पर सच्चा प्रेम शासक का काम कर जाता है। वह हमें एक हलकी-सी ठोकर देकर बड़ी-बड़ी ठोकरों से बचा लेता है।

मैंने कहा—कल तुम्हारा जहाज़ कब खुलेगा?

उसने कहा—साढ़े दस बजे सवेरे।

मैंने कहा—अच्छा, तो लो अभी जाता हूँ।

उसने धीरे से सिर हिला दिया, जिसका अर्थ था 'जाओ।'

२

वहाँ से लौट कर ज्योंही अपने आँगन में पैर रक्खा, त्योंही बाबू जी से भेंट हो गई। वे आँगन से कहीं बाहर जा रहे थे। मुझे देखते ही रुक गए और व्यङ्ग करते हुए बोले—कहिए, चारों ओर घूम-घूम कर सबसे कह आए कि नहीं, कि आपका बाप आदमी नहीं, पिशाच है!

मेरे समूचे शरीर में आग भभक उठी। यह एक ऐसी बात थी, जिसने मेरी साधारण मनुष्यता पर आक्रमण किया। मैंने सतेज होकर उत्तर दिया—क्या आप समझते हैं कि मैं आपके बारे में यही धारणा रखता हूँ?

"इसमें समझने-बूझने की क्या बात है!" उन्होंने कहा—"यह तो तुम्हारी एक-एक बात से पता चलता है। शीशा लेकर देखो तो सही, इस समय तुम्हारी आँखें गुस्से के मारे कैसी लाल हो रही हैं? और क्या तुमने हरदयाल पण्डित से इसी तरह की बातें नहीं की हैं? उनके सामने तुमने अपने बाप को पिशाच नहीं कहा है?"

पण्डित हरदयाल चौबे का नाम सुन कर मैं तो जल बुझा। पण्डित जी हमारे मुहल्ले के उन चुने हुए लोगों में से थे, जो धर्म और पुण्य के नाम पर दिन-रात अधर्म और पाप ही किया करते हैं। पाप और पाखण्ड ही जिनकी जीवन-वृत्ति हो, ऐसे लोग अगर झूठ न बोलें, घर-घर में, बाप-बेटे में, पति-पत्नी में फूट का बीज बोना न जानें, तो भला उनकी रोटी का क्या प्रबन्ध हो! कुछ लोग पाप की कमाई खाकर जीते हैं। मगर चौबे जी उन लोगों में से थे, जिनका पेट केवल पाप ही से भर जाता है।

मैंने क्रोध में काँपते हुए कहा—जिसे आप पण्डित समझ कर पूजते हैं, उसे मेरे सामने ले आइए तो मैं उसकी बोटी-बोटी काट कर अलग कर दूँ। जो आदमी इतना सफ़ेद झूठ बोलता है, उसकी बातों पर भी आप विश्वास कर लेते हैं, इसका मुझे अफ़सोस है।

इसके आगे बाबू जी इस विषय पर और कुछ नहीं बोल सके। कदाचित् उन्हें मेरी सतेज और निर्भीक वाणी ने विश्वास दिला दिया कि बात बिलकुल झूठी है। और

सचमुच इस बात की कोई बुनियाद भी नहीं थी। बाबू जी की ओर से मेरा मन मैला ज़रूर हो गया था, मगर मैंने किसी के आगे उसे इस रूप में प्रकट नहीं किया था। मैं समझ गया कि वह हरदयाल पण्डित मेरे इस मनोमालिन्य से अनुचित लाभ उठा रहा है। मन ही मन मैं उस भयानक आदमी से डरा भी बहुत। क्या पता, ऐसे लोग कब क्या कर बैठें!

ख़ैर, बाबू जी उस समय चुपचाप आँगन से बाहर निकल गए और मैं अपने कमरे में जाकर उदास भाव से बैठ रहा।

माँ ने आकर कहा—बेटा! तुम कुछ दिनों के लिए नानी के घर चले जाओ। हवा-पानी बदल आओ, तबीयत ठीक हो जायगी।

मैंने आँखों में आँसू भर कर कहा—माँ! मेरा मन इस समय स्वर्ग में भी नहीं लगेगा। मैं अभागा हूँ।

मेरी माँ ने खींच कर मुझे कलेजे से लगा लिया। उनकी आँखों से प्यार का अमृत टपक रहा था। उन्होंने रुँधे हुए स्वर में कहा—तुम इतने अधीर क्यों हो रहे हो बेटा? तुम्हारा मन लगाने के लिए मैं अपने प्राणों की बाज़ी लगा दूँगी। स्वर्ग जाकर मन लगाने की बात तुम्हारे दुश्मनों के मन में भी न समाए। वह आदमी के लिए नहीं बनाया गया है। मेरी इस गोद में भी क्या तुम्हारा मन नहीं लग सकेगा बेटा?

माता की गोद में सिर गाड़ कर मैं बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगा। माँ मुझे चूम-चूम कर चुप कराने लगी और मैं उसका प्यार पी-पीकर रोने लगा। रोते ही रोते मेरे मुँह से निकल गया—माँ! मैं तेरा नालायक़ बेटा हूँ। बाबू जी मेरे हृदय के साथ अत्याचार कर रहे हैं।

"जानती हूँ बेटा!" मेरी माँ ने जवाब दिया—"उनकी ओर से मैं इसका प्रायश्चित्त करूँगी। लेकिन अभी नहीं। तुम्हें अगर मेरे ऊपर विश्वास हो तो, मेरे लिए, तुम कुछ दिनों के वास्ते अपने हृदय को पत्थर बना लो। हाँ, बेटा! तब तक उसे इतना कठोर बना लो कि उसके ऊपर गिरने वाला प्रत्येक अत्याचार चूर-चूर होकर बिखर जाय। क्या तुम ऐसा कर सकोगे बेटा?"

"कर सकूँगा माँ!" मैंने उनके चरण छूकर कहा—"तुम आशीर्वाद दे दोगी, तभी कर सकूँगा। मेरा हृदय इस समय जर्जर हो रहा है।"

माँ ने मुझे उठा कर गले लगा लिया और प्यार से कहा—चलो, हाथ-मुँह धोकर कुछ खा लो।

मैं अस्वीकार नहीं कर सका। खाकर आया और बिस्तरे पर पड़ रहा। न जानें चुपके से कब नींद आ गई। आँखें खुलीं तो देखा सूर्य की किरणें मेरे कमरे में नाच रही थीं।

माँ ने कहा—जाओ बेटा! नहा-धोकर उन लोगों से मिल आओ। वहाँ से अभी एक आदमी आया था।

मैं नहा-धोकर वहाँ पहुँचा तो देखता हूँ, मेरे बाबू जी भी वहाँ मौजूद हैं। वे उन लोगों से मिलने के लिए नहीं गए थे, इसलिए गए थे कि कहीं मैं भी उन्हीं लोगों के साथ चुपचाप जहाज़ पर न जा बैठूँ! वैसी अवस्था में वे क्या करते, पता नहीं! मैं क्षोभ और ग्लानि के मारे मर-सा गया। विमला के पिता जी ने मुझे दौड़ कर गले लगा लिया और मेरे बाबू जी की ओर देखते हुए करुण-स्वर में कहा—देखना भाई, मेरे बचुआ को समझने में भूल मत करना। इसे मैंने बहुत ज़्यादा प्यार करके बिगाड़ दिया है। तुम इसे सुधारने की कोशिश मत करना। यह तुम्हारे वंश का दीपक है, इसे हवा के झोंके से न बचाओगे तो पछताना पड़ेगा। इतना इसलिए कह रहा हूँ कि तुम मेरे मित्र हो, भाई हो, तुम्हें इतना कहने का मुझे अधिकार है।

मेरे बाबू जी सिर झुका कर ये बातें सुनते तो रहे, पर उन्हें ये अच्छी नहीं लग रही थीं। मेरे प्रति विमला के पिता का इतना प्यार उन्हें काटे जा रहा था।

विमला आई और उसने कहा—बाबू जी! समय हो गया है, अब चलना चाहिए न?

सब लोग वहाँ से उठे और साथ ही साथ स्टेशन तक आए। यहाँ से रेल द्वारा बन्दरगाह तक पहुँचना था। विमला ने मेरे बाबू जी के चरणों पर सिर रख दिया और मैंने देखा, बाबू जी की आँखों से आँसू की दो-चार बूँदें टपक पड़ीं। विमला के बाबू जी ने उन्हें छाती से लगा कर कहा—"भाई, मेरा कहा-सुना माफ़ करना!" उस समय न जानें कौन सी चोट खाकर मेरे बाबू जी रो पड़े।

विमला ने मेरी ओर एक बार सजल आँखों से देखा और गाड़ी पर जा बैठी। उसके बाबू जी ने गाड़ी पर चढ़ते हुए मेरा हाथ चूम कर कहा—चिट्ठी-पत्री बराबर लिखते रहना बेटा! अच्छी तरह से रहना।

मैंने गाड़ी पर चढ़ने की चेष्टा करते हुए कहा—चलिए, मैं बन्दरगाह तक पहुँचा आऊँ।

"वहाँ जाकर क्या करोगे"—कह कर उसी समय बाबू जी ने मेरा हाथ पकड़कर मुझे पटरी से नीचे खींच लिया। गाड़ी खुल गई। मैं चक्कर खाकर वहीं गिर पड़ा।

३

इङ्गलैण्ड पहुँचते ही विमला ने पत्र भेजा। उसमें सिर्फ़ इतना ही लिखा था—"बाबू जी रास्ते ही में बीमार पड़ गए। अब भी इनकी तबीयत अच्छी नहीं है।

मैं ख़बर पाकर काँप उठा! बेचारी विमला अकेली ही किस तरह उनकी सेवा-शुश्रूषा कर सकती होगी। परदेश का मामला है। न कोई जान, न पहचान। किस तरह उसकी कोई मदद करता होगा? इन बातों को सोच-सोच कर मेरा मन विकल हो रहा था। अब मेरा शरीर यहाँ था और प्राण विमला के पास। यही चाहता था, किसी तरह उड़ कर उसके पास जा पहुँचूँ। चिन्ता ने धीरे-धीरे मेरे शरीर में घर कर लिया। मैं देखते ही देखते अधमुआ-सा, बीमार-सा होगया। मेरे पिता जी मेरी अवस्था पर कुढ़ते थे और माँ मुझे देख कर मन ही मन रोया करती थी। पिता जी इसलिए कुढ़ते थे कि मैं वकालत क्यों नहीं पढ़ता, इस तरह घर पर बेकार क्यों बैठा रहता हूँ। उनकी समझ में मेरी बेकारी ही मुझे बीमार बनाए जा रही थी। और माँ? हाय! उस तपस्विनी को भला मेरी बेकारी क्यों अखरती? वह तो इसलिए रो रही थी कि उसे मेरी बीमारी का कारण मालूम था, फिर भी वह उसका इलाज नहीं कर पाती थी। उसके फूल में एक कीड़ा घुस आया था, जिसे उसने घुसते देखा था, पर अब निकालने का साधन उसके पास नहीं था। और था भी तो वह उसे काम में नहीं ला सकती थी।

धीरे-धीरे इसी तरह दिन बीतने लगे। मेरा जीवन मुझे भार-सा मालूम होने लगा।

एक दिन मैं ज्योंही आँगन से बाहर निकल रहा था, ड्योढ़ी पर तार का चपरासी नज़र आया। मैं किसी भावी आशङ्का से काँप उठा। तार खोलकर पढ़ा तो भय ठीक ही निकला। तार लन्दन से आया था। विमला ने लिख भेजा था—बाबू जी मुझे अकेली छोड़ कर चल बसे। अब मेरे चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार है।

तार के अन्तिम शब्द तक पहुँचते ही मैं धड़ाम से गिर पड़ा। आँखें खुलीं तो माँ को अपने पास ही पाया। मुझे तार की बात याद हो आई और मैं माता की गोद में सिर रखकर रोने लगा।

माँ ने वेदना-विह्वल स्वर में मुझे सान्त्वना दी—भगवान् की यही इच्छा थी बेटा, कोई इसमें कर ही क्या सकता है?

मैंने अधीर होकर कहा—माँ, अब मैं विमला को एक बार देखे बिना बच नहीं सकूँगा।

माँ ने समझाया—उसे तार दे दो, वह घर लौट आवे।

मैंने कहा—वह लौट नहीं सकती माँ, नहीं तो मैं उसे बुलाने से बाज़ नहीं आता।

मेरी माँ कुछ बोलना ही चाहती थी कि बाबू जी कमरे में घुस आए और बोले—देख लिया न विलायत जाने का परिणाम। ऐसी जगह जाकर मरे कि जहाँ कोई जलाने वाला भी नहीं मिला। धर्म-विरुद्ध आचरण करने का यही फल मिलता है।

मैं अपने क्रोध को न रोक सका। बोल उठा—आप अपने धर्म को लेकर इस समय मेरे सामने से हट जाइए। जिस मित्र का आपके सिर पर मनों उपकार लदा हुआ है, उसी की मृत्यु पर आप इस तरह की टीका-टिप्पणी करते हैं, यह मैं सह नहीं सकता। जाइए, हरदयाल चौबे के ही आगे आपको इन बातों पर दाद मिलेगी। मुझे इस प्रकार की धर्म-चर्चा से नफ़रत है।

"तो अब तुम इस लायक़ हो गए कि मुझे घर से निकाल बाहर करो!"—कह कर बाबू जी भूखे शेर की तरह मुझ पर टूट पड़े। बीच में मेरी माँ न पड़ जातीं तो शायद खा ही डालते।

मैं भी उनके व्यवहारों से आजिज़ आ गया था। बिना कोई शील-सङ्कोच दिखाए ही कह उठा—तो क्या आप चाहते हैं कि मैं ही यहाँ से चला जाऊँ?

"जाओ चाहे मरो, मुझे तुम्हारी सूरत से घृणा हो गई है।"

इस बार मेरे बदले मेरी माँ ने उत्तर दिया। माँ के आगे उसके बेटे को कोई मरने को कहे, तो वह प्रलय मचा देती है। उसने क्रोध-कम्पित स्वर में कहा—यह मर जायगा तो फिर घृणा किसकी सूरत से करोगे?

दुनिया भर के लोगों को तो तुम सदैव प्यार ही की निगाह से देखते रहते हो; कोई ऐसी भी तो सूरत रहे जिससे और कुछ नहीं तो तुम्हें घृणा ही हुआ करे।

इस संयत-व्यङ्ग का मर्म समझ कर पिता जी कुछ झेंप-से गए। फिर भी उन्होंने कहा—तुम्हीं ने तो इसे सिर चढ़ा रक्खा है, तभी तो इस तरह की बातें करते उसे शर्म नहीं आती। मैंने क्या कहा, जो तुम इस तरह लाल-पीली हुई जा रही हो?

माँ ने उसी तरह अश्रु-भरे शब्दों में, किन्तु गम्भीरता से जवाब दिया—मैंने इसे सिर इसलिए चढ़ा रक्खा है कि यह लात से रौंदने की चीज़ नहीं है। इसकी हया-शर्म में तो तुमने आग लगा दी। और भी कभी इसके मुँह से इस तरह की बातें सुनते थे? देखती हूँ, जब कभी आँगन में आते हो, इसे एक ठेंस लगाए बिना नहीं जाते। मालूम होता है, इसको मार ही कर तुम्हारे धर्म की प्यास बुझेगी!

"तो क्या इसे विधर्मी हो जाने दूँ?"

"मैं नहीं जानती विधर्मी होना किसे कहते हैं!" मेरी माँ ने जवाब दिया—"हाँ, इतना जानती हूँ कि जो विलायत जाता है, वह आदमी से जानवर होकर नहीं लौटता। न वह ऐसा ही होकर लौटता है कि हम उसे छू न सकें। विजय अगर विलायत से विधर्मी होकर भी लौटेगा तो मैं उसे अपना ही बेटा मानूँगी, वह मेरे लिए कुछ और नहीं हो जायगा। जिस तरह तुम धर्म के नाम पर अपने इकलौते पुत्र का बलिदान कर सकते हो, उसी तरह मैं अपने इकलौते पुत्र के लिए महान् से महान् धर्म को ठुकरा सकती हूँ।"

"पुत्र के लिए महान् से महान् धर्म को ठुकराओगी क्यों नहीं!" दाँत पीस कर मेरे बाबू जी ने कहा—"तुम भी दो अत्तर लिखना-पढ़ना जो सीख गई हो! अच्छी बात है। जाओ, जो करना चाहो, करो। सिर पर पड़ेगा, तब रोओगी।"

"हाँ, सिर पर पड़ेगा तब देख लूँगी!" माँ ने वीरता और दर्प के साथ जवाब दिया—"जाओ, तुम अपना धर्म बचाओ, मैं अपने पुत्र को बचाऊँगी।"

बाबू जी गुस्से के मारे कमरे से बाहर निकल गए। आज पहले ही पहल मैंने अपनी माँ का तेज देखा। पहली ही बार मुझे मालूम हुआ कि उसके हृदय के भाव कितने व्यापक, कितने मधुर और कितने बलवान् हैं। मेरी आँखों से आनन्द की धारा बह चली। माँ ने आँचल से मेरे आँसू पोंछ कर कहा—बेटा, अब तुम निश्चिन्त हो जाओ। मैं तुम्हें दो हज़ार रुपए देती हूँ। जाओ, ख़ुशी से विलायत हो आओ। मैं बरस-दो बरस तक, यह सुन-सुन कर कि तुम अच्छी तरह से हो, तुम्हारा वियोग-दुख सह लूँगी; मगर अपनी आँखों के सामने तुम्हारी यह अवस्था अब मुझसे देखी न जायगी। चूल्हे में जाय धरम और भाड़ में जायँ समाज के लोग, मुझे इनसे कुछ मतलब नहीं। मेरे समाज और धरम तुम्हीं हो। जाओ, सुख से लौट आओ।

माँ का यह त्याग और साहस देख कर मैं दङ्ग रह गया। इतनी दूर तक वह मेरे लिए त्याग कर सकती है, इसका मुझे गुमान भी नहीं था। मैंने पुलकित होकर पूछा—तुम रुपए कहाँ से दोगी माँ?

"रुपए?" मेरी माँ ने हँस कर कहा—"बहू के लिए मैंने गहने बनवाने को रुपए बटोर रक्खे हैं कि नहीं? उन्हीं में से तब तक उधार ले लूँगी।"

मैं लजा गया। साथ ही मेरे चेहरे की प्रसन्नता उद्दीप्त हो उठी। सहसा मेरे हृदय में माता के इस अपूर्व त्याग की एक मीठी-सी ठेंस लगी और मैं थोड़ी देर तक मौन रहने के बाद बोल उठा—नहीं माँ, अब मैं नहीं जाऊँगा।

"नहीं, बेटा! अब तुम्हें ज़रूर जाना पड़ेगा। आज मैं तुम्हारे बाप की ओर से प्रायश्चित्त करके बैठी हूँ। आरम्भ ही में विघ्न मत उपस्थित करो।"

"मेरे वहाँ जाने से तुम्हें अपार कष्ट होगा माँ!"

"मैं उसे सबसे बड़ा सुख समझूँगी बेटा!"

"माँ" कह कर मैं एक बार फिर रो पड़ा। यह मेरे आनन्द और उल्लास का रोना था!

"बेटा!" कह कर माँ ने मुझे छाती से लगा लिया। वह आँचल से कभी मेरा और कभी अपना आँसू पोंछने लगी।

उसके तीसरे ही दिन उसने मुझे प्रेमपूर्वक बिदा किया।

४

विमला को मैंने अपने आने की सूचना नहीं दी थी। एकाएक मुझे अपने सामने देख वह कुछ देर तक खोई-

सी खड़ी रही। फिर तो दौड़ कर मेरे गले से चिपक गई और लगी फूट-फूट कर रोने। जीवन में पहली ही दफ़ा मैंने उसे इतनी कातरता से रोते देखा था। बेचारी विदेश में आकर अनाथिनी हो गई थी। रुपए-पैसे की तो कमी नहीं थी, कमी थी स्वजनों की। अपने बाप की वह लाड़िली बेटी थी। उनका वियोग-दुःख उसके लिए असह्य था। साधारणतः उसे रोने की आदत ही नहीं थी। दुःखों को दबा देना उसे ख़ूब आता था। लेकिन इस बार उसका सारा धैर्य जाता रहा। यह ऐसी दारुण चोट थी, जिसका असर उसके मर्मस्थल पर हुआ। वह बहुत ही दुबली-पतली और बीमार-सी हो गई थी। करुणा की वह जीती-जागती प्रतिमा जब मुझसे लिपट कर उस तरह रोने लगी, तब मैं उसे किसी तरह भी चुप नहीं कर सका। चुप करता भी कैसे? यहाँ ख़ुद ही रोने से फ़ुरसत नहीं थी। पेट भर रो लेने के बाद जब दोनों शान्त होकर बैठ गए, तब उसने कहा—बाबू जी मरते दम तक केवल तुम्हीं को याद करते रहे।

"और मैं अभागा सब दिन तो उनके साथ रहा," आँसू पोंछते हुए मैंने कहा—"सिर्फ़ उसी समय उनके दर्शन नहीं नसीब हुए, जब वे मुझे बार-बार याद कर रहे होंगे।"

"हाँ, रह-रह कर नाम लिया करते थे।"

"उन्हें हो क्या गया था?"

"ज्वर चढ़ आया था। पहले तो वह साधारण रहा, फिर एकाएक ऐसा बढ़ा कि उन्हें समाप्त करके ही उतरा। वह ज्वर नहीं, काल था।"

"तुम्हारे और सब प्रबन्ध तो ठीक हैं न? किसी तरह की तकलीफ़ तो नहीं है?"

"और सब बातें ठीक हैं। अच्छा, तुम अपना तो बताओ, इतने दुबले-पतले क्यों हो गए हो? यहाँ आने के लिए सत्याग्रह ठान रक्खा था क्या?"

"हाँ, बात तो कुछ ऐसी ही थी," मैंने माथा खुजलाते हुए जवाब दिया—"लेकिन अभी तो यात्रा का थका-माँदा हूँ। शायद इसीसे कुछ चेहरा उतर गया हो।"

"आख़िर, तुम यहाँ आ कैसे गए?"

"माँ की कृपा से और तुम्हारे × × ×"

"ज़रूर तुम अपने पिता जी को रुष्ट करके आए होगे"—उसने मेरी बात पूरी होने के पहले ही अपना अनुमान बता दिया।

"पिता जी से इस सम्बन्ध में मेरी कोई बातचीत ही नहीं हुई" मैंने उत्तर दिया—"मुझे तो माँ ने तुम्हारे स्नेहवश यहाँ भेजा है।"

इस बार वह अत्यन्त पुलकित होकर बोली—अच्छा किया, तुम किसी तरह आ तो गए। बाबू जी के अभाव में मुझे सारी दुनियाँ ही सूनी मालूम होने लगी थी। आज उसमें अब कुछ देख रही हूँ; और उसे देखते हुए मेरे जीवन का स्वाद भी कुछ मीठा होने लगा है। मेरा जी इतना उचट गया था कि अगर तुम न आ जाते तो शायद मैं यहाँ से शीघ्र ही स्वदेश लौट जाती। अब चलो, दोनों जने मिल कर ख़ूब पढ़ेंगे।

"मगर तुम्हारा स्वास्थ्य बहुत गिर गया है!" मैंने स्नेह-कातर स्वर में कहा—"कुछ अधिक विश्राम करने की आवश्यकता है।"

"अच्छा चलो, पहले तुम्हें जल-पान तो करा दूँ, नहीं तो कहोगे केवल बातों ही से सत्कार कर रही है!"—कह कर वह मुझे जल-पान वाले कमरे में ले गई।

बहुत दिनों बाद उस दिन हम दोनों ने एक ही साथ बैठ कर जल-पान किया। वह जीवन की एक अनमोल मधुरता थी, जिसकी स्मृति आज उससे भी अधिक मीठी मालूम हो रही है।

५

पूरे तीन साल बाद हम लोग, सारे यूरोप की यात्रा समाप्त करके, स्वदेश लौट आए। आँगन में पैर रखते ही माँ ने हम दोनों को एक साथ ही गले लगा लिया। विमला उसी समय बिदा होकर अपने घर चली गई। मैं अपने यहाँ रह गया। विमला के आगे समाज का कोई बन्धन नहीं था, क्योंकि वह अकेली ही थी। मगर मैं अपने घर में कैसे रह सकता था? समूची बिरादरी में मेरे आने का शोर मच गया। मेरे बाबू जी के प्राण सङ्कट में पड़ गए।

जब मैंने पैर छूकर उन्हें प्रणाम किया, तब उनकी आँखें तो ज़रूर सजल हो आईं, लेकिन हृदय पर समाज का आतङ्क पूर्ण-रूप से छाया ही रहा।

उन्होंने क्षुब्ध होकर पूछा—रहने का कहाँ विचार किया है?

अभी मैंने पैर की धूल तक नहीं झाड़ी थी और मेरे कलेजे में प्रश्न का यह तीखा शूल चुभा दिया गया। मैं अपने आँगन में खड़ा था, और मेरे पिता जी मुझसे पूछ रहे थे कि मैंने रहने का कहाँ निश्चय किया है। मानों उस घर में रहने से मैं इनकार कर रहा था। क्षोभ के मारे मैं चुपचाप खड़ा रहा।

बाबू जी ने कहा—इस तरह चुप्पी साधने से तो काम चलेगा नहीं। समाज और धर्म का मामला है। अपने रहने का स्थान ठीक कर लो।

मैंने कहा—अभी चला जाऊँ ?

बाबू जी—यह मैं कहाँ कह रहा हूँ !

"आख़िर आपके कहने का मतलब तो यही है न !" मैंने नम्रता से पूछा—"कि मैं आपके साथ नहीं रह सकता ?"

"यह तो मैं तुमसे विलायत जाने के बहुत ही पहले कह चुका हूँ !" बाबू जी ने कहा—"विधर्मी के साथ रह कर मैं अपना लोक-परलोक तो न बिगाड़ सकूँगा।"

"मगर मैं विधर्मी तो हुआ नहीं हूँ !"

"दुनिया जानती है कि विलायत जाकर किसी की जात-पाँत नहीं बची रहती। पता नहीं, तुम्हीं कैसे इतने पाक-साफ़ रह गए !"

"अगर यही बात है, तब तो सचमुच मैं इस समाज को प्रणाम करता हूँ—लीजिए मैं चला !" कह कर मैंने क़दम बढ़ाया ही था कि मेरी माँ ने दौड़ कर मेरा हाथ पकड़ लिया।

मैंने सजल स्वर में कहा—मुझे जाने दो माँ ! मैं प्रति दिन तुम्हारे चरण छू जाया करूँगा। बाबू जी को मेरी छाया से भी क्लेश पहुँचने लगा है, क्योंकि उनकी समझ में मैं विधर्मी हो गया हूँ।

"मगर इस घर में मेरा भी तो कुछ अधिकार है बेटा !" मेरी माँ ने गम्भीरता से कहा—"इसके आधे हिस्से में हम दोनों माँ-बेटे रहेंगे और आधा हिस्सा तुम्हारे धर्मप्राण बाबू जी का रहेगा। उनके हिस्से में धर्म है, मेरे हिस्से में पुत्र।"

वही हुआ। माँ ने सचमुच आँगन के दो हिस्से करवा दिए। बीचोबीच एक लम्बी दीवार खड़ी कर दी गई।

यह सब तो हुआ; लेकिन मुझे यह अच्छा नहीं मालूम होता था। मेरी माँ को वहाँ अनेक कष्ट थे। मुहल्ले वालों ने पण्डित हरदयाल चौबे की कृपा से मेरी माँ को आग-पानी तक देना भी बन्द कर दिया था। एक तरह से मुझे लोग अछूत ही समझने लगे थे। मैं अपना और अपनी माँ का यह अपमान नहीं सह सका। एक दिन विमला मेरी माँ से मिलने आई। उसे भी इन बातों का पता चल गया था। मैंने भी चर्चा छेड़ दी। उसने कहा—मेरा तो समूचा घर ख़ाली ही पड़ा रहता है। वहाँ क्या सुविधा नहीं होगी ?

मैंने भाव-भरी दृष्टि से माँ की ओर देखा। उसने कहा—क्यों बेटा ! वहीं चलोगे ?

मैंने कहा—हाँ माँ ! इस नरक से दूर ही हट कर रहने में सुख है। यहाँ तो मनुष्यता का कोई नाम-निशान भी नहीं दिखाई पड़ता। चलो, वहीं शान्ति और स्वच्छन्दता से रहेंगे।

शाम को हम लोग विमला के घर में पहुँच गए। अपना घर छोड़ते समय मेरी माँ फूट-फूट कर रोई। मगर उसका मूल्य ही क्या था ? मुझे भी वह घर छोड़ते हुए कम दुख नहीं हुआ, किन्तु मैं रोया नहीं। रोकर ही क्या करता ? उसे तो बाबू जी जान-बूझ कर मसान बनाने पर तुले हुए थे !

६

"तुमने भी कुछ सुना है बेटा ?"—मेरी माँ ने घर आते ही उस दिन बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"नहीं माँ ! क्या कोई नई बात है ?"—मैंने जवाब दिया।

"सुनती हूँ, तुम्हारे बाबू जी तुम्हारे लिए नई अम्माँ ले आए हैं।"

"क्या ?"—मैंने आश्चर्य से चौंक कर पूछा।

"तुम्हारे बाबू जी ने दूसरा विवाह कर लिया है।"

"दूसरा विवाह कर लिया ?"

"हाँ, सुनती तो हूँ !"—कह कर मेरी माँ उदास हो गई।

मैं उसी समय इस बात का पता लगाने को चल पड़ा। वहाँ पहुँच कर देखता हूँ, दरवाज़े पर बैठ कर पण्डित हरदयाल जी चौबे मेरे बाबू जी के साथ ख़ूब हँस-हँस कर बातें कर रहे हैं और पान चबा रहे हैं।

मुझे देखते ही बाबू जी की आँखें नीची होगईं। चौबे जी की भी सुर्ख़ी जाती रही।

मैंने बाबू जी के चरण छुए और लाल धोती देख कर उनसे, बिना किसी सङ्कोच के, साहसपूर्वक पूछा—क्या मैं नई अम्माँ जी को एक बार देख सकता हूँ?

मेरे बाबू जी के माथे पर पसीना आगया। वे तो कुछ जवाब दे नहीं सके, बीच ही में बोल उठे पण्डित हरदयाल चौबे। उन्होंने दाँत निपोड़ कर हँसते हुए कहा—भला अम्माँ को देखने के लिए बाप से पूछने की क्या ज़रूरत है? यह बात विलायत से सीख कर आए हैं क्या बाबू जी?

मेरे शरीर में आग लग गई। मैंने कहा—विलायत में तो आप जैसे बेहूदे रहते नहीं, जो ये बातें सिखा सकें। इन्हें तो आप ही लोगों की कृपा से सीख सकूँगा।

मैंने जान-बूझ कर उसे गाली दी। मुझे मालूम हो गया था कि उसी शैतान ने बाबू जी को विवाह के लिए उत्तेजित किया और अन्त में उसे पूरा ही कराके छोड़ा। मुझे मालूम था कि मुहल्ले भर में जितने अनर्थ होते हैं, उन सबका सूत्रपात करने वाला वही पाखण्डी ब्राह्मण है। इसीलिए मैंने इस प्रकार के अशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया कि वह गालियाँ खाकर गालियाँ बकने लगे और मैं उसे भरपूर पीट कर अपने दिल की आग बुझा सकूँ। पर निशाना ठीक बैठा नहीं। बातों में पूरी गरमी नहीं आ पाई। उसने कहा—ज़रा सँभल कर बातें करना सीखो।

मैंने कहा—सँभल कर बातें करना सीखूँ? और तुम्हारे लिए? चुपचाप सामने से हट जाओ, नहीं तो पुलिस के हवाले किए जाओगे; मैं जानता हूँ दिन-रात तुम कौन-कौन से काम किया करते हो! ख़बरदार, जो फिर कभी मैंने इस दरवाज़े पर तेरी सूरत देखी तो होश ठिकाने कर दूँगा।

पुलिस का नाम मैंने योंही ले लिया था। पर उसी भय से वह कुछ और न बोल सका। भीगी बिल्ली की तरह वहाँ से चुपचाप चला गया। उसे मालूम हो गया कि मैं उसकी सारी करतूतों से वाक़िफ़ हूँ। इस बात ने उसे और भी दहला दिया। पापी अपने पापों से नहीं, पापों की पोल खुलने से डरते हैं।

बाबू जी उसी तरह सिर झुकाए बैठे थे। मैंने अब अपने क्रोध के भावों को बलपूर्वक दबाते हुए, यथाशक्ति अपनी बातों में नम्रता लाते हुए, उनसे पूछा—आपको यह क्या सूझी?

बाबू जी ने कहा—आख़िर, घर-गिरस्ती सँभालने के लिए मैं दूसरा कौन सा उपाय करता?

"क्यों? मेरी माँ क्या मर गई थी?"

"मेरे लिए सभी मर गए।"

"तो आप ही क्यों जीते रहे? कहीं चुल्लू भर पानी नहीं मिला?"

बाबू जी ने सतेज होकर कहा—हट जाओ मेरे सामने से, नहीं तो अनर्थ कर डालूँगा। मुझे गालियाँ देने आए हो? तुमसे क्या मतलब? मेरा जो मन चाहेगा, करूँगा। किसी से कुछ कहने जाता हूँ? विवाह नहीं करता तो क्या संन्यासी बन कर घर-द्वार छोड़ देता?

"अच्छी बात है" कहकर मैंने दोनों हाथ जोड़ते हुए उनसे निवेदन किया—"मुझसे बड़ी भूल हो गई, क्षमा कीजिएगा। आपने बहुत ही अच्छा किया। पण्डित हरदयाल जीते रहेंगे तो आपको इस तरह के यश की कमी न रहेगी।"

"जब अपना आदमी दग़ा दे तो दूसरों की भी छाँह न पकड़ें, यह कैसे हो सकता है?" मेरे बाबू जी ने जवाब दिया—"हरदयाल की कृपा न होती तो आज अपने हाथ से भोजन बनाने का भी कष्ट दूर नहीं होता। तुमसे तो मेरे लिए वही अच्छा है, और कुछ नहीं तो अपने आदमी की तरह हमेशा हिला-मिला तो रहता है।"

बाबू जी की इस औंधी बुद्धि पर मुझे दया आ गई। मैं सचमुच रो पड़ा। उनसे केवल इतना ही कह कर चल दिया—भगवान् ही आपकी रक्षा करें।

वहाँ से चला तो, पर मेरे क़दम आगे नहीं बढ़ते थे। यही सोच रहा था कि किस तरह माँ के आगे मैं यह कठोर सत्य उपस्थित कर सकूँगा? किस तरह उसे बता सकूँगा कि सचमुच मेरे पचपन वर्ष के बूढ़े बाप ने एक बालिका के साथ ब्याह किया है? क्षोभ, ग्लानि, सन्ताप और रोष के मारे मैं व्याकुल हो उठा। उस समय यही इच्छा हुई कि अपने को किसी ऐसी जगह में जाकर छिपा दूँ, जहाँ मुझे कोई देख न सके! धरती के भीतर समा जाने की आवश्यकता जीवन में पहले-पहल उसी दिन हुई!

माँ के पास पहुँच कर मैं कुछ बोल न सका। मुझे देखते ही वह सारी बातें समझ गई। उस समय उसके आँसू नहीं बरसे, एक अद्भुत् शान्ति और गम्भीरता की ज्योति से उसका समस्त मुख-मण्डल जगमगा उठा।

७

आख़िर वह दिन भी आ ही गया। मेरी माँ ने विमला के साथ मेरा ब्याह कर दिया। वह एक गर्ल्स कॉलेज की प्रधान अध्यापिका हो गई और मैं हो गया एक कॉलेज में अङ्गरेज़ी साहित्य का प्रधान प्रोफ़ेसर। बड़े सुख से समय बीतने लगा।

सुख की सारी महत्ता ही चली जाय, अगर उसके भीतर किसी दुख का प्रवेश न हो। हम लोगों के सुख में भी एक दुःख था। और वह यही कि कभी-कभी मेरी माँ बहुत ही उदास हो जाया करती थी। उसे रह-रह कर बाबू जी की दुरवस्था पर दया आती थी। मैं स्वयं कभी-कभी उनकी बात सोच कर बहुत ही विकल हो उठता था। मगर न मैं ही कुछ कर सकता था, न मेरी माँ ही।

इसी तरह दिन बीतते-बीतते समूचा साल ख़तम हो गया। एक दिन मैं कॉलेज जाने की तैयारी कर ही रहा था कि इतने में माँ ने आकर कहा—उधर से एक आदमी आया था, सुनती हूँ, बड़ी-बड़ी बातें हो गई हैं। ज़रा देख आओगे?

मैंने घबरा कर पूछा—किधर से आदमी आया था? बाबू जी के मुहल्ले की ओर से?

"हाँ, सुनती हूँ, तुम्हारी नई अम्माँ उनके घर से निकल भागीं और वे खाट पर पड़े हैं।"

मैंने कलेजा थाम कर पूछा—यह कब?

माँ ने उतावली के साथ कहा—जाओ, ज़रा पता तो लगाओ कि बात क्या है।

मैं उसी दम बाबू जी के घर पहुँचा। वहाँ जाकर देखा तो वे हैज़े का शिकार बन कर बेतरह तड़प रहे हैं। उनके चारों ओर गन्दगी पड़ी थी। मालूम होता था, वे रात ही से इसी तरह पड़े हुए थे। कोई देखने-भालने वाला नहीं, कोई सेवा-शुश्रूषा करने वाला नहीं। मैंने जल्दी से डॉक्टर बुलाया और उनकी चिकित्सा शुरू करवाई। स्वयं उनके कमरे और बिस्तरे की गन्दगी धोई। उनकी दवा-दारू का पूरा प्रबन्ध करके मैं उन्हीं के पास बैठ गया। दिन भर मैं उनकी सेवा में लगा रहा। सन्ध्या-समय जब मेरी माँ और विमला पहुँच गईं, तब मैं इस बात का पता लगाने चला कि आख़िर वे (मेरी नई अम्माँ) गईं कहाँ। उनका मायका वहाँ से दो-तीन मील पर था। वहाँ से भी आदमी लौट आया और बोला कि वे वहाँ नहीं गई हैं।

अब मेरे हृदय में धड़कन शुरू हो गई। मैं समझ गया कि वे केवल बाबू जी की बीमारी के ही डर से नहीं भागी हैं, उनके भागने का मतलब कुछ और है। मैंने मुहल्ले में घूम कर पता लगाया तो मालूम हुआ कि मेरे बाबू जी के परम प्रिय मित्र पं० हरदयाल चौबे भी ग़ायब हैं। न जानें क्यों मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि इस शैतानी का कारण भी वही है! और सचमुच बात भी ठीक निकली। उसी दिन से किसी ने उनकी सूरत नहीं देखी और न अभी तक मेरी उन नई अम्माँ का ही पता चला।

दो दिन तक तो बाबू जी में बातें करने की ताक़त नहीं थी। तीसरे दिन उन्होंने धीरे-धीरे बोलना शुरू किया। उनकी बातों से मालूम होता था कि वे भीतर ही भीतर अपनी करनी पर बहुत ही लज्जित और दुखित थे।

मेरी माँ उनकी बातों का कोई जवाब नहीं देती थी। उनका काम मौन-भाव से दिन-रात सेवा करना था। मैं कभी-कभी उनसे बातचीत कर लेता था और विमला उनके पास से कभी हटती ही नहीं थी।

भरपूर सेवा-शुश्रूषा करते हुए पूरे दस दिन बीते, तब कहीं जाकर बाबू जी खाट पर से उठे।

जब वे चलने-फिरने लगे, तब एक-एक करके हम लोग अपनी जगह लौट गए। जाते समय बाबू जी ने किसी से भी कुछ नहीं कहा। बीमारी से उठने के बाद वे बहुत ही गम्भीर हो गए थे। आपदाओं की ज्वाला मनुष्य के हृदय का सारा मल जला देती है। बाबू जी को देखने से यही मालूम होता था।

८

वहाँ से लौटने के दो ही तीन दिन बाद क़रीब दस बजे का वक़्त था। रविवार के कारण छुट्टी थी ही। मैं निश्चिन्त होकर विमला के साथ बातें कर रहा था।

इसी समय सहसा बाबू जी की आवाज़ सुन कर चौंक उठा ! वे कातर वाणी में किसी से कह रहे थे—मेरा अपराध क्षमा करो, मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है।

कमरे से झाँक कर देखा तो बाहर बरामदे में बाबू जी मेरी माँ के चरणों पर झुके हुए थे और माँ उन्हें दोनों हाथों से पकड़ कर उठा रही थी। मैं उसी जगह खड़ा रह गया, आगे नहीं बढ़ा।

बाबू जी ने फिर कहा—मुझे क्षमा न करोगी ?

इस बार मेरी माँ उनके चरणों पर गिर पड़ी और रोती हुई बोली—माफ़ी तो मुझे माँगनी है। मैंने तुम्हें न जाने कितने कष्ट पहुँचाए।

बाबू जी ने मेरी माँ को उठाते हुए कहा—तुमने मेरी आँखें खोल दीं, मैं अन्धा हो गया था !

माँ ने कहा—बीती बातें भूल जाओ। मैं तुम्हारी दासी हूँ, कहो क्या आज्ञा देते हो ?

"हिम्मत तो नहीं होती" बाबू जी ने कहा—"मगर मान जाओ, तो यही कहता हूँ कि अब सब लोग वहीं चल कर रहो।"

"यह बात अपने बेटे-पतोहू से कहो"—कह कर माँ उन्हें मेरे कमरे की ओर लाने लगी। मेरी छाती धक्-धक् करने लगी।

बाबू जी लपकते हुए आकर मेरे गले से लग गए और स्नेह-गद्गद स्वर में बोले—बेटा ! बहू जी से कहो, मुझे माफ़ कर दें—मैं तुमसे नहीं, उन्हीं से माफ़ी माँगना चाहता हूँ।

इसी समय विमला भी निकल आई और अपने ससुर के पैरों पर गिर पड़ी। थोड़ी देर के लिए वहाँ स्नेह और करुणा की धारा उमड़ पड़ी। वह धारा कितनी निर्मल थी, कितनी पवित्र !

बाबू जी ने आनन्द-गद्गद स्वर में कहा—इस बुड्ढे को कुछ खिला दो बहू ! आज दो शाम से कुछ खाने को नहीं मिला है।

विमला दौड़ कर रसोई-घर में चली गई। थोड़ी ही देर में हम दोनों भी वहीं जाकर बैठ गए। बहुत दिनों बाद बाबू जी के साथ बैठ कर भोजन करने का सौभाग्य मिला था। मैं आनन्द-विभोर हो गया।

मेरी माँ की ख़ुशी का ठिकाना नहीं था। उसने बाबू जी से दिल्लगी करते हुए कहा—देखा, अन्त में किसकी विजय हुई !

बाबू जी ने जवाब दिया—लेकिन सच कहना, तुम्हारी विजय भी क्या उतनी ही मधुर है जितनी मेरी यह पराजय ?

हम सब लोग एक साथ ही हँस पड़े।

❧ ❧ ❧

दरिद्रता

[रचयिता—श्री० गुरुसहाय जी 'विरक्त']

(१)

शोक-सन्ताप की सगी नानी,
दासता की प्रसिद्ध है माता।
निन्द्य कुविचार की बहिन है यह,
छल-कपट से घनिष्ठ है नाता॥

(२)

दोष हैं जो मनुष्य-जीवन के,
खान सबकी दरिद्रता ही है।
दुःख, अज्ञान या पतन, अवनति,
जान सब की दरिद्रता ही है॥

(३)

वास इसका जहाँ कहीं होता;
हास होते न देर लगती है।
मान-सम्मान भस्म होता सब;
आग इसकी जहाँ सुलगती है॥

(४)

मोड़ कर मुँह सदाचरण से यह,
पाठ कुविचार का पढ़ाती है।
शीश पर विज्ञ सृष्टि-रत्नों के—
भूत धूर्त्तत्व का चढ़ाती है॥

(५)

दास इसने बना लिया जिसको,
लोक-परलोक सब नसाती है।
हा ! बना के ग़ुलाम ग़ैरों का;
नाम संसार से मिटाती है॥

(६)

नाथ ! जिसको किया धनी तुमने,
है उसी का सफल यहाँ जीवन।
किन्तु उसका कहाँ ठिकाना है—
जो कि संसार में हुआ निर्धन !!

(७)

जन्म लेकर निधन पिता के घर,
उच्च शिक्षा न पुत्र पाता है।
यों अपढ़ मूर्ख बन भला जग में,
ठोकरें वह कहाँ न खाता है?

(८)

पास जिसके न एक पाई हो,
व्योंत वाणिज्य का करे कैसे?
हाथ पर हाथ धर अपाहिज-सा,
ज़िन्दगी के न दिन भरे कैसे?

(९)

हर बना, तो फटा पुराना पुर,
पुर लिया तो बिगड़ गई रस्सी।
दीन जन किस तरह करें खेती,
एक ही बैल में लगें अस्सी?

(१०)

कौन सा काम कर कमाए धन,
गाँठ में है टका नहीं जिसके।
क्यों न बैठा रहे टका सा वह,
क्यों न मर जाय एड़ियाँ घिस के !!

(११)

दीन जब पेट से विवश होते,
दासता दूसरों की करते हैं।
लोटते पैर पर हिलाते दुम,
श्वान-सेवा में जन्म भरते हैं !!

(१२)

है कहाँ पर गुज़र ग़रीबों का,
स्वामि-कटु-वाक्य तोड़ते मन हैं।
निन्द्य से निन्द्य काम करने में,
हो विवश दीन जोड़ते मन हैं॥

(१३)

हैं चुराते कहीं किसी का धन,
हैं कहीं हाय ! प्राण ही हरते।
अन्न बिन हो रहे क्षुधातुर जो—
कौन सा पाप नर नहीं करते?

(१४)

रोटियों पर कहीं विधर्मी हो,
वंश का नाम ही मिटाते हैं।
पेट की आग शान्त करने को—
पुत्र तक हाय ! भून खाते हैं !!

(१५)

नित्य ही यों अधर्म कर-कर के,
पाप का हैं घड़ा भरा करते।
पेट ख़ाली रहे न, इस धुन में—
कब किसी पाप-कर्म से डरते?

व्यंग चित्रावली

[होली के भड़ुए]

होली के भड़ुए माँ-बहिनों को रास्ते में पाकर आपे से बाहर हो गए हैं, गालियाँ गा-गाकर होली के पवित्र त्योहार को कलङ्कित कर अपनी कुरुचि का परिचय दे रहे हैं।
इनकी सन्तान पर इस अश्लीलता का क्या प्रभाव पड़ेगा—
सो इन्हीं भड़ुओं से पूछिए !!

अपने ही घरों के बारजे पर स्त्रियों को देख कर होली के भड़ुए कीचड़ उछाल रहे हैं और अश्लील गालियाँ गा रहे हैं !
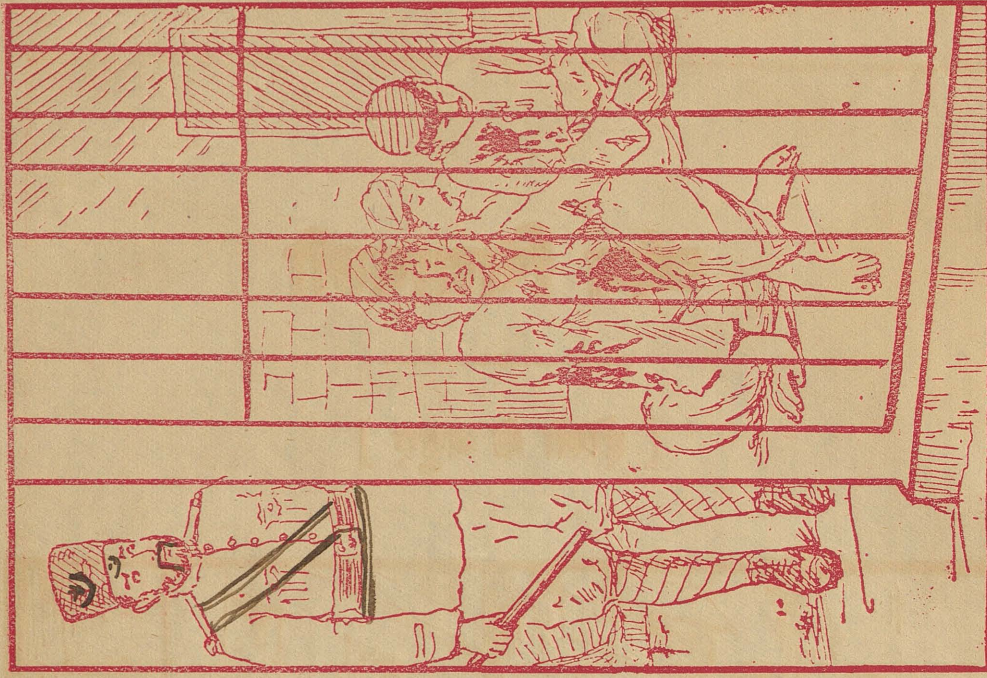
नशे में बदमस्त होन के कारण होली के भड़ुए पुलिस द्वारा गिरफ़्तार किए गए हैं !

होली के भड़ुए राह-चलते भलेमानुसों पर कीच उछाल कर उत्सव मना रहे हैं !

कीच उछालने के कारण झगड़ा हो गया—मार-पीट हो रही है !!

झगड़ा करने के कारण होली के भड़ुए गिरफ़्तार होकर आम सड़क पर से पुरस्कार पाने जा रहे हैं !
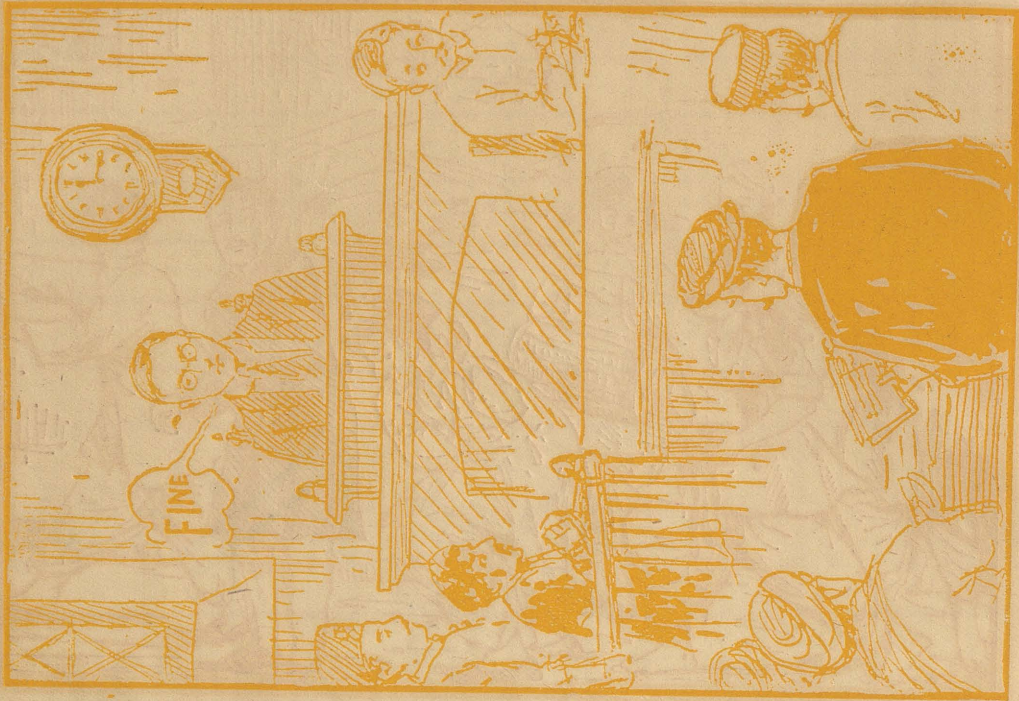
सड़क पर दङ्गा करने का समुचित पुरस्कार मिल गया—शुक्र है, ज़ुर्माना देकर ही जान बच गई !!
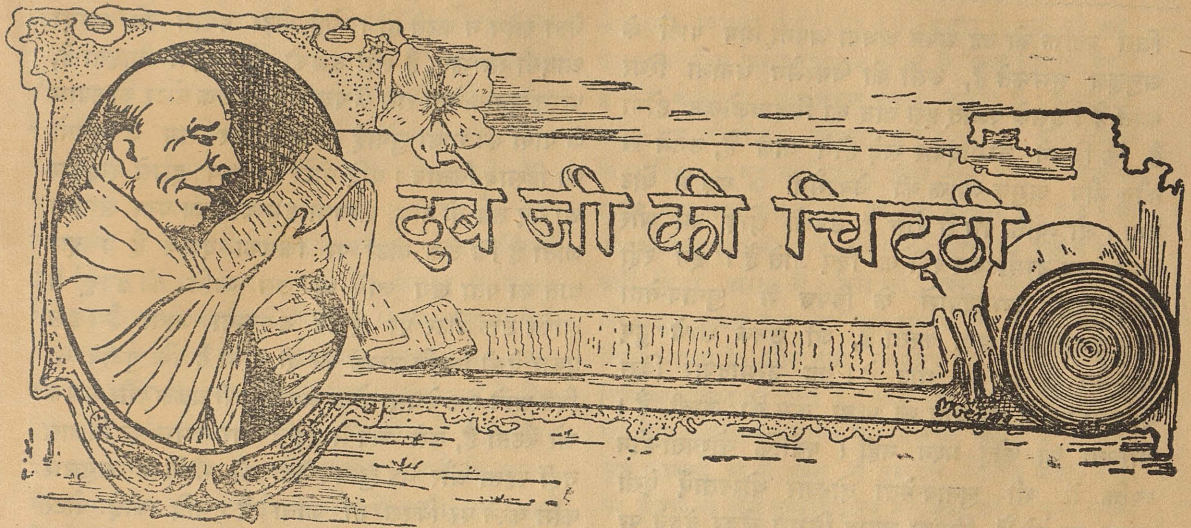
अजी सम्पादक जी महराज,

जयराम जी की !

क्षमा कीजिएगा, इस बार चिट्ठी भेजने में कुछ विलम्ब हो गया। इसका कारण मेरी सुस्ती या आलस्य नहीं है। बात यह थी कि मैं म्यूनिसिपल-चुनाव की चपेट में आ गया था। यद्यपि इस बार मैंने यह निश्चय कर लिया था कि इस बला से बचा रहूँगा—न किसी का समर्थन करूँगा न किसी का विरोध, परन्तु यार लोगों को यह कब सहन हो सकता था। वे ऐसे पन्जे झाड़ के पीछे पड़े कि पिण्ड छुड़ाना असम्भव हो गया। भाई, कहने को तो चुनाव जनता के वोट पर होता है; पर जनता सच्चे और शुद्ध हृदय से किसे वोट देती है, इसका पता लगाना घास के गट्टे में से सूई ढूँढ़ निकालने के समान है। ओफ़ ओह ! कितनी धाँधली होती है, कितना अनुचित ढङ्ग अख़्तियार किया जाता है कि मैं बयान नहीं कर सकता। आपने राजनैतिक नेता, धार्मिक नेता इत्यादि का नाम तो सुना होगा, पर अब कुछ दिनों से १००८ वोटयुक्त (वोट—श्री) श्रीमान् चुनाव-नेता का प्रादुर्भाव हुआ है। यह चुनाव-नेता वे लोग हैं, जिनकी दाल राजनीति में नहीं गलती, जो अन्य किसी बात के नेता बनने की योग्यता नहीं रखते—या फिर जिन्हें केवल उन लोगों को चुनवाना होता है, जो उनके मित्र हैं और उनसे वादा करा लेते हैं कि वह अमुक पार्टी की नीति के अनुसार काम करेंगे। ऐसे नेताओं का नेतापन केवल चुनाव के समय में चमकता है। कुछ लोग ऐसे हैं जो केवल इसलिए चुनाव-नेता बनने का प्रयत्न करते हैं, जिसमें उम्मीदवार उनकी ख़ुशामद करें—उनके यहाँ ज़रा चहल-पहल रहे—चार आदमी आते-जाते रहें। लोग समझें कि हाँ यह भी कोई आदमी हैं। और क्या, यह ठाठ हैं। ये लोग ठेके पर चुनाव लड़ते हैं। कैसा ही उम्मीदवार हो, किसी भी योग्यता का हो—किसी चुनाव-नेता को ठेका मिल जाय, बस समझ लीजिए कि वह रुपए में बारह आने भर हो गया। कुछ लोग चुनाव के कार्य के विशेषज्ञ समझे जाते हैं और इस कार्य के लिए दूर-दूर तक बुलाए जाते हैं। इन लोगों ने चुनाव लड़ना भी एक कला बना रक्खा है। जी ! मामूली बात नहीं है। कुछ दिनों में कदाचित् इस कला पर पुस्तकें भी लिखी जायँ ! यद्यपि यह बात विशेषज्ञों के लिए कुछ हानिकारक होगी; क्योंकि उनके रहस्यों का उद्घाटन होगा।

अब ये विशेषज्ञ लोग किस प्रकार चुनाव लड़ते हैं, इसका भी कुछ वर्णन सुन लीजिए। यद्यपि मैं इन लोगों के पूरे हथकण्डे नहीं समझ पाया हूँ, परन्तु जहाँ तक मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ है उतना बताता हूँ। सब से पहले चुनाव-नेता की दृष्टि चेयरमैन के चुनाव पर जाती है। इस बार कौन चेयरमैन होना चाहिए।

जिस व्यक्ति को वह अपने अथवा अपनी प्रिय पार्टी के अनुकूल समझते हैं, उसी को चेयरमैन बनाना स्थिर करते हैं। इसके पश्चात् इस बात का सिंहावलोकन होता है कि जितने उम्मीदवार खड़े होने वाले हैं, उनमें से कौन-कौन अमुक व्यक्ति की चेयरमैनी के पक्ष में वोट देगा। जो व्यक्ति पक्ष में होते हैं, उनको छोड़ कर और अन्य सब उम्मीदवार रद्दी कर दिए जाते हैं। इन रद्दी किए हुए उम्मीदवारों के विपक्ष में चुनाव-नेता ऐसा उम्मीदवार खड़ा करता है, जो उनके सोचे हुए चेयरमैन के पक्ष में वोट दे। यह उम्मीदवार किस योग्यता का है, इस बात की परवा कम की जाती है। योग्यता का कोई प्रश्न नहीं। क्योंकि योग्यता-हीन व्यक्ति में भी चुनाव-नेता दो-चार योग्यताएँ ऐसी उत्पन्न कर देते हैं, जिनका जवाब चिराग़ लेकर ढूँढ़ने पर भी मिलना असम्भव हो जाता है। और अपने विपक्षी योग्य से योग्य व्यक्ति में भी दो-चार बातें ऐसी ढूँढ़ निकालते हैं कि उनसे अधिक बुरी बात की मिसाल ढूँढ़ निकालना टेढ़ी खीर हो जाती है। उम्मीदवार स्थिर हो जाने पर उनके पक्ष में जनता की सहानुभूति प्राप्त करने और विपक्षी उम्मीदवार के प्रति जनता के हृदय में विरोध-भाव उत्पन्न करने की चेष्टा की जाती है। इस कार्य में ही सारी कला अन्तर्हित है। पक्ष के उम्मीद-वारों के समस्त पुण्य-कार्य ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकाले जाते हैं और उन्हें जनता के सम्मुख रक्खा जाता है, और विपक्षी उम्मीदवार के सारी आयु के पापों की सूची तैयार की जाती है और उन्हें जनता के कानों तक पहुँचाया जाता है। ये बातें जैसी की तैसी नहीं, वरन् यथेष्ट वृहदाकार (Enlarged) बना कर रक्खी जाती हैं। इस प्रकार चुनाव, जनता का चुनाव नहीं, वरन् चुनाव-नेताओं का चुनाव बन जाता है। जनता बेचारी चुनाव-नेताओं के अनुसार कार्य करने पर मजबूर की जाती है। All is fair in love and war की अङ्गरेज़ी कहावत के अनुसार चुनाव-नेता कार्य करते हैं। झूठे वादे करना, सुबह जो कहा है, शाम को उसके प्रतिकूल हो जाना, किसी से कुछ कहना और किसी से कुछ, अन्त तक लोगों को भ्रम में डाले रहना, झूठा प्रचार करना, उम्मीदवारों को बद-नाम करना, उम्मीदवारों के पक्ष अथवा विपक्ष में नाजायज़ दबाव डलवाना इत्यादि कोई ऐसा काम नहीं है, जो ये नेता लोग न करते हों। कोई वोटर श्याम को अच्छा आदमी समझता है और उसको वोट देना चाहता है, परन्तु चुनाव-नेता राम के पक्ष में हैं तो उक्त वोटर को श्याम के पापों की गाथा सुनाई जाती है और राम के पुण्यों का हिसाब-किताब। यदि वोटर महाशय इससे राह पर आ गए तब तो ठीक, अन्यथा इस बात का पता लगाया जाता है कि उक्त वोटर पर किसका दबाव है। इस बात का पता लग जाने पर उस व्यक्ति को क़ाबू में लाकर उक्त वोटर पर दबाव डलवाया जाता है। इस प्रकार ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जाती है कि चुनाव का दिन आने तक बेचारा वोटर अपनी सारी अक़्ल और समझ खो बैठता है, उसे अपनी बुद्धि और समझ पर विश्वास नहीं रहता और वह चुनाव-नेता की नीति के अनुसार काम करने पर विवश हो जाता है। यदि कोई वोटर कहता है कि हम तो अमुक व्यक्ति को वोट देने का वादा कर चुके हैं, तो चुनाव-नेता या उनका कोई अनुचर उस वोटर को यह सुझाता है कि ऐसे वादे का पूरा करना आवश्यक नहीं है। चुनाव में वादों और वचनों का कोई मूल्य नहीं। यदि किसी के वचन या वादे का मूल्य है तो वह केवल चुनाव-नेता या उनके पक्ष वालों का। उनके वादे—यदि उनका पूरा करना ठीक समझा जाता है—पत्थर की लीक हैं। वे कैसे टाले जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त यदि कोई वचन देता है तो वह उसी प्रकार मूल्यहीन है, जिस प्रकार कि एक बच्चे की बातें होती हैं।

किसी बात को उलट-पलट कर देना चुनाव-नेता के बाएँ हाथ का खेल है। कल शाम तक जो उम्मीदवार बड़ा अच्छा था, वह यदि चुनाव-नेता चाहता है, तो दूसरे दिन सुबह से ही बड़ा ख़राब आदमी बन जाता है!

कल तक जिसकी प्रशंसा के पुल बाँधे जाते थे, आज उसकी बुराइयों के खाते खोले जा रहे हैं। कल शाम तक जिसने समस्त आयु अच्छे ही अच्छे काम किए, आज उसने अपनी उम्र में एक भी शुभ कार्य नहीं किया। अथवा कल तक जो बड़ा ख़राब आदमी था, आज वह भलाई की मूर्ति हो जाता है। ये सब कार्य ज़बानी प्रचार-कार्य अथवा नोटिसों और पर्चों के द्वारा होते हैं। और आनन्द यह है कि गन्दी बातों से श्रीमान् नेता जी महाराज अलग रहते हैं। कल तक एक आदमी जिसकी

प्रशंसा कर रहा था, वह चुप कर दिया जाता है और एक दूसरा आदमी खड़ा कर दिया जाता है, जो उस आदमी की बुराइयों का बखान करना आरम्भ कर देता है। जनता बेचारी कल तक जिसकी तारीफ़ें सुन रही थी, आज उसकी बुराइयाँ सुन कर अपनी बुद्धि खो बैठती है। चुनाव की भाषा में इसका नाम हवा बाँधना और हवा बिगाड़ना है! तारीफ़ें करके हवा बाँधना, बुराइयाँ करके हवा बिगाड़ना, यही इसका अर्थ है। जनता अधिकतर भेड़ियाधसान की प्रकृति की होती है। दस आदमी जिसे अच्छा कहने लगें उसे वह भी अच्छा समझने पर मजबूर होती है, और बुरा कहते हैं तो बुरा। इस कार्य के लिए ऐसे-ऐसे गन्दे और अश्लील नोटिस निकाले जाते हैं कि देखकर घृणा होती है। और तारीफ़ यह है कि चुनाव-नेता महोदय इस गन्दगी के मध्य में उसी प्रकार रहते हैं, जिस प्रकार जल में कमल! क्या मजाल जो उनकी ओर कोई उँगली उठा दे। यदि कोई कहता भी है कि अमुक नोटिस बड़ा गन्दा निकला तो नेता महाशय मुँह बना कर कहते हैं—"वाक़ई बड़ा गन्दा निकला। क्या करें, अमुक व्यक्ति यह सब कर रहा है, हमारे समझाने से मानता नहीं।" चलिए, नेता महोदय तो दूध के धोए बन कर अलग होगए। हालाँकि होता सब उन्हीं के इशारे पर है।

वोट पड़ने के दिन भी इन नेताओं की कला देखने योग्य होती है। जिस व्यक्ति को मरे वर्ष भर हो चुका है, उसका वोट डलवा देना इनके बाएँ हाथ का खेल है। एक ही व्यक्ति से तीन-तीन, चार-चार बार वोट डलवा देना इनके लिए साधारण बात है। अपने ही किसी गुर्गे द्वारा विपक्षी के पक्ष में जाली वोट डलवा कर उसे पकड़वा देना और इस प्रकार विपक्षी को बदनाम कर देना अथवा चुनाव-भाषा में 'हवा बिगाड़ देना' इनकी कला का एक बहुत छोटा नमूना है। कहाँ तक कहूँ—इन लोगों की महिमा अपरम्पार है। यदि इनका खड़ा किया हुआ उम्मीदवार जीत गया तब तो उसका सारा श्रेय नेता साहब को मिलता है और जो हार गया तो कार्यकर्त्ताओं के मत्थे जाती है। अमुक ने अमुक कार्य नहीं किया, अमुक ने सुस्ती की, अमुक ने यह ग़लती की—इस प्रकार कह कर उस मामले को रफ़ा-दफ़ा कर दिया जाता है और नेता महाशय सर्वथा निर्दोष तथा निर्विकार सिद्ध हो जाते हैं। जीते हुए विपक्षी उम्मीदवार से नेता महाशय एकान्त में मिलकर कहते हैं—"भई, कुछ कारणों से मैं प्रकट में तुम्हारा विरोध करता रहा, पर भीतर से मैंने तुम्हारे लिए ही चेष्टा की।" इस प्रकार उसे भी उल्लू बना कर अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया जाता है। कोई हारे या कोई जीते, नेता महोदय की हर तरह चाँदी है। चित भी उन्हीं की और पट भी उन्हीं की। इन सब कार्यों में नेताओं की एक कौड़ी भी ख़र्च नहीं होती, उल्टे यदि वह चाहते हैं तो उनको और उनके अनुचरों को कुछ लाभ हो जाता है।

लोग समझते हैं कि जनता ने चुना; परन्तु दर-असल वे चुने हुए होते हैं नेता महोदय के। जनता बेचारी मुफ़्त में बेवक़ूफ़ बना कर छोड़ दी जाती है।

सम्पादक जी! कहाँ तक लिखूँ। इन नेताओं के हथकण्डे लिखने में एक पुस्तक तैयार हो सकती है।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबेजी)

पुतली

[रचयिता—श्री० गङ्गाचरण जी दीक्षित, एम० ए०]

स्फटिक मणि पर नीलम की गोली है कि छाया पड़ी उस पर तेरे दग्ध उर की।
कुन्द-कलियों का है मलिन्द रस चूस रहा, किंवा गोल बीच कालो गेंद कामसुर की॥
खञ्जन के कर बीच विषपूर्ण प्याली है कि छोड़ी हुई काली गोली हरिणी के उर की।
आँख की है पुतली कि झाड़ी बरुनी के बीच, शोभती रसीली छवि अतिशय पुहुप की॥

प्रदर की हुक्मी दवा

अडूसे का रस, गिलोय का रस और शहद, सबको एक-एक तोला मिला कर प्रति दिन सुबह और शाम सेवन करने से २१ दिन में बहुत पुराना तथा असाध्य प्रदर भी दूर हो जाता है।

दूसरी दवा

विधारा पाँच तोला, असगन्ध ५ तोला, पठानी-लोध ५ तोला, इन सबको कूट-पीस और कपड़छान कर चूर्ण बनावे और छः छः माशे गाय के दूध के साथ सात दिन तक सायं-प्रातः सेवन करे। इससे श्वेत-प्रदर नष्ट हो जाता है। ये औषधियाँ परीक्षित हैं।

—वृन्दा

* * *

दमा

अजवायन देशी १ तोला, ज़ीरा सफ़ेद १ तोला, काला नमक १ तोला, क़तीरा १ तोला, बबूल का ताज़ा छिलका १ तोला, अनार का छिलका २ तोला, मुलहठी ३ तोला, इन सब चीज़ों को कूट-कपड़छान करके पानी में खरल कर चना बराबर गोली बना कर सुखा ले। सुबह, शाम और दोपहर को दो-दो गोली खाने से दमा आराम हो जायगा।

* * *

बवासीर

सूखा जिमीकन्द ८ भाग, चीते की छाल ४ भाग, हरड़ ५ भाग, सोंठ ५ भाग, मिर्च पीपर २ भाग, गुड़ १४ भाग, इन सबों की चार-चार आने भर गोली बना कर व्यवहार में लावे। गोले पीलू के फलों के खाने से भी बवासीर दूर हो जाती है।

पेचिश

मड़ोर-फली १ तोला, बेल की गिरी २ तोला, राल १ तोला, इन्द्रजौ १ तोला, और ईसफ़गोल की भूसी १ तोला, सबको पीस तथा कपड़छान करके एक आना भर चूर्ण दही के साथ सेवन करने से पेचिश दूर हो जाती है।

पथ्य—दही, चावल और उसमें भुना हुआ ज़ीरा और काला नमक डाल कर खाना चाहिए।

* * *

अतिसार

बबूल की छाल का रस शहद में डाल कर पिलाने से ७ प्रकार के अतिसार दूर हो जाते हैं। कटीलका को शहद के साथ पिलाने अथवा तुलसी के पत्तों को काली मिर्च के साथ पीने से भी आराम होता है।

* * *

ख़ूनी बवासीर

चिरायता, लाल चन्दन, जवासा और नागरमोथा, हरेक को आधा-आधा तोला लेकर आध सेर पानी में औटावे। जब ३ छटाँक पानी रह जाय तो उतार कर शहद मिला कर पिलाने से ख़ूनी बवासीर दूर हो जाती है।

* * *

पेट-शूल

मैनफल, कुटकी, काँजी सबको पीस कर कुछ गर्म कर नाभी पर लेप करने से पेट का शूल आराम हो जाता है।

* * *

आँख उठना

आँख कैसी ही क्यों न उठी हो, देवीचन्दन का लेप लगाने से १ दिन में अच्छी हो जाती है।

—पार्वती

६,००० प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक चुकी हैं !!
तीसरी बार !
प्राणनाथ
तीसरा संस्करण !!
लेखक—
लम्बी दाढ़ी, नाक में दम, मार-मार कर हकीम, लतखोरी लाल, आदि-आदि अनेक पुस्तकों के रचयिता—हास्यरस के प्रधान लेखक
श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०
इस सुन्दर उपन्यास की उत्तमता का अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसकी ६,००० प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक चुकी हैं और नित्य माँगें चली आ रही हैं ! वह चीज़ है, जिसे पढ़कर आपको अपनी सामाजिक स्थिति पर घण्टों विचार भी करना होगा और सामाजिक सुधार के क्षेत्र में अपने को उतारने की शपथ खानी होगी । पहले संस्करण का मूल्य २॥) था, पर केवल प्रचार की दृष्टि से इसे घटा कर २॥) कर दिया गया है, छपाई-सफ़ाई दर्शनीय हुई है । पुस्तक सजिल्द है । आज ही एक प्रति मँगा लीजिए । स्थायी ग्राहकों से मूल्य केवल १॥।=)
व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

यदि आपको अपने बच्चे प्यारे हैं, यदि आप उन्हें रोग और मृत्यु से बचाना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को स्वयं पढ़िए और गृह देवियों को अवश्य पढ़ाइए, परमात्मा आपका मङ्गल करेंगे।

सुन्दर छपी हुई सचित्र Protecting Cover सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत-मात्र केवल २) रु०; 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों से १॥) मात्र !

[लेखिका—श्रीमती सुशीला देवी जी निगम, बी० ए०]

आज हमारे अभागे देश में शिशुओं की मृत्यु-संख्या अपनी चरम-सीमा तक पहुँच चुकी है। अन्य कारणों में माताओं की अनभिज्ञता, शिक्षा की कमी तथा शिशु-पालन-सम्बन्धी साहित्य का अभाव प्रमुख कारण हैं।

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय की गृहों एक मात्र मङ्गल-कामना से प्रेरित होकर सैकड़ों अङ्गरेज़ी, हिन्दी, बङ्गला, उर्दू, मराठी, गुजराती तथा फ्रेञ्च पुस्तकों को पढ़कर लिखी गई है, कैसी भी अनपढ़ माता एक बार इस पुस्तक को पढ़कर अपना उत्तरदायित्व समझ सकती है।

गर्भावस्था से लेकर ९-१० वर्ष के बालक-बालिकाओं की देख-भाल किस तरह करनी चाहिए, उन्हें बीमारियों से किस प्रकार बचाया जा सकता है, बिना कष्ट हुए दाँत किस प्रकार निकल सकते हैं, रोग होने पर क्या और किस प्रकार इलाज और शुश्रूषा करनी चाहिए, बालकों को कैसे वस्त्र पहनाने चाहिए, उन्हें कैसा, कितना और कब आहार देना चाहिए, दूध किस प्रकार पिलाना चाहिए आदि-आदि प्रत्येक आवश्यक बातों पर बहुत उत्तमता और सरल बोल-चाल की भाषा में प्रकाश डाला गया है।

'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

प्रकाशित हो गया ! प्रकाशित हो गया !!

हृदय में एक बार ही क्रान्ति उत्पन्न करने वाला मौलिक सामाजिक उपन्यास

[ले॰ श्री॰ यदुनन्दनप्रसाद जी श्रीवास्तव]

G. P. Srivastava, B. A., LL. B., *writes from Gonda.*

I happened to read your publication—Sri Jadunandan Prasad Srivastava's "APRADHI." Though a fiction, yet it is teeming with bitter realities. The author has cleverly depicted 'Human frailties' 'Social weaknesses' & 'Circumstantial effects' in their true colour with touches of psychological truths, which are of greater importance indeed.

सच जानिए, अपराधी बड़ा क्रान्तिकारी उपन्यास है। इसे पढ़कर आप एक बार टॉलस्टॉय के "रिज़रेक्शन" विक्टर ह्यूगो के "लॉ मिज़रेबुल" इबसन के "डॉल्स हाउस" गोस्ट और ब्रियो का "डैमेज़्ड गुड्स" या "मेटरनिटी" के आनन्द का अनुभव करेंगे। किसी अच्छे उपन्यास की उत्तमता पात्रों के चरित्र-चित्रण पर सर्वथा अवलम्बित होती है, उपन्यास नहीं,

यह सामाजिक कुरीतियों और अत्याचारों का जनाज़ा है !!

सच्चरित्र, ईश्वर-भक्त विधवा बालिका सरला का आदर्श-जीवन, उसकी पारलौकिक तल्लीनता, बाद को व्यभिचारी पुरुषों की कुदृष्टि, सरला का बलपूर्वक पतित किया जाना, अन्त को उसका वेश्या हो जाना, यह सब ऐसे दृश्य समुपस्थित किए गए हैं, जिन्हें पढ़कर आँखों से आँसुओं की धारा बह निकलती है। इधर सरला के वृद्ध चचा का षोडशी बालिका गिरिजा से विवाह कर नरकलोक की यात्रा करना और गिरिजा का स्वाभाविक पतन के गड्ढर में गिरना, कम करुणा-जनक दृश्य नहीं है। रमानाथ नामक एक समाज-सुधारक नवयुवक के प्रयत्न पढ़कर नवयुवकों तथा नवयुवतियों की छाती एक बार फूल उठेगी !! प्रत्येक उपन्यास-प्रेमी तथा समाज-सुधार के पक्षपाती को यह पुस्तक पढ़कर लाभ उठाना चाहिए। छपाई-सफ़ाई सुन्दर, समस्त कपड़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रु०; स्थायी तथा 'चाँद' के ग्राहकों से १॥।=); डाक-व्यय अलग पुस्तक पर रङ्गीन Protecting Cover भी चढ़ा है !

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

सामाजिक रूढ़ि की आवश्यकता है या नहीं ?

हिन्दू-शास्त्रों में रूढ़ि का महत्व शास्त्रों से भी अधिक माना गया है। "शास्त्राद्रूढ़िर्बलीयसी" अर्थात् शास्त्र की अपेक्षा परम्परागत व्यवहार अधिक बलवान होता है। इसी के समान एक और उक्ति है—"यद्यपि शास्त्र सुसिद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाकरणीयम् ।" अब विचारना यही है कि शास्त्र रूढ़ि से पृथक् होता है अथवा उस पर आश्रित होता है ?

शास्त्र प्रायः नियम, धार्मिक पुस्तक की आज्ञा एवं विज्ञान-विशेष के लिए प्रयुक्त होता है। शास्त्र वस्तुतः रूढ़ि-समूह का अवलोकन कर अनुपयुक्तों के त्याग और उपयुक्तों के ग्रहण के लिए विद्वानों का विचार-दर्शन अथवा आज्ञा है। उदाहरणार्थ यदि समाज में विवाह-विषय पर अन्यान्य प्रथाएँ प्रचलित हों तो शास्त्र उनके लिए एक नियमित प्रथा की आज्ञा देगा। निस्सन्देह बहुत सी रूढ़ियाँ ऐसी भी हैं, जिनका उद्गम केवल शास्त्रों से ही हुआ है, पर वे रूढ़ियाँ एक प्रकार से शास्त्र द्वारा नियमित प्रथाओं में से ही हैं।

इन नियमित प्रथाओं को प्रचलित करने वाले शास्त्र, साधारण व्यक्ति-विशेष द्वारा निर्मित नहीं होते। आर्य-जाति ने इन नियमों के लिए श्रुति एवं स्मृतियों को ही स्वतः प्रमाण माना है।

स्मृतियों में यद्यपि विचारशील व्यक्तियों को एकाध स्थानों पर स्वार्थपूर्ण अथवा कठिन नियम बुरी तरह खटकते हैं, तथापि इससे स्मृतियों के महत्व में न्यूनता नहीं आ सकती। ये नियम, सम्भव है और विद्वानों ने सिद्ध भी कर दिया हो, प्राचीन ऋषियों के नहीं, अपितु अर्वाचीन सङ्कुचित विचार के विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्रक्षिप्त किए गए हैं। इन नियमों का समाज पर प्रभाव अवश्य भयङ्कर हुआ, पर इसका दोष स्मृतिकारों को नहीं, यह दोष उन विचारहीन व्यक्तियों का है, जो अपने स्वतन्त्र विचारों को सर्वथा तिलाञ्जलि दे, उनके अन्ध-अनुयायी बन बैठे।

शास्त्र प्राचीन विद्वानों का अनुभव है। वह अमान्य नहीं, परन्तु इसका यह भी तात्पर्य नहीं है कि हम अपना स्वतन्त्र अनुभव करें ही नहीं। उपर्युक्त विवेचना से यह सिद्ध हो गया कि शास्त्र रूढ़ि पर आश्रित होकर भी स्वतन्त्र हैं। यह स्वतन्त्र-सत्ता मेरी समझ में रूढ़ि से निर्बल नहीं हो सकती। 'शास्त्राद्रूढ़िर्बलीयसी' आदि वचनों के कहने वाले रूढ़ि के ग़ुलाम थे। यह विचार उन लोगों का है जो मानव-जाति में नवीनता को देखना नहीं चाहते अथवा उसके सड़े-गले पत्तों को भी फेंकना नहीं चाहते। सभी रूढ़ियों के लिए यह नियम लागू नहीं हो सकता। प्रत्येक रूढ़ि विचारशील पूर्व-पुरुषों द्वारा प्रचलित नहीं की गई है। हम सदा सुनते हैं कि "साहब, यह स्त्रियों का शास्त्र है।" दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यही होता है—"हमारी समझ में न आने पर भी स्त्रियों ने जैसी प्रथा चला दी है, वह उनके द्वारा प्रचलित होती ही रहेगी।" ऐसे ही अन्य अनेक उदाहरणों से यह सिद्ध होता

है कि अपने घरों में विनाशकारी प्रथा के चलने और उसका परिणाम भलीभाँति समझने पर भी हम उसको रोकने का उपाय नहीं करते और अन्त में वही शास्त्रीय आज्ञा अथवा पूर्व-पुरुषों द्वारा सम्मानित सनातन-धर्म बन जाता है। यदि देखा जाय तो हमारे समाज की अधिक रूढ़ियों का उद्गम-स्थान मूर्खता में मिलेगा। अतः ऐसी रूढ़ियाँ शास्त्र की आज्ञा अथवा विचारशील विद्वानों द्वारा बनाए हुए नवीन नियमों की अपेक्षा अधिक बलवान् नहीं हो सकतीं।

सामाजिक सङ्गठन रूढ़ि पर आश्रित अवश्य है, पर विभिन्न प्रकार के सङ्गठनों के लिए विभिन्न रूढ़ियों की रचना होती है, अतः रूढ़ि के स्थान में 'दृढ़ नियमों' का मानना हमारे लिए विशेष हितकर होगा। यह कोई नहीं कह सकता कि मनुष्य-समाज का सङ्गठन सदा इसी रूप में रहेगा, जिसमें वह वर्तमान है। मनुष्य प्रत्येक कार्य में नवीनता का आविर्भाव करता है। प्रणाली में परिवर्तन होता ही रहता है। आज वही शिक्षा नहीं है, जो प्राचीन काल में थी। अतः यह सर्वथा सिद्ध है कि सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता के साथ-साथ रूढ़ियों में भी परिवर्तन अवश्य ही होगा।

पर प्राचीनता के प्रेमी इसको सुनते ही आह भरते हैं। हम उनको भी आश्वासन देते हैं कि प्रत्येक रूढ़ि का लोप हो नहीं सकता। जो सिद्धान्त सत्य पर आश्रित हैं वे सदा अक्षुण्ण रहेंगे। सत्य सिद्धान्तों में भी क्रान्तिकारक अवश्य एक बार परिवर्तन करते हैं, पर भटक कर अन्त में उनको भी उनका आश्रय लेना ही होता है। जो रूढ़ियाँ प्राकृतिक नियमों पर आश्रित हैं वे समाज में अवश्य रहनी चाहिए और रहेंगी। और जो मनुष्यों के विशेष-विशेष सङ्घ में स्थापित हो गई हैं, वे न रहनी चाहिए और न अन्त में रहेंगी। उनके हटने में जो विलम्ब हो रहा है, वह प्राकृतिक एवं समाज-हितकारक है। नीति का वचन है—"असमीक्ष्य परं स्थानं न पूर्वमायतनं त्यजेत्।" अर्थात् दूसरे स्थान का प्रबन्ध किए बिना पहले स्थान को न छोड़े। अतः जब तक प्राचीन के स्थान में उत्तम नवीन उत्पन्न न हो तब तक बीच में लटकने की अपेक्षा प्राचीन को अवश्य सुरक्षित रखना चाहिए। अतः निष्कर्ष यही है कि जो रूढ़ियाँ स्वास्थ्यप्रद तथा प्राकृतिक हों, वे समाज में अवश्य रक्खी जायँ और जो अनावश्यक हों, उनका तुरन्त अन्त होना चाहिए।

—विद्याधर शास्त्री, बी० ए०

* * *

जर्मन स्त्रियाँ

फ्रान्स में माता-पिता अपनी पुत्रियों को अच्छी तरह ब्याह कर सुखी गृहस्थ बना देने की बड़ी चिन्ता रखते हैं। पुत्री पैदा होते ही वह उसके दहेज के लिए रुपया जमा करने लग जाते हैं। और जब लड़की विवाह के योग्य हुई तो उसको अच्छा-सा वर ढूँढ़ कर विवाह देते हैं। वर इत्यादि ढूँढ़ने में वह बहुत होशियारी करते हैं और अपनी पुत्रियों को सुखी बनाने के लिए बड़ा त्याग भी। फ़्रान्सीसी माता-पिता कोई बात भाग्य पर नहीं छोड़ते। इङ्गलैण्ड में माता-पिता ऐसी परवा नहीं करते। वे यह उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य भाग्य पर छोड़ कर बैठ जाते हैं। लड़कियाँ अपने आप ही पति खोजती-फिरती हैं। अगर कोई पति मिल गया तो अच्छा ही है और यदि न मिला तो न सही; परन्तु माता-पिता को इस विषय में अधिक चिन्ता नहीं होती। अगर किसी अभागिनी लड़की में इतनी होशियारी या योग्यता नहीं है कि वह अपना पति ढूँढ़ ले, तो बस उस बेचारी का जीवन ही नष्ट हो जाता है। उसे रोटियों के लाले पड़ जाते हैं और कमाने की फ़िक्र में वह इधर से उधर काम ढूँढ़ती फिरती है। बेचारी को संसार का कोई अनुभव तो होता नहीं, इसलिए हर जगह ठोकरें खाती है और बड़े दुख सहती है।

जर्मनी में स्त्रियों की न फ़्रान्स की सी दशा है और न इङ्गलैण्ड की सी—मध्यवर्ती समझिए। पुराने समय से जर्मन लोग अपनी स्त्रियों की अधिक परवा करते आए हैं। पुराने समय ही से जर्मनी में ऐसे आश्रम चले आते हैं, जिनमें लोगों ने अपनी जागीरें लगा दी हैं और जहाँ अनाथ स्त्रियों तथा बच्चों इत्यादि का पालन-पोषण होता है। कुछ आश्रम ऐसे हैं जो केवल विशेष परिवारों के स्त्री-बच्चों के लिए ही हैं। क्योंकि उन्हीं के पुरुखों ने उन आश्रमों को, केवल इस विचार से स्थापित किया था कि उनके परिवार की लड़कियों में से यदि

कोई विवाह न करेगी या विधवा हो जायगी तो उनके और उनके बाल-बच्चों के भरण-पोषण का काम इन आश्रमों से चलता रहेगा। इन आश्रमों में बड़ी-बड़ी जागीरें लगी हुई हैं और इनमें रहने वाली स्त्रियों को कोई बुरी नज़र से नहीं देखता, और न उन स्त्रियों को इन आश्रमों में रहने में कोई सङ्कोच या लज्जा ही होती है। इन आश्रमों से बड़ा काम निकलता है और स्त्रियों की बहुत कठिनाइयाँ, तथा भूखी और बेरोज़गार फिरने से जिन-जिन दुष्कर्मों की सम्भावना है, वह सब से बच जाती हैं।

जर्मनी के लोगों का यह विश्वास है कि स्त्रियों का कार्य घर की देख-भाल और सँभाल करना ही है। जर्मन चाहते हैं कि उनकी स्त्रियाँ आदर्श गृहिणी बनें और इसी लिए उन्होंने स्त्रियों की शिक्षा के लिए बहुत सी संस्थाएँ खोल रक्खी हैं। जर्मन दूरदर्शी होते हैं और चूँकि उन्हें मालूम है कि उनके देश में ऐसी स्त्रियों की काफ़ी संख्या है और आगे भी रहेगी, जिनके घर है न बार और कोई मनुष्य भी हाथ बँटाने वाला नहीं; इसलिए जर्मन लोग अपनी स्त्रियों को इस योग्य भी बना देना चाहते हैं कि समय पड़ने पर उन्हें किसी का मुँह ताकना न पड़े और अपनी रोटी वे आप कमा सकें। महारानी फ़्रेडरिक ने इसी कारण डॉक्टर ए० लैते की इसी उद्देश्य से स्थापित की हुई लैते-वेरीन संस्था की शुरू से ही ख़ूब सहायता की। इस संस्था में स्त्रियों को गृह-कार्य तथा अपने गुज़ारे के लिए और कुछ उद्योग-धन्धों की शिक्षा दी जाती है। सीना-पिरोना, कपड़ा धोना और खाना पकाना इत्यादि से लेकर, दफ़्तरों में काम करने तक की सारी शिक्षा यहाँ दी जाती है, जिससे कि जो गृहिणी बन कर रहें, वह गृह-कार्यों में दक्ष हों और जिन्हें अपनी रोटी स्वयं कमानी पड़े, वह अच्छी तरह कमा भी सकें।

जर्मन स्त्रियाँ अब पहले से बहुत अधिक स्वतन्त्र और स्वावलम्बिनी हो गई हैं। जो विवाह नहीं करती हैं, वे कुँवारे मनुष्यों की भाँति रोज़गार-धन्धे करके अपना निर्वाह करती हैं और क्लबों में जाती हैं। अब ऐसे बहुत से क्लब जर्मनी के शहरों में बन गए हैं। कहाँ तो पुराने मनुष्यों के बनवाए हुए, स्त्रियों के पालन-पोषण के लिए वे ही आश्रम थे और कहाँ अब आज-कल की स्त्रियों के, अपनी रक्षा के लिए स्वयं बनाए हुए क्लब। आकाश-पाताल का अन्तर हो गया है। अब जर्मनी की स्त्रियाँ केवल अबला ही नहीं रहीं, वे अपने पैरों पर खड़ी होकर अपनी रक्षा आप कर सकती हैं। पहले मनुष्य उनकी मदद करते थे, अब वह अपनी मदद अपने आप करने का प्रयत्न करती हैं।

जर्मनी में रहने वाले यहूदियों में अब भी यही प्रथा चली आती है कि माता-पिता अपनी लड़कियों के लिए वर खोज कर विवाह ठहरा लेते हैं; परन्तु अब पढ़ी-लिखी लड़कियाँ इसका विरोध करने लगी हैं और अपना वर स्वयम् चुनने पर ही ज़ोर देती हैं। इतना ही नहीं, वर चुनने में वह अब अपने माता-पिता की तरह इस बात की अधिक चिन्ता नहीं करतीं कि वर मालदार है या नहीं। ऐसी यहूदी लड़कियाँ, जो ज़्यादा धर्म इत्यादि के झगड़ों में नहीं पड़तीं, धड़ाधड़ ईसाइयों से भी विवाह करने लगी हैं। ईसाइयों में लड़कियाँ अपना विवाह स्वयं ही वर ढूँढ़ कर करती हैं।

जर्मनी में स्त्रियों की संख्या मनुष्यों से बहुत अधिक है, इस कारण बहुत सी ग़रीब और बदसूरत लड़कियाँ अविवाहिता रह जाती हैं। कुछ पढ़ी-लिखी औरतों ने आन्दोलन उठाया है कि हर स्त्री को सन्तानोत्पत्ति का अधिकार है; परन्तु इसका इलाज इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि एक आदमी कई स्त्रियों से विवाह करे। परन्तु यह बात स्त्रियों को पसन्द नहीं है और वह कहती हैं कि मनुष्य अपनी स्वार्थपरता के कारण ऐसी दलीलें पेश करते हैं। ऐसी अवस्था के जो परिणाम होते हैं, वे जर्मनी में भी हैं। नाजायज़ औलाद होती हैं। वहाँ की दयालु और सुशिक्षित सुधारक स्त्रियों ने इन अभागिनी माताओं की रक्षा करने का बीड़ा उठाया है। जर्मनी की लड़कियाँ अब पुरानी सीधी-सादी छोकरियाँ नहीं रहीं। वे उपन्यास पढ़ती हैं, थियेटर और सिनेमाओं में जाती हैं और नई-नई रीति और नीति चलाने का प्रयत्न करती हैं। कुछ कहती हैं कि विवाह की प्रथा ही बहुत बुरी है। इसका समूल नाश कर देना चाहिए। बिना विवाह ही के, हम क्यों न जिससे जब तक चाहें, सम्बन्ध रक्खें? एक लड़की ने चाची को लिख भेजा कि—"प्रिय चाची! तुम यह जान कर बहुत प्रसन्न होगी कि मैं अपने प्रियतम से शीघ्र

ही सम्बन्ध कर लेने वाली हूँ। हम दोनों मिल कर तब तक आनन्द से रहेंगे, जब तक कि हममें से एक दूसरे से असन्तुष्ट न हो जाय। मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे इस मेरे आनन्दपूर्ण कार्य पर बधाई दें।" एक अन्य सुशिक्षिता रमणी का कहना है कि मेरे पास एक लड़की ने अपनी मौलिक कविताओं की एक किताब भेजी, जो इतनी वाहियात थी कि प्रकाशित होने के बिलकुल अयोग्य थी। फिर भी मैं उस लड़की को ख़ूब अच्छी तरह जानती हूँ और कह सकती हूँ कि वह बिलकुल भोली-भाली है और कुछ समझती-बूझती नहीं, केवल सुधार के जोश में मतवाली होकर अण्ड-बण्ड बे समझे-बूझे बकती है। कुछ वाहियात तसवीरें देखती-फिरती है। एक ने तो एक सार्वजनिक व्याख्यान में प्लेटो के सिद्धान्तों की दुहाई दी और यहाँ तक कह डाला कि लड़कियों को कपड़े उतार कर कसरत करना चाहिए। इनमें कुछ लड़कियाँ पुरुष-जाति ही से घृणा करती हैं और कुछ स्त्री-जाति के भले के लिए यह उपदेश देती फिरती हैं कि जिससे जी चाहे प्रेम करो; परन्तु कोई पुरुष का अधिकार अपने ऊपर क़ायम रखने को राज़ी नहीं हैं। जो विदुषियाँ जर्मनी में स्त्री-जाति को उठाने का कार्य कर रही हैं, वह इन सब बातों का कारण पुरुष का स्त्रियों पर बहुत दिनों का ज़ुल्म बतलाती हैं। उनका विचार है कि पुरुषों ने स्त्रियों को जो बुरी तरह दबा रक्खा था, उसी के विरुद्ध स्त्रियाँ क्रान्तिकारी आन्दोलन कर रही हैं। उनकी ये अण्ड-बण्ड बातें कूड़ा-करकट हैं और कुछ दिनों में आप से आप ही बन्द हो जायँगी। ये देवियाँ इन बातों को बहुत बुरा और स्त्री-जाति की उन्नति में बाधक तथा हानिकारक समझती हैं।

जर्मन गृहिणियाँ संसार की आदर्श गृहिणियों में से हैं। बड़ी मिहनती, सब काम-काज अपने हाथ से करने वाली। बच्चों का पालन-पोषण और देख-रेख सब स्वयं ही करती हैं। नौकरों के भरोसे काम छोड़ कर नहीं बैठी रहतीं, बल्कि नौकर बहुत कम रखती हैं, और यदि एक आध रख भी लिया, तो केवल अपने काम में हाथ बटाने के लिए रख लेती हैं; खाना या तो स्वयम् बनाती हैं या यदि नौकर से बनवाती हैं तो अपने सामने बनवाती हैं। इस बात की बहुत चिन्ता रखती हैं कि घर के बच्चों और पति इत्यादि किसी को कोई ख़राब पकी हुई चीज़ न पहुँच जाय। खाना बनाने में भी ऐसी चतुरता दिखाती हैं कि कभी कोई चीज़ नहीं बिगड़ती और न व्यर्थ जाती है। उन्हें कभी विश्वास ही नहीं होता कि नौकर बिना उनकी देख-भाल के अच्छा खाना बना सकता है। वे सीने-पिरोने और बिनने के काम में भी बड़ी दक्ष होती हैं और हर वस्तु को घर में सँभाल कर रखती हैं। मेज़, कुर्सियाँ, अलमारियाँ सब ऐसी सुन्दरता से सजाती हैं कि देख कर अचम्भा होता है। अगर कुछ मिनट के लिए भी बिनना बन्द करना होगा तो भी बहुत सँभाल कर और कपड़े को तह करके सामान बिनने की टोकरी में उसे रक्खेंगी। कोई चीज़ इधर-उधर घर में पड़ी नहीं मिलेगी। जो किताब पढ़ रही होंगी, वही बाहर होगी और सब अलमारी में बन्द रहेंगी। तमाम घर के रूमाल, पर्दे और कपड़े भी वे अपने ही हाथों धोती हैं। सप्ताह में एक बार सारे कपड़े धो डालती हैं और उस रोज़ अधिक से अधिक एक मज़दूरनी को मदद के लिए रख लेती हैं। कपड़े इतने साफ़ धोती हैं कि दस दफ़े नए पानी से बिला किसी कपड़े को धोए उन्हें चैन ही नहीं पड़ता। उनके धोए हुए स्वच्छ पर्दों को दीवारों पर लटकते हुए और रूमालों को मेज़ पर पड़े हुए देख कर आँखों में चकाचौंध हो जाती है। बाज़ार से यदि अधिक सामान ख़रीदना हो तो नौकर पर वे कभी विश्वास न करके स्वयम् ख़रीदने जाती हैं। तात्पर्य यह कि हर समय कुछ न कुछ करती ही रहती हैं, और न केवल घर का काम बहुत थोड़े ख़र्च में चला कर अपने पति का रुपया बचाती हैं, बल्कि घर को ऐसा सुन्दर और रमणीक बनाए रखती हैं कि रसोई-घर में चम्मच तक बड़े-बड़े सुन्दर लाल-पीले फ़ीतों में बाँध कर, लटका कर रखती हैं। रसोई-घर के काम में चम्मचों की बार-बार आवश्यकता पड़ती ही है। परन्तु फिर भी वह ऐसी सफ़ाई से काम करती हैं कि कोई फ़ीता मैला या किसी पर दाग़ आपको ढूँढ़ने पर न मिलेगा।

जर्मनी के लोग बहुत तड़के उठ कर काम-काज में लग जाते हैं, इसलिए गृहिणियों को भी बहुत सवेरे ही चाय-पानी तैयार करना पड़ता है, परन्तु वह सेवा में ऐसी तत्पर रहती हैं कि कभी उनके पति बिला चाय-पानी के अपने काम पर नहीं जाने पाते। जर्मन स्त्रियों

में पति-सेवा का आदर्श बहुत दिनों से चला आया है और उनके देश के बड़े-बड़े मनुष्य, गेटे आदि सदा उनको यही उपदेश करते आए हैं। वे सेवा में ही अपना मोक्ष समझती हैं और बड़ी लगन से गृहस्थी का काम चलाती हैं। धन्य हैं वे घर, जिनमें ऐसी गृहिणियाँ हों। वास्तव में ये ही गृह-लक्ष्मियाँ कहलाने योग्य हैं। जर्मन माताएँ मिहनती और दक्ष हैं, तभी तो उन्होंने ऐसे पुत्र पैदा करके जर्मन जाति को ऐसा दक्ष बना दिया जिन्होंने संसार के कान खड़े कर दिए हैं। माताएँ जो चाहें, कर सकती हैं। वह जातियों के अधःपतन और उत्थान की जड़ हैं। उन्हीं के हाथ में देश के उत्थान की कुञ्जी है।

—(प्रोफ़ेसर) चन्द्रभाल जौहरी, बी० ए०

* * *

पूरब और पश्चिम

यूरोप के नौजवानों से जब हम अपने यहाँ के नवयुवकों को मिलाते हैं, तो उनमें और इनमें बड़ा अन्तर देखने में आता है। यूरोप में कोई ऐसी बात नहीं है, जो आगे बढ़ने से उन्हें रोक सके, बल्कि हर एक बात सामाजिक, मज़हबी तथा घरेलू सब इस ढब से रक्खी गई है कि उनको अपनी तरक़्क़ी करने में बाधा डालना तो दूर रहा, बल्कि हर तरह का आराम पहुँचाती है। इतनी सुविधाएँ उनको दी जाती हैं कि ऐसी हालत में जो उन्होंने कुछ किया तो उसकी कोई तारीफ़ नहीं, न करने की निन्दा अलबत्ता है। मुहल्ले-मुहल्ले सस्ते से सस्ता स्कूल तथा मिश्नरी हैं, पाँच-सात वर्ष हुए कि माँ-बाप ने बिलकुल उनकी मोह और ममता छोड़, बोर्डिङ्ग-हॉउस के सुपुर्द कर दिया। हमारे यहाँ का बारह और चौबीस वर्ष का ब्रह्मचर्य केवल क़िस्से-कहानियों की भाँति भले ही सुना कीजिए, किन्तु कर्त्तव्यता में वास्तविक ब्रह्मचर्य वहीं देखा जाता है। जब तक किसी विषय के पूर्ण विद्वान् न हो जायँगे, विद्याभ्यास की ओर से विमुख न होंगे और न तब तक गृहस्थाश्रम के कामों में प्रवृत्त होंगे। समाज तथा मज़हब की पाबन्दी यहाँ तक कम है कि एक मोची का लड़का भी पादरी हो सकता है और पादरी के कुल में उत्पन्न व्यक्ति भी बढ़ई, लोहार या मोची तक का काम करने में शर्म न मानेगा। वे पृथ्वी के किसी हिस्से में जहाँ चाहें, वहाँ जा सकते हैं, न उनके मज़हब में किसी तरह का फ़र्क़ आएगा, न जात-पाँत बिगड़ेगी। बाल-विवाह की कौन कहे, पूरी जवानी पर पहुँच कर भी ज़बरदस्ती ब्याह देने में माँ-बाप का कुछ भी अख़्तियार नहीं, किसी तरह की क़ैद नहीं। जिस किसी को गृहस्थी करने की इच्छा हो, ब्याह कर बन्धन में पड़े, नहीं तो जन्मभर स्वच्छन्द रहे। हमारे यहाँ सनकादिक तथा भीष्म सरीखे दो-एक हुए, जिनके आबाल ब्रह्मचर्य का गुन अब तक हम गा रहे हैं। यहाँ तक उनकी इज़्ज़त करते हैं कि नित्य के तर्पण तक में उन्हें भरती कर रक्खा है। वहाँ ऐसे-ऐसे हज़ारों निकलेंगे जो दारा-परिग्रह से विमुख रह, ऐसे-ऐसे अद्भुत काम अपने देश तथा जाति की भलाई के लिए कर गए और करते जाते हैं कि हमारे देश में होते तो अवश्य देवांश या अवतार माने जाते। अस्तु—

अब दूसरी ओर चलिए। सबसे पहले हमारे यहाँ बच्चा उत्पन्न होने के लिए घर का सबसे निकृष्ट और गन्दा स्थान चुन लिया जाता है, जहाँ न कभी सूर्य का दर्शन हो सकता है, न उत्तम वायु ही मिल सकती है, जिसके कारण सौ में सत्तर-अस्सी फ़ीसदी बच्चे काल के कलेवर में ग्रसित होते हैं, मरते-खपते किसी तरह बचे भी तो साल-छः महीना घर के बाहर ही नहीं निकल पाते, सुन्दर वायु सेवन को कौन कहे? इसी तरह पाँच-छः वर्ष तक तो कुछ बात ही नहीं है, जोग-टोना के डर से तो कहीं आ-जा ही नहीं सकते। प्रायः सम्प्रदाय के अनुसार पाँचवें वर्ष मुण्डन होने के बाद, जब झालर न रहे तब, लड़का इस लायक़ समझा जाता है कि अब बाहर निकलने-पैठने में जोग-टोना का भय जाता रहा। इसके पहले उसे निरा "नारीकवच" होकर रहना पड़ता है। अनपढ़ी माँ और मूर्ख स्त्रियों के बीच रह कर ऐसी-ऐसी बोल-चाल और ऐसी-ऐसी आदतें सीखा करता है कि उसकी प्रशंसा ही नहीं करते बनता। नजर, जोग, टोना और झाड़-फूँक का रोग हिन्दुस्तान में जैसे सौ वर्ष पहले था वैसे ही अब भी मौजूद है, और इस देश के हर एक कोने में व्याप्त है। हमारे एक मित्र हैं, जो सुशिक्षित और अच्छे वकील हैं; उनकी जाति में यह प्रथा है कि पुत्र उत्पन्न होने पर उसको भूत-प्रेतादि बाहरी

यन्त्रणाओं से बचाने तथा चिरञ्जीवी होने के लिए गरम लोहे से माथे में दाग़ देते हैं। कुल-प्रथानुसार उनका नवजात शिशु माथे में दाग़ दिया गया। छः महीने बाद जब वह बच्चा अपने ननिहाल गया, तो उन्होंने भी अपने कुल-प्रथानुसार और प्रेम-वशीभूत होकर उसको दाग़ना उचित समझा। पर चूँकि वह बच्चा माथे पर पहले ही से दाग़ा जा चुका था, ठीक जगह न पाई गई। इसलिए उसके पीछे की गर्दन लोहे से दाग़ दी गई, जिसके कारण उसकी आँखें बैठ गईं। बहुत दवा किए जाने पर अब उसकी आँख में कुछ-कुछ रोशनी आ चली है! स्मरण रहे कि इस बच्चे के नाना साहब कोई मामूली आदमी नहीं हैं, ख़ाली एक नामी वकील ही नहीं, वरन् लेजिस-लेटिव एसेम्बली के एक प्रधान मेम्बर हैं। अस्तु—

इसके उपरान्त स्कूल में भेजने और तालीम देने की फ़िक्र माँ-बाप को पीछे होती है, ब्याह की पहले। दूसरे 'ज्वाइण्ट फ़ैमिली' कुल कुटुम्ब का एक ही साथ में रहना ऐसी भारी विपत्ति है, जिसे हम बाल-विवाह से किसी अंश में कम न कहेंगे। यह और भी हमारे नौजवानों को उभड़ने नहीं देती। जिस बेचारे ने बहुत-कुछ ज़ोर मार कर अपने घराने की बात और इज़्ज़त बना रक्खा, उसने मानों बड़ा काम किया; घर का दीपक और सपूत कहलाया। हिन्दुस्तान और विलायत में सपूती की परिभाषा ही बिलकुल भिन्न है। विलायत में जिसने केवल अपना पेट पाल लिया अथवा अपने कुल या घराने की प्रतिष्ठा बना रक्खी, वह एक सामान्य मनुष्य कहलाएगा, सपूती के दफ़्तर में उसका नाम तभी दर्ज किया जायगा जब वह अपने देश या जाति की भलाई का कुछ काम कर चुका हो। इसके लिए शुरू से ही तैयारी की जाती है और हर तरह से इस काम के लिए मौक़ा दिया जाता है। हम पहले ही लिख आए हैं कि माँ-बाप पहले ब्याह की फ़िक्र कर पीछे लड़कों को स्कूल भेजते हैं। स्कूल या कॉलेज से निकलते ही पूरा सामान गृहस्थी का मौजूद रहता है। सिवा इसके पग-पग में धर्मच्युति, जाति-पाँति का बन्धन, उनके नए उत्साह और नए हौसलों पर पुराने लोगों की तानाज़नी और विरोध, लड़की-लड़के, माँ-बाप और स्त्री के भरण-पोषण की फ़िक्र, सपरिवार मिल कर रहने की झञ्झट तथा पुराने क़ायदों की पाबन्दी आदि का सामना करना पड़ता है। इसमें ज़रा सी स्वच्छन्दता और आज़ादगी को दख़ल दिया गया कि बदनामी हुई। फिर समाज तथा भाई-बिरादरी में हेठी होते देर नहीं लगती! सब दुःख एक ओर और यह एक ओर कि पढ़े-लिखे, सुशिक्षित एवं अनेक विद्याओं में पारङ्गत, तत्वदर्शी होकर भी उन्हीं अपढ़, दुराग्रही, मूर्ख, पुराने खूसट बुड्ढों की राय की पाबन्दी होना और उनकी हाँ में हाँ मिलाना!! बहुत से सामाजिक बन्धन ऐसे हैं कि जिनकी बुनियाद न कहीं हिन्दू-धर्म के किसी ग्रन्थों में है, न उनसे किसी तरह के दीनी या दुनियावी फ़ायदे ही हैं। पर चलन चल पड़ी है, इसलिए लाचार होकर उन्हें मानना ही पड़ता है। वर्षों तक स्कूल और कॉलेजों में नित्य की हाज़िरी से बड़ी से बड़ी डिगरी हासिल कर, बुद्धिसागर बन बैठना एक ओर और घर की पुरखिन पुरानी बुढ़िया की अक़्ल एक ओर! तुमने अक़्ल का जौहर निकाल कर तालीम, हिकमत और सुशिक्षा का सर्वस्व मथ कर एक बात ईजाद करना चाहा, परन्तु सत्तर बरस की डोकरी को नापसन्द आया और वह नाक-भौं सिकोड़ कर "चल मुए" कह डाँट बैठी; तुम भीतर ही भीतर मसोस कर अपना-सा मुँह लिए चुप हो बैठ रहे। तुम क्या, तुम्हारे प्रोफ़ेसरों की भी कहाँ इतनी हिम्मत कि हमारी पुरखिन बुढ़ियाओं से वाद-विवाद में पार पा सकें। इतने-इतने विघ्नों की राशियों को चूर-चूर कर और अपने नवाभ्युत्थान में बाधा डालने वाले कठिनाई के दुरूह पहाड़ों को पार कर भी नई उमङ्ग और नए हौसले वाले हमारे नवयुवक आगे बढ़ते ही जाते हैं, यह कोई मामूली बात नहीं है। वह प्रोत्साहन, वे सुविधाएँ, जो अन्य देश के नवयुवकों को उनके देश वालों से मिलती हैं, उतनी कहीं इन बेचारे देश के होन-हार बच्चों को मिलें तो यह कहना कि "क्या संसार में इनके सामने कोई ठहर सकेगा" अतिशयोक्ति न समझा जायगा।

दूसरा रोड़ा जो हमारी तरक़्क़ी के रास्ते में अड़ा है, वह हमारी भारत-ललनाओं की दशा है। अपना तन-मन जला कर और सर्वस्व सुख से हाथ धोकर कुल की मर्याद निबाहना, हमारे यहाँ की आर्य-कुलकामिनी ही जानती हैं। यूरोप की सुशिक्षित रमणी सौ बार जन्म लेकर भी ऐसा नहीं कर सकती। गोल्डस्मिथ

अपने एक हास्य-प्रधान लेख में लिखते हैं—"मैंने एक बार क़ब्रिस्तान की सैर करता हुआ एक कोने में जाकर देखा तो एक नवयुवती सुन्दरी क़ब्र पर कोमल कर-कमलों से पङ्खा झल रही है। मेरे जी में इस समय अनेक भाव उदय हुए। मन में कहने लगा, सच्चा प्रेम इसी का नाम है। पास जा सलाम कर बोला—'निस्सन्देह आपका प्रेम संसार में एक उदाहरण होने के योग्य है। परलोक में इस मृतक की आत्मा को क्यों न सन्तोष हुआ होगा, जिसके लिए आप अपने कर-कमलों को इतना श्रम दे रही हैं।' वह बोली—'इसके सन्तोष से मुझे अब क्या मिलेगा, अब यह फिर से जी सकता ही नहीं, मुझे तो अपने सन्तोष की पड़ी है। समाज में प्रचलित रीति के अनुसार जब तक यह क़ब्र न सूखेगी, तब तक मैं अपने ऊपर से इस रण्डापे का बोझ नहीं टाल सकती। इसीलिए पङ्खा झल रही हूँ कि जितनी ही जल्द यह क़ब्र सूखेगी, उतनी ही जल्द मेरा सोहाग फिर से जगेगा।' मुझे इस सुन्दरी की बात सुन ताज्जुब हुआ। भीतर से तो इसकी व्यर्थ चेष्टा पर अत्यन्त क्रोध आया, पर ऊपर से हँस कर उससे विदा हो, मैंने घर की राह ली।"

यह क़िस्सा गोल्डस्मिथ की एक कल्पना-मात्र है। किन्तु इसमें भी कुछ सन्देह नहीं कि वहाँ स्त्रियों में स्वतन्त्रता इस दर्जे तक पहुँची हुई है कि गोल्डस्मिथ का इस ढङ्ग से स्वतन्त्रता का चित्र उतार कर हँसी उड़ाना बिलकुल ठीक है। भारतीय ललनाओं में कुलटाएँ भी इतना साहस करने का साहस न करेंगी, जितना कि वहाँ अच्छे-अच्छे घरानों की कुलाङ्गनाएँ करती हैं। हमारी ललनाएँ पढ़ी-लिखी नहीं होतीं, पर धैर्य और सहनशीलता में पृथ्वी भर की स्त्रियों के बीच एक उदाहरण हैं। पुरुषों में शुद्ध चरित्र और पवित्र आचरण ढूँढ़ा चाहो तो सौ में पच्चानवे अत्यन्त निकृष्ट और पतित पाए जायँगे, जिनके गुप्त या प्रकट चरित्र पर घृणा होती है। पर आर्य-ललनाओं में सौ में कदाचित् पाँच ही ऐसी होंगी, जिनके चरित्र को हम दूषित कहने का साहस कर सकेंगे* और पच्चानवे ऐसी होंगी जो सौन्दर्य में साक्षात् सची-सी होकर भी भलमनसाहत, सीधेपन और सरल-भाव में मानो भवानी की मूर्त्ति हैं, कुलीनता की नाक, लज्जा की खान, श्रद्धा, दया और शान्ति की मूर्त्ति, घर की सर्वस्व सम्पत्ति! हमारी गृहेश्वरी भारत की इस गिरी दशा में भी क़ौम का ज़ेवर और आर्य-जाति का शृङ्गार हैं। हम अपनी सती-सच्चरित्र अबलाओं का जितना अभिमान करें, सब थोड़ा है; विशेष कर ऐसी दशा में जब हम अपनी अशिक्षित कुलाङ्गनाओं का यूरोप की सुशिक्षित रमणी-जनों के साथ मिलान करते हैं। साहब बहादुर हज़ार रुपए भी लावें तो मेम साहबा के एक गौन में उड़ जाते देर न लगेगी। साहब एक-एक पैसे की किफ़ायत करते हैं, पर मेम साहब को अपने फ़ैशन की सजावट में सैकड़ों फूक देते आह नहीं आती। साहब एक कोने में पड़े भिनभिनाया करते हैं और मेम साहब अपनी चञ्चलता और चुलबुलेपन के कारण बँगले भर में कूदती-फिरती हैं! साहब मेम साहब की चरण-सेवा में हरदम हाज़िर रह कर भी ज़रा सा चूके कि उनकी ख़ातिर-शिकनी होते देर नहीं। वहीं हमारी स्त्रियाँ पर-कटे पखेरू की भाँति घर-रूपी पिंजरे में बन्द होकर, रूखा-सूखा भोजन और मोटा-झोटा कपड़ा मात्र से सतीत्व पालन करते हुए बैठी रहती हैं। बाहर बाबू साहब अपने सुख और आराम के लिए सैकड़ों रुपए बहा देते हैं, नई-नई कलियों के रस का स्वाद लेते हुए डोलते फिरते हैं! इधर हमारी गृहेश्वरियों को उनके पतित पति कभी धोखे से भी एक बार निहार दें तो इतने ही से वे निहाल हो जाती हैं! धन्य है इनके धैर्य और सहनशीलता को!! देश की दुर्गति के बहुत से कारणों में स्त्रियों की ओर से मर्दों का निरपेक्ष होना भी एक कारण है। मनु महाराज लिख गए हैं—

> यामयो यानि गेहानि शपन्त्य प्रति पूजिताः।
> तानि कृत्या हतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥

भली-भाँति आदर न पाकर, स्त्रियाँ जिस घर को शाप देती हैं, वह घर कृत्याहत के समान सब ओर से नष्ट हो जाता है। सच है, असंख्य घराने इन्हीं स्त्रियों की निरपेक्षा के कारण निर्वंशी हो गए। सैकड़ों यहाँ तक क्षतिग्रस्त हो, दैन्य और दरिद्रता के अखाड़े बन गए कि कौड़ी-कौड़ी को मुहताज होकर भूखों मर रहे हैं। निस्सन्देह

* हम लेखक महोदय को विश्वास दिलाना चाहते हैं कि औसत के हिसाब से सौ में एक भी ऐसी महिला न मिलेगी।

—स० 'चाँद'

ये कुलाङ्गना बधूजन लक्ष्मी का रूप हैं। अङ्गरेज़ जो इनकी ख़ातिरदारी करते हैं और हर तरह से इन्हें प्रसन्न रखना चाहते हैं, उसका फल प्रत्यक्ष देखा जाता है कि दिन-दिन उनकी श्रीवृद्धि चौगुनी होती जाती है। हम लोगों ने, जो सब तरह से इन्हें हीन कर दिया और दुर्गति में रक्खा, उसका फल भी प्रत्यक्ष है। आर्य-ललनाओं की दशा का परिवर्त्तन हम तरक़्क़ी की पहली सीढ़ी कहेंगे। कभी सम्भव नहीं कि समाज-संशोधन को छोड़ कर हम कभी आगे बढ़ सकें। स्त्रियाँ यदि निरङ्कु और स्वतन्त्र होना चाहें तो नदी की तरह कुल-रूपी कगारे को दम में ढहा कर दूर फेंक सकती हैं। यह उन्हीं की कृपा और भलमनसाहत है जो भीतर-भीतर अपना कुलाङ्गनापन निबाहती हुई हमें बाहर इस लायक़ बनाए हुए हैं कि हम आज भी जीवित समझे जाते हैं। भविष्य में कब तक जीवित रह सकेंगे, इसका उत्तर समय देगा।

—जनार्दन भट्ट, एम० ए०

* * *

शारदा बिल और मिथिला

यह देश के सौभाग्योदय का प्रकट लक्षण है कि हमारे सामने 'शारदा-बिल' जैसा उपयोगी बिल उपस्थित हुआ है। यह निश्चित ही है कि इसकी जननी आवश्यकता हुई है, किन्तु फिर भी समुन्नत इङ्गलैण्ड में जिस प्रकार अब तक प्रोटेस्टैण्टिज़्म (Protestantism) के आधिपत्य में भी निरन्तर पराभव की लहरों को सहते हुएभी, अब तक पुरातन मत कैथोलिज़्म (Catholism) निःशेष न हो पाया, उसी प्रकार इस अभागे देश में भी अत्यन्त सङ्कुचित मत के लोग भरपूर—भरपूर क्या, आधे से अधिक हैं। यों तो मताधिक्य के कारण ही कोई मत देश में आदृत होकर अपना सम्बन्ध जताता है, किन्तु यहाँ की राग-रागिणी ख़ासी बेसुरी है। सुधार के किसी भी विषय पर मिथ्यारूप सनातन-धर्म के परिपन्थी हो-हल्ला मचाए रहते हैं। तात्पर्य यह कि आज शारदा-बिल के विरोधी हैं तो इसी श्रेणी के लोग। भाग्य की बात है कि देश में अधिक सज्जन इसके प्रतिपक्षी नहीं दिखाई पड़ते, और कमिटी द्वारा संशुद्ध बिल को सहर्ष अपनाने में बहुतेरे अपनी भलाई ही देखते हैं।

किन्तु शोक की बात है कि सभ्य, उदार, दयाशील और विवेकी समाज जिस प्लेटफ़ॉर्म पर से दोनों हाथ उठा, इस बिल को अपनाने के लिए एकत्रित हुए हैं, वहाँ यह पवित्र, जानकी माता का जनन-देश और समाज नहीं दिखलाई पड़ता। यह बिल स्त्रियों के हित का है, तिस पर भी यहाँ लोग अपनी कन्याओं, जानकियों की भलाई के लिए प्रबन्ध न कर, बाहर से किए उद्योग के पथ को कण्टकाकीर्ण करने में अस्त-व्यस्त हैं! यह विवेक-सङ्कीर्णता के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है?

एसेम्बली के सदस्य रायसाहब हरविलास जी शारदा ने २६ मार्च को अपने बिल के सम्बन्ध में एक उपयुक्त तथा उपयोगी भाषण दिया। आप समस्त देशवासियों से इसके सम्बन्ध में सहानुभूति और अनुमति की आशा करते हैं। हमारी अन्तरात्मा भी कह रही है कि सफलता भावी मालूम पड़ती है, किन्तु लज्जा की बात है कि प्रगट या अप्रगट रूप से इस समाज के कुछ लोग विरोध के परिपन्थी दिखाई पड़ रहे हैं। अतएव जिन विषयों को लेकर वे अकड़ना चाहते हैं, मैं उन्हें आपके सम्मुख रखता हूँ। मैं भी इसी समाज का हूँ, और इसकी कठिनाइयों को जानता हूँ। अस्तु—

यह देश बहुत-कुछ पहले से ही बाल-विवाह करने-कराने का आदी रहा है। आप यह जान कर आश्चर्य करेंगे कि यहाँ शादी ९ वर्ष से कम उम्र तक की लड़की और भले घर में ८-९ वर्ष के बालकों की साधारणतः हो जाया करती थी। लेन-देन का बाज़ार गर्म होने के कारण, कुछ पिता-पितामह के अनुरोध के कारण और कुछ देखा-देखी के कारण ऐसा हुआ करता है; फलतः बधुओं में से लगभग ५० प्रतिशत कुसमय विधवा हो जाती हैं। बहुत नहीं, किन्तु कुछ-कुछ इस ओर स्वतः सुधार हुआ है और उपहास सह कर ही कोई ऐसा करता है। मैं शर्तिया कहूँगा कि पहले ७ से ९ वर्ष तक की कन्याओं का पाणिग्रहण हो जाया करता था, किन्तु वही बढ़ कर अब साधारणतः १० से १३ वर्ष तक पहुँच चुका है। पञ्जी की सङ्कीर्णता के कारण इससे आधों की शादी अक्सर हुआ करती है। अतः ऐसा कहना कि १३ वर्ष या इससे कम वय वाली कन्या का विवाह करना मिथिला में नई रीति चलाना है, एकदम

निर्मूल होगा। दूसरी बात धर्म की आड़ में आप यदि इसके विरोधी हैं, तो घर-घर १३-१४ वर्ष तक की कन्या बिवाही हुई हैं; उनके माता-पिता को धार्मिक दण्ड क्या आपने दिया ? साथ-साथ इस बढ़ती हुई बाल-विधवाओं की संख्या को रोकने, उनके विधर्मी होने के भय को मिटाने का इस बिल के अतिरिक्त दूसरा साधन ही क्या हो सकता है ? अतएव विरोध का कोई कारण ही नहीं है।

गत मैथिल-महासभा के अवसर पर मैंने देखा कि यदि विधवा-विवाह का प्रश्न उठता तो सभा तुरन्त भङ्ग हो जाती, विवाद के पश्चात् मार-पीट तक की नौबत आ जाती, पर एक सहृदय वक्ता के प्रभावशाली भाषण के पश्चात्, जिन्होंने बतलाया कि विधवाओं का समादर कर यत्नपूर्वक उन्हें रखना चाहिए, साथ ही विधवाओं की संख्या को रोकने का एकमात्र दृढ़ साधन यह है कि बाल-विवाह को रोक दिया जाय—मैंने देखा, सभा पर इस भाषण का उपयुक्त प्रभाव पड़ा और जनता ने विधवाओं की दयनीय दशा से सहानुभूति प्रगट की। जब स्थिति यह है—थोड़े से उद्योग और परिश्रम से जब हम बहुमत को अपने पक्ष में कर सकते हैं तो क्या कारण है कि बाल-विवाह के रोकने के यन्त्र 'शारदा-बिल' को आप गिरा देने के उद्योग में तत्पर हों ? मैं नहीं समझता कि मिथिला के महाराजाधिराज कभी भी इस बिल का विरोध करेंगे, जिसका एकमात्र तात्पर्य बालविवाह रोकना है। सच तो यह है कि इसके विरोध करने से यह सूचित होता है कि विरोधी लोग बाल-विवाह तथा बाल-विवाह-जनित विधवा-संख्या-वृद्धि के परम पृष्ठपोषक हैं।

शारदा-बिल का अभिप्राय है बालक-बालिकाओं के सहवास को रोकना। विरोधियों का कहना है कि यहाँ सहवास का अवसर तब तक नहीं दिया जाता, जब तक रजोदर्शन न हो ले, जिसकी पुष्टि का प्रमाण द्विरागमन (गौना) है, जो विवाह के दूसरे, तीसरे या पाँचवें साल किया जाता है। किन्तु मैं कहूँगा कि यह प्रवञ्चना मात्र है, बातों की ठगी है। अपनी अन्तरात्मा से पूछिए तो कितने विवाहित पुरुष इस रोक पर अमल करने वाले मिलेंगे। द्विरागमन के पूर्व ही कई बार वर का आना-जाना होता है; फल-स्वरूप बहुतों को मैके में सन्तान भी हो जाया करती है, जिसके अगणित प्रमाण हैं। अतएव ये दलीलें आधार-रहित हैं।

विरोध होना तो स्वाभाविक ही है, वह भी इस अभागे देश में और विशेषतः इस अभागे प्रान्त में, किन्तु हमें विरोध का कारण जानना चाहिए। अकारण विरोध कदापि नहीं करना चाहिए और इस प्रकार के विरोधियों से सहानुभूति भी न रखनी चाहिए। विरोध-सूचक कोई प्रस्ताव किसी ख़ास व्यक्ति के कहने से ही मान लेना भूल है। किसी के बहकाने में आना, सिफ़ारिश को सुनना, इस पवित्र विषय में अपनी ही अबोध कन्याओं के प्रति निष्ठुरता करना है। काउन्सिल के सदस्यों, भावशाली लोगों और अन्य समिति-सङ्गठनों को उचित है कि वे इस बिल के प्रति अपनी-अपनी सहानुभूति भेज कर अपना कर्त्तव्य पालन करें।

मैं फिर भी कहूँगा, और सभी सहृदय मैथिलों से कहूँगा कि जिस प्रकार गड़े हुए काँटे को निकालने में काँटों ही की सहायता आवश्यक होती है, काँटे को निकालने के समय क्षणिक पीड़ा तो अवश्य होती है, किन्तु चिरकाल के लिए वह पीड़ा चली जाती है, क्षणिक सुख के कारण हाथ मल-मल कर रोना नहीं पड़ता। बिल के विरोध करने से, इसे हानि पहुँचाने से हानि होगी तो उन अबोध बच्चियों की, जिनका उत्तरदायित्व आपके सिर है। जहाँ बालिकाएँ अपनी इच्छा से विवाह नहीं करतीं, किन्तु उनके माता-पिता चाहें तो उनको गर्त्त में फेंक दें, या सुख-समृद्धि सौभाग्य पर बिठा दें, सारांश यह कि इन समयानुकूल विषयों का विरोध करना पातक होगा। यदि उन बालिकाओं की भलाई सोचिए, और बिल की भलाई देखिए तो आपका हृदय एक बार ही इसका समर्थन करने लगेगा। इस समय धर्म के नाम पर सङ्कीर्ण विचारों के झोंके में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं। साथ-साथ विवाह-वय की वृद्धि, जो प्रायः हो ही चुकी है, होने से कोई शास्त्रोक्त धार्मिक पतन भी नहीं है; तब तो विरोध का कोई कारण ही नहीं दिखाई देता। हाँ, थोड़े से धनी जनों को अखरेगा अवश्य, क्योंकि उनके बड़े पुत्र या बड़ी कन्या का विवाह इस वयस में न हुआ था।

हमें आशा है कि सम्पूर्ण मैथिल-समाज एक स्वर से

हर्ष-आदर-सूचक इस बिल का स्वागत करेगा और अपनी कर्त्तव्य-परायणता दिखलाएगा ।*

—कालीकुमार दास, मैथिली-वाचस्पति

*   *   *

फ़ीजी द्वीप में कन्याओं की दुर्दशा

फ़ीजी द्वीप में लगभग सैंतालीस वर्ष हुए कि भारतवर्ष से एक भयङ्कर प्रथा के कारण भारतीय नर-नारियों का आगमन हुआ । इस दुखदाई कुली-प्रथा ने मानव-जीवन और धार्मिक तथा सामाजिक दशा को रसातल पहुँचा कर ही दम लिया । हम अविद्या के घोर अन्धकार में अपने नैतिक जीवन का भी संहार कर चुके हैं । माता-पिता छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं का विवाह कर देते हैं । इस अनमेल-विवाह ने हलचल मचा रक्खा है । अधिकांश एक दूसरे को पसन्द नहीं करते और एक दूसरे के विरुद्ध हो जाते हैं । कुछ कॉलर-नेकटाई वाले नवयुवक कहते हैं कि हम इस काली कन्या को पसन्द नहीं करते, हमारा विवाह हमारी नादानी में माता-पिता ने किया है । हमारा बस न था, हमने पराधीन होकर विवाह किया । हमको विवाह की ख़बर ही नहीं थी । इसके प्रतिकूल कुछ कन्याएँ अपने विवाहित पति को त्याग कर दूसरों को अपना पति बना लेती हैं ! इस अत्याचार के पाप के भागी उनके माता-पिता हैं; क्योंकि अविद्या के घोर अन्धकार में पड़ कर वे यह पाप की कमाई कमा रहे हैं । अधिकांश नर-नारियों की यह दशा है कि अपनी कन्याओं के लिए अनेक वर चुनते हैं और घर में लाकर उनसे काम कराते हैं । इन घर वाले दामादों से गुलाम भी कुछ स्वतन्त्र रहते हैं । कन्या के लालच में पड़ कर वे अपना सब कुछ स्वाहा कर देते हैं और फिर धक्का देकर निकाले जाते हैं । कन्या के माता-पिता किसी गाँठ के अन्धे को पहले ही से तजवीज़ कर रखते हैं और ये वर महाशय इस फ़िराक़ में पहले ही से रहते हैं कि अमुक वर किसी सूरत से निकाला जाय तो कन्या को मैं बरूँ, लेकिन यह नहीं सोचते कि पहले वर की अपेक्षा मुझे अधिक दुख झेलना पड़ेगा । आँख के अन्धे गाँठ के पूरे जब सब स्वाहा कर देते हैं तो तिरस्कार और धक्का देकर निकाले जाते हैं । फिर तीसरे वर तैयार हो जाते हैं । इसी प्रकार एक कन्या का लालच देकर माता-पिता बहुतों को वर बना कर ठगते हैं । इस प्रकार का व्यापार लोगों ने कर रक्खा है । इनकी सामाजिक और धार्मिक दशा बहुत ही शोचनीय है । अधिकांश नर-नारियों का परमात्मा पर कुछ विश्वास ही नहीं है, किसी का विश्वास झण्डे पर है, किसी का पत्थर पर, किसी का वृक्ष पर, किसी का कालीमाई पर, किसी का मीरा नागोड़ पर, किसी का गङ्गा-माँ पर, किसी का भूत-चुड़ैलों पर, और किसी का क़ब्र और ताज़ियों पर ! ये लोग इन्हें मुक्ति का मार्ग समझने लगे हैं ! कुछ रोज़ यही दशा रही तो हिन्दू-समाज का नामोनिशान मिट जायगा, क्योंकि बेचारी कन्याएँ अपने माता-पिता ही के आचरण पर चल रही हैं । यदि पति से अनमेल होने पर या माता-पिता के बहकावट में पड़ कर कन्या ने पति को त्याग दिया तो फिर वकील द्वारा विवाहित पति अदालत का दरवाज़ा खटखटाता है और वकीलों की ख़ूब मुट्ठी गर्म होती है ।

अब विचारिए कि किस प्रकार धन और धर्म दोनों ही स्वाहा होते हैं । इस दशा पर आँसू बहाने के सिवाय और मैं क्या कर सकता हूँ ? अब मैं अपना फ़र्ज समझ कर भारतवर्ष की समस्त हिन्दू-महासभाओं और आर्य-

* मिथिला अभी बहुत सी रूढ़ियों और कट्टरताओं का केन्द्र बना है । बीसवीं शताब्दी के नए युग की आवाज़ अभी वहाँ तक पहुँची ही नहीं है ! मैथिल लोग जाग्रति के नाम पर घबराते-से हैं । कुछ दिन हुए हमने यहाँ की एकाध कुरीतियों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया था, जिसके कारण आज मिथिला के बहुत से लोग हमसे अत्यन्त रुष्ट हो गए हैं । किन्तु खेद तो इस बात का है कि इन रुष्ट हुए व्यक्तियों में कई सुशिक्षित नवयुवक भी शरीक हैं । हमें इस रुष्टता पर ज़रा भी खेद नहीं है, क्योंकि हमारी अन्तरात्मा कह रही है कि हम मैथिल-समाज के शुभचिन्तक हैं । और हमने जो कुछ भी इस समाज के सम्बन्ध में लिखा है, वह उसकी भलाई की दृष्टि से—द्वेष-भाव से नहीं । हमारी सचाई का सुबूत भविष्य देगा ।

—स० 'चाँद'

प्रतिनिधि सभाओं तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि-सभा से सविनय प्रार्थना और अपील करता हूँ कि फ़ीजी द्वीप और अन्य उपनिवेशों में अपने-अपने उपदेशक तथा अध्यापक-अध्यापिकाओं को भेज कर अविद्या का अन्धकार मिटावें और विद्या का प्रकाश करें। जब अपने बीस लाख प्रवासी भाई-बहिनों को गले लगाएँगे, तभी भारत का कल्याण होगा। हर एक धर्मवीर युवक और युवती को कमर कस कर युद्ध-क्षेत्र में उतर पड़ना चाहिए और प्रवासी भारतीयों के उद्धार के लिए बीड़ा उठाना चाहिए। मैं फ़ीजी के नवयुवकों से भी प्रार्थना करता हूँ कि उनको अपने कर्तव्य पर ध्यान देना चाहिए। उनकी नसों में ऋषि-मुनियों का ख़ून वर्तमान है और वे अपने प्यारे भाइयों के लिए बहुत-कुछ कर सकते हैं। यदि वे कमर कस कर तैयार हो जायँ और अपने भाई-बहिनों को सुमार्ग पर ले आवें तो फ़ीजी का भविष्य सदा के लिए उज्ज्वल हो जाय।

—बी० एल० हीरालाल सेठ

* * *

पिलानी-दिग्दर्शन

अभी कुछ दिन हुए मुझे अपने मित्र पण्डित रामगोपाल जी शास्त्री रिसर्च स्कॉलर और प्रोफ़ेसर, डी० ए० वी० कॉलेज, लाहौर के साथ सुप्रसिद्ध दानवीर बिड़ला-बन्धुओं की जन्मभूमि पिलानी देखने का सुअवसर एवं सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्रीमान् बिड़ला जी की ओर से यहाँ पर भी दान का स्रोत बहाया जा रहा है, और स्थानीय जनता के लाभ के लिए कन्या-पाठशाला, अछूत-पाठशाला, दो संस्कृत-पाठशालाएँ और पब्लिक पुस्तकालय के अतिरिक्त मैंने यहाँ पर बिड़ला-हाईस्कूल भी देखा। इसकी गत चार वर्षों की असाधारण उन्नति को देख कर मैं चकित-सा रह गया, क्योंकि शायद इतने अल्प-काल में ऐसी अपूर्व उन्नति जयपुर राज्य में तो क्या, समस्त राजपूताना भर के किसी बिरले हाईस्कूल या कॉलेज में ही हुई हो। बड़ी ख़ुशी की बात तो यह है कि इस संस्था के अधिकारी और अध्यापकगण अपने विद्यार्थियों को केवल पुस्तकों की शिक्षा-मात्र देना ही अपना मुख्य ध्येय नहीं समझते, बल्कि वे इस संस्था के प्रत्येक विद्यार्थी को नीरोगी, हृष्ट-पुष्ट, ब्रह्मचारी, सदाचारी, धार्मिक भाव-सम्पन्न, निडर नागरिक और प्राणिमात्र का सच्चा सेवक बनाना अपना परम कर्तव्य समझते हैं। इसी कारण धर्म-शिक्षा, डिबेटिङ्ग क्लब, बाल-बोधनी सभा, विद्यार्थियों के बोर्ड के अतिरिक्त व्यायाम के लिए फ़ुटबॉल, हॉकी, क्रिकेट, पिङ्ग-पॉङ्ग, वॉली-बाल, और बैडमिंग्टन खेलों का भी विशेष रीति से प्रबन्ध किया गया है। साल भर में कम से कम एक या दो धार्मिक और शिक्षाप्रद नाटकों के खेलने का भी प्रबन्ध है।

यह संस्था इलाहाबाद-बोर्ड से सम्बन्धित है, और स्कूल के सञ्चालकों का खुला हाथ होने के कारण बड़े-बड़े योग्य और अनुभवी अध्यापक इस समय अध्यापन का कार्य सञ्चालन कर रहे हैं। इसलिए पढ़ाई एक ही नम्बर की हो रही है; और परीक्षा-फल भी बहुत ही अच्छा और सन्तोषजनक रहता है। हाईस्कूल की परीक्षाओं के लिए यहाँ के विद्यार्थी गत दो वर्ष से ही परीक्षाओं में सम्मिलित हो रहे हैं। पहले साल आठ विद्यार्थी पञ्जाब-विश्वविद्यालय में प्राइवेट तौर से बैठे थे, उनमें से आठों ही पास हो गए—चार तो फ़र्स्ट डिवीज़न में और बाक़ी चार सेकेण्ड डिवीज़न में। आठ ही विद्यार्थी पिछले साल पहले ही पहले इलाहाबाद-बोर्ड की हाईस्कूल-परीक्षा में बैठे थे, उनमें से पाँच उत्तीर्ण हुए। केवल यही नहीं, बल्कि जयपुर स्टेट की एङ्गलो अपर-प्राइमरी और मिडिल-परीक्षाओं के फल भी गत चार वर्षों से क्रमशः ७३ और ८२ प्रति शत रहे हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ के कई विद्यार्थी इन्हीं दोनों परीक्षाओं में प्रति वर्ष फ़र्स्ट डिवीज़न में पास होने और स्कॉलरशिप-परीक्षा में उत्तीर्ण होने के साथ-साथ किसी-किसी वर्ष जयपुर स्टेट भर में फ़र्स्ट भी आए हैं और अच्छी-अच्छी पोज़ीशन भी प्राप्त की हैं।

इनके अतिरिक्त हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा, आराइज़-नवीसी, मुनीमी इत्यादि परीक्षाओं का यहाँ पर केन्द्र भी है, और हिन्दी-मिडिल पास विद्यार्थियों को तीन ही वर्षों के भीतर एन्ट्रेन्स की परीक्षाओं में भेजने का प्रबन्ध भी विशेष रीति से किया गया है। स्कूल के अवैतनिक सुपरिन्टेन्डेण्ट साहब मिस्टर सीताराम जी खेमका, बी० ए० तथा स्कूल की मैनेजिङ्ग कमेटी और स्कूल के हेड-मास्टर साहब यहाँ के सुप्रबन्ध
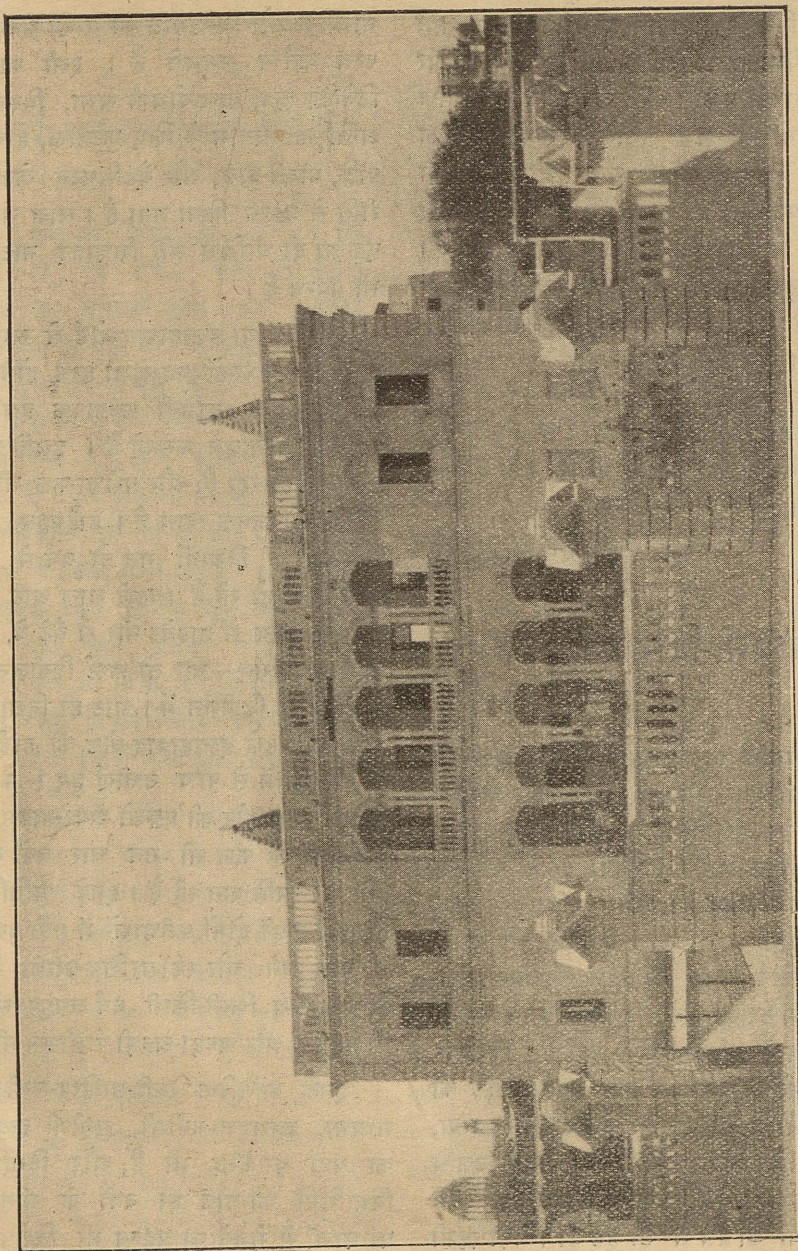
बिड़ला-हाईस्कूल, पिलानी
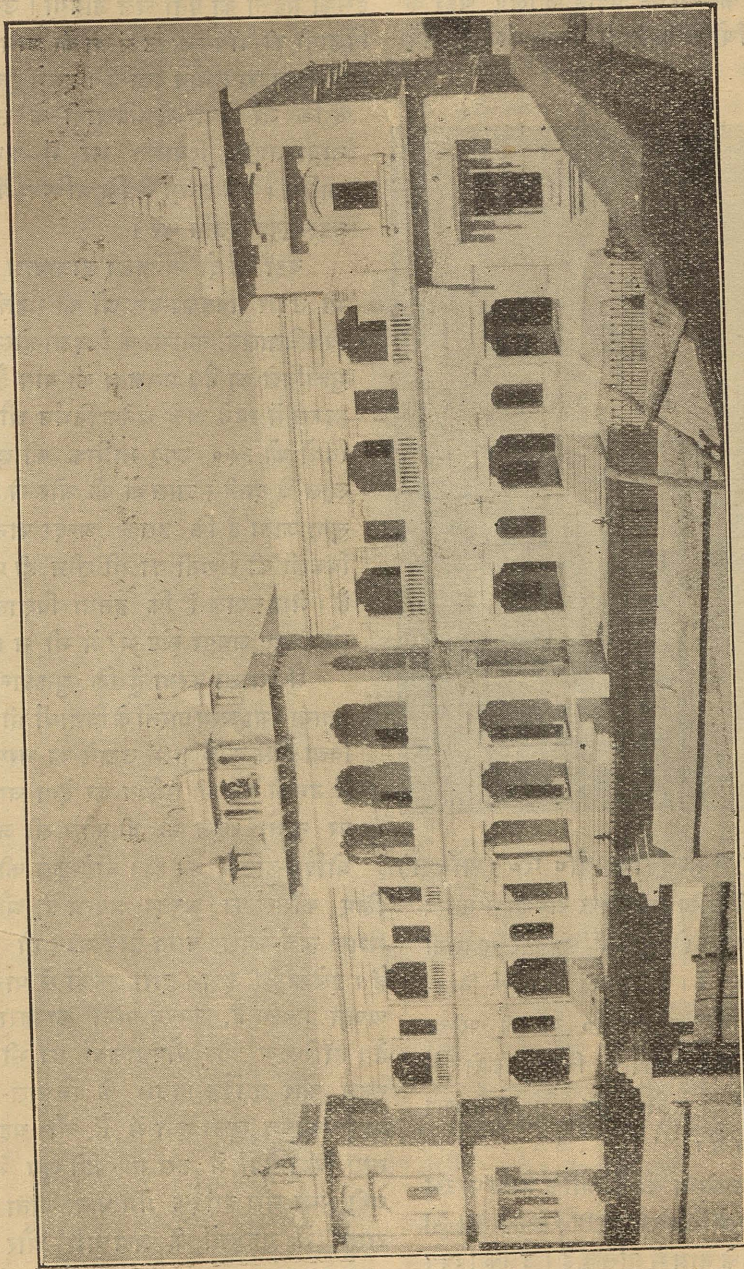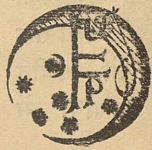
बिड़ला-बोर्डिङ्ग-हाउस, पिलानी

के लिए विशेष बधाई के पात्र हैं। इन्होंने बड़ी कृपा करके एफ़० ए० कोर्स की प्राइवेट पढ़ाई के लिए यहाँ के और बाहर के विद्यार्थियों के लिए हर प्रकार की सुविधाएँ कर रक्खी हैं।

कुमारी गुलाब बाई मुकुन्दराव, बी० ए० (ऑनर्स)

आप बम्बई के एक्ज़ीक्यूटिव इञ्जीनियर रायबहादुर मुकुन्द रामचन्द्रराव की पौत्री और होलकर की जूनियर महारानी इन्दिरा बाई की बहिन लगती हैं। आपने गत वर्ष बम्बई विश्व-विद्यालय से अँगरेज़ी में ऑनर्स के साथ बी० ए० की परीक्षा पास की है। इन दिनों आप बम्बई के विलसन कॉलेज में अँगरेज़ी पढ़ाती हैं। कॉलेज की फ़ेलो नियुक्त होने वाली आप सर्व-प्रथम हिन्दू महिला-रत्न हैं।

यहाँ पर एक स्काउट-संस्था भी है, जोकि बैडन पावल बॉय-स्काउट लोकल ऐसोसिएशन (Boy-scout Local Association) पिलानी के नाम से प्रसिद्ध है। उसके विषय में विशेष न कह कर, केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आपको जयपुर स्टेट के प्रेज़िडेण्ट मिस्टर रैनॉल्ड साहब के भाषण से, जोकि उन्होंने तारीख़ ३१ जनवरी, सन् १९२७ को यहाँ के छात्रावास का उद्घाटन करते हुए दिया था, इसकी महत्ता का पता चल जायगा। उन्होंने कहा था कि पिलानी की बॉय-स्काउट संस्था की आम कार्य-प्रणाली का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इसने इतनी उन्नति कर ली है कि मेरे विचार से पिलानी के स्काउट ट्रुप्स का नम्बर जयपुर रियासत भर में सबसे प्रथम होना चाहिए। मेरी इच्छा है कि भविष्य में यहाँ के स्काउट्स ख़ूब उन्नति करें।

यहाँ का दो मञ्ज़िला छात्रावास (बोर्डिङ्ग-हाउस) भी उदार बिड़ला-बन्धुओं की महती कृपा से हिन्दू-विश्वविद्यालय, बनारस के बिड़ला-होस्टल के ही बिलकुल मुक़ाबिले का है। प्रसन्नता की बात है कि इस बोर्डिङ्ग-हाउस में रहने वाले अनेक निर्धन और अनाथ विद्यार्थियों को ३५० रुपए मासिक की छात्र-वृत्तियाँ इस स्कूल के दानी सञ्चालकों की ओर से दी जा रही हैं। सुना जाता है कि इसके अन्दर पानी के नल और बिजली की रोशनी का भी शीघ्र ही प्रबन्ध होने वाला है। मेरा ख़्याल है कि इतना विशाल बोर्डिङ्ग-हाउस तो शायद जयपुर स्टेट भर में भी न होगा।

मैं आशा करता हूँ कि युक्तप्रान्त, पञ्जाब, राजपूताना तथा अन्य प्रान्तों के विद्यार्थी भी इस संस्था द्वारा विद्या प्राप्त करके लाभ उठाने का भरपूर प्रयत्न करेंगे। मैं उनको यह भी सूचित कर देना चाहता हूँ कि यहाँ पर न तो स्कूल की ही फ़ीस ली जाती है और न बोर्डिङ्ग-हाउस की ही। हाईस्कूल की परीक्षा तक के लिए कॉमर्स का अच्छा प्रबन्ध है, और खाने-पीने का समस्त ख़र्च केवल बारह-तेरह रुपए ही प्रति मास पड़ते हैं। इलेक्ट्रिक इञ्जन द्वारा कुओं से पानी निकालने का अच्छा प्रबन्ध है, अतएव पानी का ज़रा भी कष्ट नहीं है। हॉस्पिटल और औषधालयों का भी पूर्ण प्रबन्ध है। स्कूल और बोर्डिङ्ग-हाउस के विशाल-भवन बस्ती से बाहर स्वच्छ खुली हवा में हैं, और यहाँ के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों में इस गए-बीते युग में भी अभी तक वही सच्चा और हार्दिक प्रेम पाया जाता है, जो प्राचीन समय में गुरुकुलों के ब्रह्मचारी और आचार्यों में हुआ करता था।

—चाँदकरण शारदा, बी० ए०, एल्० एल्० बी०

* * *

स्त्रियों की लूट

हिन्दुस्तान इतना विस्तृत देश है कि उसके सम्बन्ध में कोई एक सिद्धान्त सर्वत्र एकसा उपयुक्त नहीं हो सकता। अगर कहा जाय कि भारतवर्ष में स्त्रियों की लूट होती है तो देश में कुछ प्रान्त ऐसे भी निकल आएँगे जहाँ यह कथन सत्य सिद्ध नहीं हो सकेगा। किन्तु उत्तरीय भारत में यदि हम कहें कि स्त्रियों की लूट होती है तो अत्युक्ति हरगिज़ न होगी।

इस विषय को अच्छी तरह समझ सकने के लिए हमें पहले अपनी क़ौम के दो-चार विशेष गुणों या अवगुणों को समझ लेना चाहिए। हमारा विचार है कि हिन्दुस्तान की जनता प्राचीन समय में चाहे संयमी और ब्रह्मचारियों की सेना क्यों न रही हो, आजकल कामातुरता में किसी देश से कम नहीं है। सम्भव है, कुछ पाठक हमारे इस कथन से चकित या क्रुद्ध हों और कहें कि वाह, जिस क़ौम ने भीष्म-से बाल-ब्रह्मचारी पैदा किए, जो क़ौम ऋषि-मुनियों के दिव्य चरित्र से पवित्र हो चुकी है, उसके सम्बन्ध में तुम ऐसा कहते हो? किन्तु हम अपने कथन को प्रमाणित कर सकते हैं और ज़ोरदार दलीलों से प्रमाणित करेंगे।

हम यह मानते हैं कि हमारा प्राचीन इतिहास और हमारा धार्मिक साहित्य संयम और पवित्रता की गाथाओं और उपदेशों से परिपूर्ण है। हमें उस पर अभिमान है और हम उसे अपने जातीय गौरव का कारण मानते हैं, किन्तु हम यह भी कहते हैं कि प्राचीन और अर्वाचीन भारत में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। हम मानते हैं कि जिस समय रामचन्द्र का राज्य था या जिस समय महाभारत युद्ध हुआ था, भारतीय विशेष रूप से संयमी एवं पवित्र चरित्र के मनुष्य हुआ करते थे, किन्तु आजकल भारतवासियों की ऐसी प्रवृत्तियाँ नहीं रहीं। हम लोग उन पवित्र-चरित्र लोगों के वंशज हैं, किन्तु वैसे ही, जैसे कोई गाँव का टट्टुआ या ख़च्चर अरबी घोड़े का वंशज है। शकल एक सी होगी; पैर, मुह उसी क़िस्म के हैं, किन्तु कृत्य बिलकुल भिन्न!

कामातुरता हिन्दुस्तानी बच्चा अपनी बाल्यावस्था में ही विशेष रूप से सीख जाता है। हिन्दुस्तान की जातियाँ इस क़िस्म की हैं, हिन्दुस्तान का मज़ाक़ इस क़िस्म का है कि बच्चा सड़क पर चलते हुए, पिता के पास कमरे में बैठे हुए, या माता के साथ किसी रिश्तेदार के यहाँ जाकर, मज़ाक़ में या अन्य अवसरों पर गालियाँ सुनकर दो-चार शब्द ऐसे सीख लेता है जिसका मतलब, जिसका महत्व समझने की उसके मन को बहुत
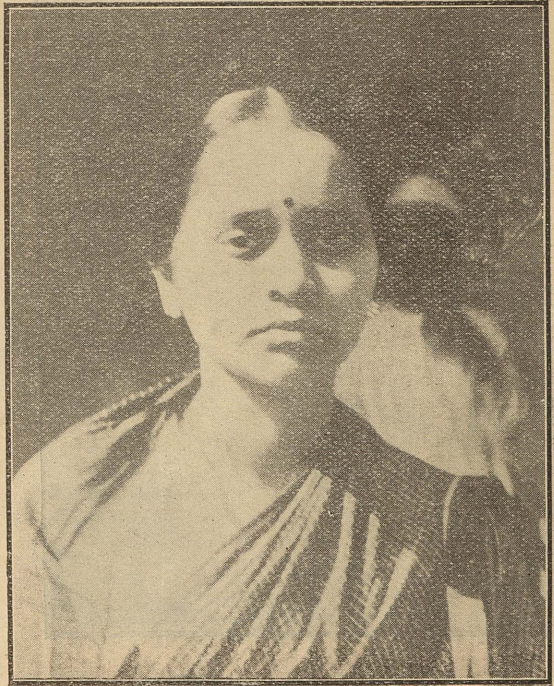
कुमारी मन्दाकिनी पण्डित

हाल ही में होने वाली गुजरात-कॉलेज की हड़ताल में काम करने वाली महिला-छात्रों की आप नेत्री थीं, जिन्हें प्रिन्सिपल शिराज़ ने छात्रवृत्ति छीन लेने की धमकी तक दी थी। पर तब भी आप अपने सिद्धान्त पर अटल रहीं।

जल्द आवश्यकता प्रतीत होने लगती है! हिन्दुस्तानी समाज की आबोहवा में पल कर काम-चेष्टा को बालक अपने लिए एक अभिमान की बात समझने लगता है। दरिद्रता-वश हिन्दुस्तानियों में अन्य विषयों, जैसे, कान के लिए गान, नाक के लिए सुगन्धित वस्तु, जिह्वा के लिए

स्वादिष्ट पकवान आदि के लिए ज़्यादातर चस्का नहीं होता, किन्तु काम का विषय ग़रीब-अमीर समान रूप से उपयोग कर सकता है और इसीलिए इसका विशेष प्रचार है। आप रेल में चलते हुए रेल की पटरी के

सौ० सरस्वती बाई ओवलेकर

आप बम्बई-प्रान्त की थाना-निवासी महाराष्ट्र महिला हैं, जिनके बनाए हुए खद्दर के चित्र कलकत्ता-कांग्रेस की प्रदर्शिनी में दिखलाए गए थे। इन सभी चित्रों में, जिनमें से एक महात्मा गाँधी जी का भी था, बेल-बूटे तथा फूल-पत्तियाँ सभी खद्दर की ही बनी थीं। जनता ने इन्हें बहुत पसन्द किया, आपको पारितोषिक भी मिला था।

चौराहों पर खड़े हुए बालकों को देखेंगे कि वह अपने हाथ से कामुक चेष्टाएँ करते हैं। आप रेल पर चढ़े हुए अपने साथी मुसाफ़िरों को देखिए, रेल की पटरी के आस-पास खड़ी हुई औरतों को वह किस प्रेम से बुलाते हैं। रेल के एवं पब्लिक पाख़ानों में, एकान्त स्थानों में, पुरानी इमारतों की दीवारों पर हिन्दुस्तानी अक्सर अपने हृदय की सबसे प्रिय बात—कामातुरता से परिपूर्ण गालियाँ—लिख देते हैं। आप जितना ही इस विषय पर विचार करेंगे, उतना ही पता चलेगा कि हिन्दुस्तानी बालकों की प्रवृत्ति बहुत ही कम अवस्था से ही कामपूर्ण हो जाती है। आजकल के समाज में सबसे ज़्यादा प्रिय यही विषय है भी!

हमारे यहाँ के मज़ाक़, हमारे यहाँ की आपस की बातचीत, सभी में कामातुरता की अधिकता पाई जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुस्तान में मुस्लिम-समाज हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक कामासक्त है। किन्तु हिन्दू लोग भी इस मामले में दूध के धोए नहीं कहे जा सकते। जो लोग लखनऊ में रहे हैं या लखनऊ के समाज की बातचीत से वाक़िफ़ हैं, वे अच्छी तरह जानते हैं कि वहाँ बात-बात में कैसा मज़ाक़ होता है और हर एक मज़ाक़ कितनी कामातुरता से परिपूर्ण होता है। एक वाक्य मुँह से नहीं निकल सकता, जिसमें कामासक्ति के अर्थ न पहनाए जा सकें!

इन सब बातों के कहने का मतलब यह है कि भारतीय समाज—विशेष कर उत्तर-भारत का समाज विशेष रूप से विषयासक्त है। इन प्रदेशों में परदे की प्रथा की वजह से मनुष्यों का मन स्त्रियों को देख कर ख़ामख़्वाह के लिए विचलित होने लगता है। दक्षिण में, जहाँ स्त्री और पुरुष बाज़ार में साथ-साथ टहलते हुए दिखलाई देते हैं, परदा न होने के कारण जहाँ की स्त्रियाँ निडर हो, बाज़ारों में, दूकानों पर फिरती हुई नज़र आती हैं, वहाँ स्त्रियों को देखते-देखते पुरुषों की निगाह इतनी भर गई है कि किसी स्त्री को सड़क पर जाते हुए देख कर किसी को आश्चर्य या कुतूहल नहीं होता। उत्तरीय भारत की दशा बिलकुल भिन्न है। यहाँ पर स्त्रियों से पुरुषों का बहुत कम संसर्ग होता है, इसलिए जब कभी किसी सड़क पर कोई स्त्री दिखाई पड़ी कि आस-पास के लोग एकदम उसको घूरने लगते हैं। उत्तरीय भारत का आदमी जब बम्बई या दक्षिण के किसी और नगर में जाता है, तो उसे पता चलता है कि वह कितना पतित है। रास्ते में जहाँ कहीं कोई स्त्री उसे नज़र पड़ी, वह उसे बिना घूरे नहीं मानता। इसकी

वजह यही है कि बाल्यकाल से उत्तरीय भारत के रहने वाले का मन स्त्रियों का संसर्ग न होने से विशेष रूप से कलुषित रहता है।

उत्तरीय भारत में इसलिए स्त्रियों के लूट का मुख्य कारण यहाँ की सामाजिक अवस्था है। दूसरी बात, जिसकी वजह से स्त्रियों की लूट सम्भव होती है, स्वयं स्त्रियों की अपनी ट्रेनिङ्ग है। लड़कियाँ लड़कपन से ही गुड़ियों की तरह पाली जाती हैं। परदे में बन्द करके उनके हृदय में इतना भय भर दिया जाता है कि खुली हुई सड़क पर अकेले चलना या रास्ता भूल जाने पर किसी से रास्ता पूछ कर अपने घर चले आना उनके लिए बिलकुल असम्भव-सा हो जाता है। खुली सड़क पर पहुँचते ही हिन्दोस्तानी स्त्री हक्का-बक्का हो जाती है। अगर एक मर्द ज़रा-सा भी डाँट दे तो वह डर कर काँपने लगती है। इसलिए अगर कभी भाग्यवश वह ऐसी परिस्थिति में पड़ गई जहाँ उसे दो-एक गुण्डे-बदमाशों से मुक़ाबला करना हुआ, तो वहाँ वह भयभीत होकर तुरन्त ही आत्मसमर्पण कर देती है। लूट का यह दूसरा बड़ा कारण है। इसके अलावा स्त्रियों के प्रति सम्मान का भाव हिन्दोस्तान में बिलकुल नहीं है। हिन्दुस्तानी अपनी माता की पूजा कर लेगा, मगर अन्य अबला की किसी प्रकार की भी सहायता करने को तैयार न होगा। पाठकों ने देखा होगा कि अक्सर अपनी स्त्री के सिर पर सेरों बोझ लाद देते हैं और स्वयं ख़ाली हाथ चलते हुए दिखाई देते हैं। रेलगाड़ियों में अगर जगह की कमी हुई तो पुरुष लोग अपनी जगह पर मज़े में बैठे रहेंगे और स्त्रियाँ या तो खड़ी रहेंगी या ज़मीन पर बैठेंगी। टिकट लेते समय औरतों को धक्का देकर लोग पीछे कर देते हैं और ख़ुद टिकट ले आते हैं। कहने का मतलब यह कि लोगों में स्त्रियों के प्रति सम्मान के भाव ही नहीं पाए जाते। इसलिए अगर किसी स्त्री पर कोई आफ़त आती है, तो आस-पास के लोग उसकी रक्षा करने में अपना गौरव नहीं समझते। लोग देखते रहते हैं कि एक अबला के साथ एक दूसरा आदमी मज़ाक़ कर रहा है या उसको कुमार्ग पर ले जाने की प्रेरणा दे रहा है; लोग देखते रहते हैं कि अमुक बड़ा आदमी किसी दरिद्र की कन्या को कुमार्ग पर ले जाने वाला है—वे ऐसी अवस्था में स्त्रियों का आर्त्तनाद भी सुनते हैं, किन्तु यह अपना कर्त्तव्य नहीं समझते कि अबलाओं की रक्षा में प्राण दे दें। यह तीसरा कारण है, जिसकी वजह से स्त्रियों की लूट सम्भव होती है।

कुछ प्रान्तों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या कम है। हर एक पुरुष इसलिए विवाहित नहीं होता। आजीवन ब्रह्मचर्य व्यतीत न कर सकने के कारण ये काँरे लोग स्त्रियाँ प्राप्त करने के लिए अनेक उचित-अनुचित मार्गों का ग्रहण करते हैं। स्त्री प्राप्त करने का एक तरीक़ा यह भी है कि धोखे से या प्रलोभन देकर या ज़बरदस्ती उन्हें उठा ले जायँ। बीसवीं सदी के भारत के लिए यह कितनी लज्जा की बात है?
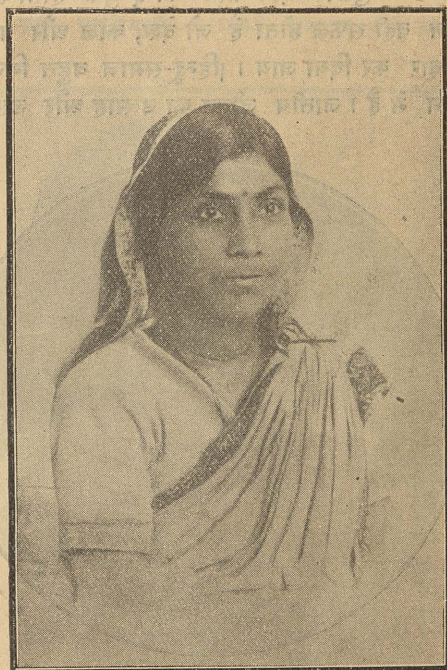
श्रीमती सुनीतिदेवी मित्र

आप हाल ही में लखनऊ म्युनिसिपेलिटी की सदस्या निर्वाचित हुई हैं। लखनऊ में म्युनिसिपल-कमिश्नर होने वाली आप सर्व-प्रथम महिला हैं।

—शीतलासहाय, बी० ए०

* * *

हमारी दान-शैली

दीयते हि यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं विदुः॥

—हितोपदेशः

प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी रुचि और स्थिति के अनुसार दान करने का इच्छुक होता है, पर दान वही सफल होता है जो देश, काल और पात्र को विचार कर दिया जाय। हिन्दू-समाज बहुत गिरी हुई दशा में है। जातीय जीवन का उत्साह और उत्कर्ष तो
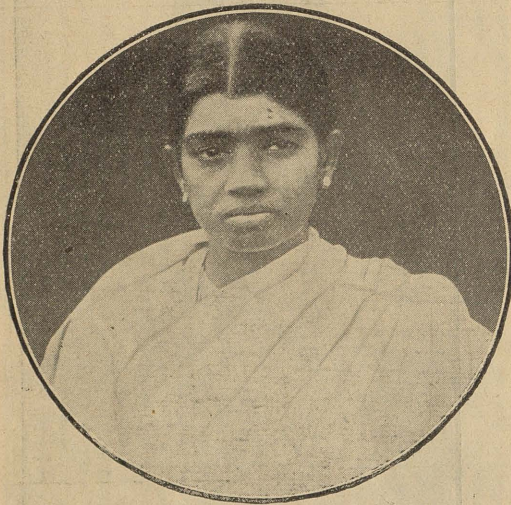
सौ० सी० सञ्जीवराव

आप सरकार की ओर से विज़गापट्टम डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सदस्या नियुक्त की गई हैं।

इस समाज में दृष्टिगोचर ही नहीं होते। कुरीतियों की इतनी भरमार है; अन्धकार का ऐसा अविच्छिन्न राज्य है, पोप-लीला का ऐसा प्रचार है कि देखा नहीं जाता। प्रत्येक जाति-हितैषी का हृदय इन बातों को देख कर दग्ध हो उठना स्वाभाविक है। कुरीतियों और अन्ध-विश्वासों के परिणाम-स्वरूप हमारा धन—जिसको हम सुकर्मों में लगा कर विशेष उपकार कर सकते हैं, उचित कार्यों में उपयुक्त नहीं होता! पुण्यशील कार्यों में व्यवहृत न होकर धन का दुरुपयोग, जैसा कि आगे बताया जायगा—नाट्यालयों और वेश्यालयों आदि में होता है! हमारा कर्तव्य है कि हम ऐसे धन को कुसंस्कारों से बचाने का भरसक उद्योग करें।

वर्तमान काल का हिन्दू-दान निम्न-विभागों में विभक्त हो सकता है :—

(१) तीर्थादिकों के पण्डों को।
(२) जाति और कुल के पुरोहितों को।
(३) देवालयों को।
(४) ब्राह्मण-समाज को।

तीर्थादिकों के पण्डों को दान देने में जो-जो बुराइयाँ दृष्टिगोचर होती हैं, वह प्रायः किसी से छिपी नहीं हैं। यदि आपको परले सिरे के वेश्यागामी ढूँढ़ना हो तो आपको पण्डा-समाज में सरलतापूर्वक मिल सकेंगे; यदि आप राजा नल सरीखे ज्वारी देखना चाहें तो वह भी इसी श्रेणी में मिल जायँगे! मदिरा और मांस का सेवन तो साधारण बात सी हो रही है! तिस पर भी अधिकांश पण्डे अपने यजमान की गृहिणी पर आँख उठाए बग़ैर नहीं छोड़ते! संयोग पाते ही अबलाओं का सतीत्व हरण कर लेना इन लोगों के लिए एक साधारण-सी बात है! यदि कोई इस पर अविश्वास करे तो मेरे पास इन बातों के प्रमाण मौजूद हैं। जब हम लोगों की गाढ़ी कमाई का दुरुपयोग यहाँ तक होता है, तब ज़रा विचारने की बात है कि यह दान कहाँ तक सात्विक और जायज़ हो सकता है।

जाति और कुल के महारथी पुरोहितों का भी किन्हीं-किन्हीं अंशों में यथावत् हाल है। इस दान का यह परिणाम हुआ है कि पुरोहितों का एक समुदाय बन गया है, जिसका काम है शुभ और अशुभ सभी कार्यों में ठेकेदारों की भाँति कर उगाहना और उस धन को गाँजा, भाँग, चण्डू इत्यादि सुकृत्यों में सदुपयोग करना! रुपयों का खुला हुआ सोता देख कर इन लोगों ने विद्यार्जन करना त्याग रक्खा है! इनकी सन्तान भी इन्हीं का अनुकरण कर निरक्षर भट्टाचार्य रहती है! इस तरह से हमारा दान न केवल मादक वस्तुओं के प्रचार में सहायक होता है, वरन् विद्यान्धकार का भी प्रसार करता है! यह भी क्या दान है? यह भी क्या पुण्य है? यदि किसी जीवित प्राणी को कुएँ में ढकेल देना पुण्य हो सकता है; यदि विद्या के प्रचार में बाधा डाल, मनुष्यों

को मूर्ख बनाए रखना किसी अच्छे उद्देश्य में शुमार है तो निस्सन्देह हम ऐसे दान को भी सात्विक और उपयोगी कह सकते हैं! यह दान नहीं, देश के करोड़ों भूखों मरते हुए भाइयों के प्रति असीम निर्दयता है! परमात्मा के सामने हमें इसका उत्तरदायी होना पड़ेगा!

हमारे हिन्दू-देवालयों में आज-दिन लाखों रुपयों की सम्पत्ति लगी हुई है, जिनका उपयोग मूर्ति के रखवारे पुजारीगणों के पालन-पोषण में होता है! श्री ठाकुर जी महाराज सहस्रों रुपए के आभूषणों से सुसज्जित रहते हैं! लाखों के मूल्य के देवालय बने हुए हैं, जिनमें मूर्तियाँ स्थापित हैं; और निरन्तर नवीन निर्माण होते ही जाते हैं! क्या कोई भी विचारशील पुरुष इस धन को धन का सदुपयोग कहेगा! क्या यह दान देश, काल और पात्र को विचार कर दिया जाता है? इसका निर्णय मैं पाठक-वर्ग पर ही छोड़ता हूँ?

ब्राह्मण-समाज ही दान लेने का पात्र है, यह व्यर्थ की धारणा हमारे सैकड़ों हिन्दू-भाइयों में आज दिन मौजूद है! पुरानी लकीर के फ़क़ीर तो एक धन-सम्पत्तिशाली ब्राह्मण को दान देना अच्छा समझेंगे, बनिस्बत एक दीन-हीन, क्षुधातुर, कातर माँगने वाले के, जो दाता को हृदय से आशीश देता हुआ चला जायगा! विशेषतः हमारी माता और बहिनें तो अपना छुआ हुआ सामान ब्राह्मण के सिवा और किसी को देती ही नहीं! दान देते समय जाति और वंश का विचार रखना ठीक नहीं! हमारी माताएँ और बहिनें यदि विवेक से काम लेंगी, तो उनको समझने में कठिनता न होगी कि हमारे दान का उपयुक्त पात्र कौन है—एक दीन-हीन कातर मँगता अथवा धनाढ्य ब्रह्मदेव?

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि आख़िर दान किसको दिया जाय, जिसमें दान का सदुपयोग देश, काल और पात्र के अनुसार हो सके? हाँ! इसके लिए दुखी-दरिद्रियों से भरे, शिक्षा-रहित भारतवर्ष में बहुत से साधन हैं; उदाहरण के लिए:—

(१) बालिका-विद्यालयों का निर्माण।

(२) पुस्तकालय और वाचनालयों की नगरों और गाँवों में स्थापना।

(३) विधवा-आश्रमों और अनाथालयों को सहायता, इत्यादि, इत्यादि।

महापुरुष नेपोलियन कहा करता था कि किसी देश को उन्नतिशील बनने के लिए जितनी आवश्यकता योग्य माताओं की है, उतनी किसी अन्य वस्तु की नहीं। यदि आप दान करने के इच्छुक हैं तो सर्व-प्रथम अपनी समस्त शक्तियों को बालिकाओं की शिक्षा की ओर लगा दीजिए, क्योंकि यही बालिकाएँ आगामी सन्तान की जननी होंगी! बच्चे माता के प्रतिविम्ब होते हैं। सुशिक्षित और सद्विचार वाली माता अपने बच्चे को वैसा ही बनाने की चेष्टा करती है। जननी आदि गुरु है—उसकी शिक्षा बालक के जन्मकाल ही से प्रारम्भ हो जाती है! दस गुरु भी पाँच वर्ष की अवस्था के बाद उतने समय में उतनी शिक्षा नहीं दे सकते, जितनी कि माता बच्चे को बाल्यकाल में दे डालती है। अभी थोड़े दिन हुए, 'मॉडर्न रिव्यु'

श्रीमती एम० के० रामानुजुलु

आप गुन्तूर (मद्रास) म्युनिसिपेलिटी की सर्व-प्रथम महिला-सदस्या हैं।

में एक छोटी सी सच्ची कहानी छपी थी ! इटली की एक महिला अपने पञ्च वर्षीय लड़के को लेकर एक गिरजे के पादरी के पास गई और पूछा कि किस दिन से मैं इसकी शिक्षा आरम्भ कराऊँ, क्योंकि इसकी अवस्था अब पाँच वर्ष की हो चुकी है।

पादरी साहब ने जवाब दिया कि माता ! तुमने इस बालक की शिक्षा के सर्वोत्तम पाँच वर्ष तो खो दिए, अब जब चाहो तब आरम्भ करा सकती हो ! माँ की आँखें खुलीं और वह उसी दिन से उसे शिक्षा देने लगी ! कहने का अर्थ यह है कि यदि हमारी बहिनें शिक्षित होंगी, तो सन्तान का मूर्ख रहना कठिन हो जायगा। बालिकाओं की शिक्षा बालकों की शिक्षा से भी अधिक महत्व रखती है और इससे अधिक उपयुक्त साधन दान देने का हमारे सामने दूसरा नहीं।
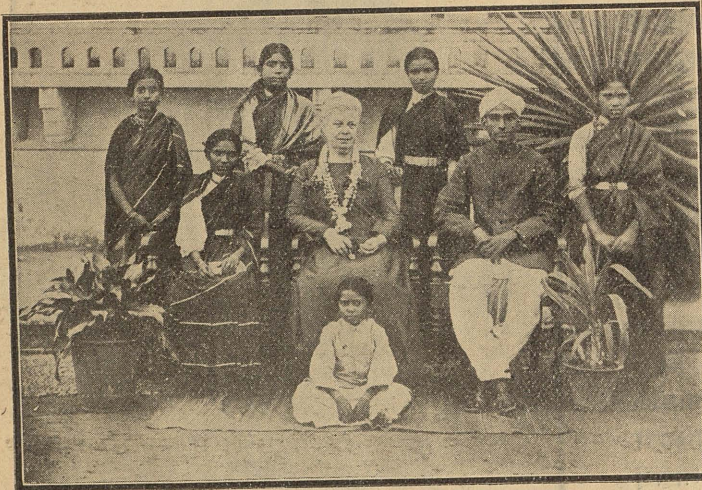
मैसूर के वेज़लियन मिशन-स्कूल के शिक्षक-गण

बीच में वहाँ की प्रिन्सिपल मिस मैरथा हडसन बैठी हैं। आपने आजीवन अविवाहिता रहकर ४१ वर्ष तक केवल अध्यापन का पुनीत कार्य किया है। ४१ वर्ष की सेवा के बाद विश्राम लेने के अभिप्राय से हाल ही में आपने पद त्याग किया है।

पुस्तकालयों की उपयोगिता के विषय में अधिक कहना पाठकों के अमूल्य समय को नष्ट करना है ! हमारे ९८ फ़ी सदी देशवासियों की आर्थिक दशा अच्छी नहीं—इतनी भी पर्याप्त नहीं है कि वे दोनों समय भर-पेट भोजन तक कर सकें। करोड़ों भारतीय एक ही समय के भोजन पर सन्तोष करते हैं। फिर यह कहाँ तक सम्भव है कि आर्थिक दशा का यह हाल होते हुए वे समाचार-पत्रों और पुस्तकों इत्यादि के लिए व्यय कर सकने में समर्थ हों ? अतएव देश के धनी-समुदाय का यह कर्तव्य है कि अपने भाइयों की ज्ञान-वृद्धि के लिए—उस ज्ञानवृद्धि द्वारा अपनी जाति और अपने देश की उन्नति के लिए स्थान-स्थान पर पुस्तकालय और वाचनालय खुलवा दें, जिससे मध्यम परिस्थिति के हमारे भाई उससे लाभान्वित हों।

पुस्तकालयों में पाठकों को भिन्न-भिन्न जातियों और भाषा के महारथियों से वार्तालाप करने का संयोग मिलता है। पुस्तकालयों में एक साथ कवि, दार्शनिक, इतिहासज्ञ, साहित्य-सेवी, गणितज्ञ इत्यादि विद्वानों से पुस्तक-रूप में साक्षात् होता है। विश्व के साहित्य में कैसे-कैसे अनूठे रत्न पड़े हुए हैं, यह हमको पुस्तकालय की ही कोठरियों में दिखलाई पड़ता है। शेक्सपियर और कालिदास के ऐसे सिद्ध-हस्त नाट्याचार्य; मिल्टन और सूरदास के ऐसे प्रतिभाशाली जन्मान्ध कवि; होरेस विल्सन और वेदव्यास ऐसे साहित्य-सेवी; महामना न्यूटन ऐसे गणितज्ञ, गैरीबाल्डी और प्रताप के ऐसे देश पर मर-मिटने वाले पुनीत चरित्र; चाणक्य और विदुर ऐसे नीतिज्ञ—यह सब वहाँ एक ठौर सुलभता से प्राप्त हो सकते हैं ! ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि का मार्ग केवल पुस्तकें हैं—पुस्तकें जो संसार के सुप्रसिद्ध और मननशील मस्तिष्कों की उपज हैं।

पुस्तकालयों के साथ ही साथ वाचनालयों की भी बड़ी आवश्यकता है। संसार की वर्तमान प्रगति क्या है, कहाँ शान्ति है, कहाँ युद्ध हो रहा है, कौन संसार का सबसे बड़ा महापुरुष, शान्ति-रक्षक अथवा विद्वान् है, क्या-क्या नए-नए आविष्कार हो रहे हैं, इत्यादि उपयोगी बातें हमको समाचार-पत्र ही बतलावेंगे।

पुस्तकालयों और वाचनालयों से हमारे जातीय

जीवन के उत्थान में अपूर्व सहायता मिल सकने की सम्भावना है। अतएव जिन धनी-मानी पुरुषों की दान देने की सदिच्छा हो वे नगर-नगर और गाँव-गाँव में अच्छे-अच्छे पुस्तकालय तथा वाचनालय खुलवाएँ। इससे उनके धन का सदुपयोग होगा और समाज की उन्नति।

समाज को क्या अधिकार है जो बेचारी विधवाओं को, असीम कष्टमय जीवन बिताने को मजबूर किया जाता है? किस युक्ति से यह सिद्ध किया जा सकता है कि पुरुष तो बालपन से वृद्धावस्था तक जितने चाहे विवाह कर ले; यहाँ तक कि एक ही समय दो-दो, तीन-तीन स्त्रियाँ रक्खे और उनका चलन ठीक समझा जाय, परन्तु यदि स्त्री एक पति से विवाह हो चुकने के पश्चात् विधवा हो जाय तो शेष जीवन अपने मृत-पति की स्मृति में समर्पित कर दे—वही पति जो यदि जीता होता तो स्वेच्छानुसार न जाने कितनी पत्नियाँ करके उस स्त्री की छाती पर होरे दलता! यह कहाँ का न्याय है कि स्त्री तो पातिव्रत्य-धर्म के पालन में, पति की चिन्ता में, अपने को भस्मीभूत कर दे, किन्तु पति अपनी स्त्री को पैर की जूती के समान समझे! जिनके हृदय इस प्रकार के भावों से प्रेरित हो, सन्तप्त हो चुके हैं, उनको विधवाओं का आर्तनाद असह्य जान पड़ेगा। विवाह के मामले में स्त्रियों को वही समता के अधिकार होने चाहिएँ, जो पुरुषों को। विधवा-आश्रम खोलने का ध्येय यह नहीं होना चाहिए कि षोडश-वर्षीया बालिकाओं को आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन की शिक्षा दें, जिन्होंने अछूते कुसुम की तरह जीवन के आनन्द का अनुभव ही नहीं किया है; उन्हें विरक्ति की शिक्षा देना सम्भव नहीं, वरन् ध्येय होना चाहिए समाज द्वारा पीड़ित बहिनों की सहायता कर, उन्हें किसी सुपात्र के हाथों सौंप देना। इस कार्य में धन के व्यय के साथ ही साथ समाज के कोपानल में भुन जाने का खटका है। विधवा-विवाह के पृष्ठ-पोषक और उसके उत्साही कार्यकर्ता हो जाने के कारण तथा ऐसे विधवा-आश्रम निर्माण करने से भले ही समाज के कीटाणु इसको बुरी दृष्टि से देखें, पर यह बात निर्विवाद है कि इसकी आवश्यकता है और वह धन, जो इस कार्य में लगाया जायगा, एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करेगा।

देश के शतशः होनहार अनाथ बच्चे प्रति वर्ष ईसाइयों और मुसलमानों के शिकार हो जाते हैं! "बुभुक्षितः किं न करोति पापं" के अनुसार मैं उन बच्चों के माँ-बाप अथवा स्वयं बच्चों पर इसका दोषारोपण करने को तैयार नहीं। इन बच्चों की रक्षा का भार हिन्दू-समाज को अपने ऊपर ले लेना आवश्यक है। अगर हमारी जाति इन बच्चों की रक्षा न करेगी तो वह समय शीघ्र आएगा जब सारी जाति का नाश हो जायगा! इस भाँति रक्षा के नाते अभी इस दुर्दिन के प्रभात में ही चेत जाना अच्छा है। अनाथालयों के कार्य में बड़े धन की आवश्यकता है। बच्चों का लालन-पालन, भोजन-वस्त्र और शिक्षा का प्रबन्ध इत्यादि सभी अनाथालय पर

विधवा जापानी महिला मिसेज़ योने सुज़ुकी

आप इस समय संसार भर में सब से धनाढ्य महिला समझी जाती हैं। आपके कारबार में लाखों आदमी काम करते हैं। संसार के सभी देशों में सुज़ुकी कम्पनी की शाखाएँ हैं। कहा जाता है कि इन्हें स्वयं अपनी पूरी सम्पत्ति का अन्दाज़ा तक नहीं है। महायुद्ध के दिनों में ये एक साधारण ठेकेदार का काम करती थीं। आप सामाजिक बन्धनों को तोड़ कर ही यह सारी सम्पत्ति कमा सकी हैं।

निर्भर है ! क्या हमारे देश के धनाढ्य कहाने वाले लाला और सेठ लोग इस ओर दृष्टिपात करने की कृपा करेंगे ?

कुमारी एस० श्रीनिवास गुरु

आप पालमकोटा (मद्रास) के स्कूलों की सब-असिस्टेण्ट इन्स्पेक्ट्रेस हैं। मद्रास-सरकार ने आपकी सेवाओं से प्रसन्न होकर टिनावेली की ज़िला-शिक्षा-समिति की सदस्या नियुक्त किया है।

यदि हमारी दानशैली का झुकाव इन सत्कर्मों की ओर होने लगे तभी उसको हम "देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं विदुः" के अनुसार ठीक कह सकते हैं !!

—शिवनारायण टण्डन

* * *

तमादी ख़ान्दान

इस परिवर्तनशील संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो समय के फेर में पड़ कर बदलती न हो। किसी-किसी वस्तु के सम्बन्ध में तो परिवर्त्तन का वेग इतना प्रबल होता है कि कुछ ही दिनों बाद परिवर्त्तित वस्तु की पहिचान भी कठिनता से हो पाती है। यह हर आदमी के अनुभव की बात है कि जो प्रथा पचीस-पचास वर्ष पूर्व अच्छी समझी जाती थी, वह आज बुरी समझी जा रही है और ठीक इसके विपरीत, जो प्रथा पहले बुरी समझी जाती थी, वह आज अच्छी समझी जा रही है। प्रथा के बदलने के साथ-साथ उस प्रथा के अनुसार चलने वाले लोग भी समाज में अच्छे से बुरे और बुरे से अच्छे समझे जाने लगते हैं। पर समाज की व्यावहारिक दशा में इस पिछले परिवर्त्तन के स्वीकार होने में अपेक्षाकृत बहुत आगा-पीछा किया जाता है जिससे समाज की प्रगति में अड़चनें पैदा होती हैं। इसी कारण जिस समाज को स्वभावतः किसी सुधार में १० वर्ष पहले अग्रसर होना चाहिए था, वह पिछड़ा हुआ दीखता है, और जिस समाज को सामाजिक प्रतिष्ठा की सीढ़ी पर दस क़दम नीचे गिर जाना चाहिए था, वह ऊपर ही बैठा रह जाता है। यह मन्द गति समाज के पङ्गु होने का लक्षण है। क्रान्तिकारी समाजों में ऐसी अस्वाभाविक बातें नहीं पाई जाती हैं। भारतवर्ष में इधर कई शताब्दियों से कोई व्यापक क्रान्ति नहीं हुई है। परन्तु इस समय सारे संसार में क्रान्ति ही क्रान्ति दृष्टिगोचर हो रही है। ऐसी आशा की जाती है कि भारतवर्ष भी इस सर्वतोमुखी क्रान्ति से सब प्रकार का लाभ उठावेगा।

मैंने बहुधा अपने वकील मित्रों को किन्हीं-किन्हीं पुराने वकीलों और मुख़्तारों के विषय में यह कहते सुना है कि अमुक तमादी वकील हैं, अमुक तमादी मुख़्तार हैं। पूछने पर इसका आशय उन्होंने यह बतलाया कि पिछले समय उन लोगों की अपने पेशे में ख़ूब चलती थी, पर अब उन्हें कोई पूछता भी नहीं है।

उपर्युक्त तात्पर्य की सदृशता पर मैंने तमादी ख़ान्दान शब्द का भी प्रयोग करना सोचा है। 'चाँद' के विज्ञ पाठक-पाठिकाओं को इस बात का अनुभव होगा कि इस देश में हर जाति और हर वर्ण में कुछ ऐसे परिवार हैं, जो चिरकाल से किन्हीं विशेष गुणों के कारण अपने समाज में ख़ान्दानी अथवा कुलीन समझे जाते आ रहे हैं। वे विशेष गुण भिन्न-भिन्न दलों के लिए भिन्न-भिन्न रहे होंगे। सम्भव है, ब्राह्मणों में विद्या, सदाचार, कर्म-काण्डिता तथा सादगी आदि गुणों के कारण कुछ लोग

कुलीन समझे जाने लगे होंगे। क्षत्रियों में रणचातुरी, शूरता, गोब्राह्मण-पालकता, वैश्यों में कृषि और वाणिज्य-कुशलता और शूद्रों में द्विजाति-सेवा-दक्षता के कारण आरम्भ में लोग कुलीन समझे जाते होंगे। पर पीछे चल कर सब समाजों में धनाढ्यता भी कुलीनता का एक प्रधान कारण हो गई और इस देश में ज्यों-ज्यों पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव बढ़ता गया, त्यों-त्यों धन ही एकमात्र समाज में प्रतिष्ठा का कारण होता गया। फलतः आज इस देश में सर्वत्र धनिक लोग आदर के पात्र हो रहे हैं, चाहे उनमें लाखों दुर्गुण क्यों न भरे हों। विद्वत्ता और सच्चरित्रता का गौरव अपेक्षाकृत बहुत ही कम हो गया है। अस्तु—

जो लोग पहले से कुलीन कहलाते चले आ रहे थे, उनमें से सौ में नब्बे आजकल बड़ी हीन दशा में हैं। उनकी यह दुर्दशा अनेक कारणों से हुई होगी। प्रथम तो जिन गुणों के कारण उनकी कुलीनता थी, वे गुण या तो उनसे विदा हो गए होंगे अथवा समय के फेर से वे गुण वर्तमान समय में गुण न समझे जाकर दुर्गुण समझे जाने लगे होंगे और समय के विरुद्ध उन बातों में चिपके रहने से उनकी सारी शक्ति स्वभावतः नष्ट हो गई होगी। ऐसे लोगों की एकमात्र बची हुई पूँजी अब अपने बाप-दादों के गुण और बड़प्पन का बखान ही रह गई है। इसी के सहारे वे यत्र-तत्र अपने कुल का नाम बेच कर पेट पाल रहे हैं। समय के पीछे पड़े रहने से वे सर्वथा अकर्मण्य हो गए हैं। उनमें न किसी काम का हुनर है और न कोई ज़िम्मेदारी निबाहने का ढङ्ग। हाँ, अब भी उनका मन और जीभ वश में नहीं है। पास में फूटी कौड़ी भी नहीं, पर साँझ-सबेरे ऐशो-आराम का स्वप्न देखा ही करते हैं। कहीं से कुछ रुपए हाथ पड़ गए तो षट्रस भोजन की तैयारी हुए बिना नहीं रहती। ये लोग समाज के भार-स्वरूप हैं। इनसे किसी की चाकरी भी नहीं पार लगती। ये दिन-रात अपने भाग्य के लिए ही झक मारते रहते हैं। इनसे कोई विवाह-सम्बन्ध भी ख़ुशी से नहीं करना चाहता। इनकी बेटियों से ब्याह करना क्या है, अपने ऊपर जान-बूझ कर एक बला लादना है। क्योंकि जब इनके दिन अच्छे थे, तब इनके घरों में दास-दासियाँ ही घर के सारे काम करती थीं, अतः ऐसे घरों की लड़कियाँ स्वभावतः गृहस्थी के साधारण कामों में अल्हड़ रहा करती हैं। न उन्हें काम करने का ढङ्ग रहता है और न काम में उनका जी लगता है। उल्टे वे निकम्मी लड़कियाँ अपने गए-गुज़रे पीहर के बड़प्पन का बेतुका राग अलाप कर परिवार के लोगों का दिल जलाया करती हैं और घर की हर बात में छिद्र
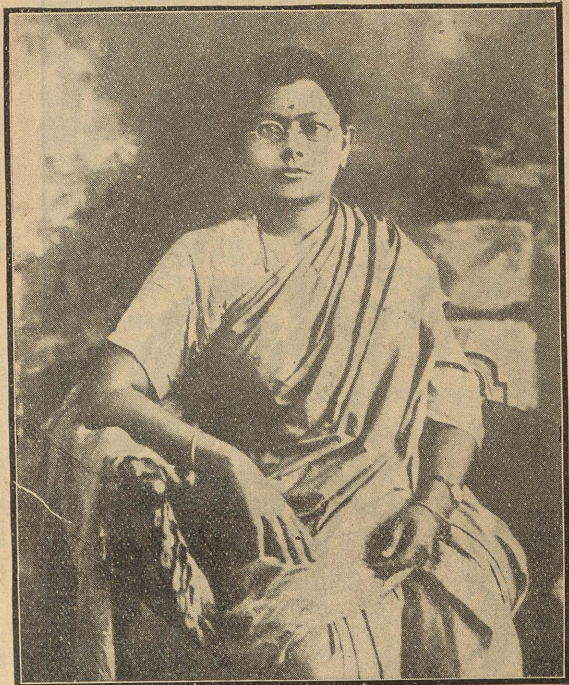
श्रीमती रङ्गनायकी अम्मल

आपको मद्रास-सरकार ने गोदावरी की ज़िला-शिक्षा-समिति की सदस्या नियुक्त किया है।

निकाला करती हैं। इस मनोवृत्ति का जैसा बुरा परिणाम होता है, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं अनुमान कर सकते हैं। बङ्गाल के कुलीन और मिथिला के बिकौआ ब्राह्मण इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। २० वर्ष पूर्व तक ये लोग बीस-बीस विवाह करते थे!! × × × इतर ब्राह्मण अपनी-अपनी कन्याओं को इन कुलीन बिकौआ महाशयों के गले मढ़ना अपना गौरव समझते थे। ये अभागी कन्याएँ आजन्म पीहर में ही ज़िन्दगी बिताती थीं और

दामाद महाशय साँड़ की तरह साल भर एक ससुराल से दूसरी ससुराल में विचरण करके मौज का स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करते थे ! अब उनके पाप का घड़ा भर गया और वे दर-दर के भिखारी हो रहे हैं। अब उन्हें कोई पूछता भी नहीं। एक विवाह भी होना अब उनके लिए दुर्लभ है ; ये हुए तमादी ख़ान्दान नम्बर एक !

कुमारी चन्द्रकान्ता डोशी, बी० ए०

आपने इसी वर्ष दर्शन-शास्त्र (Philosophy) जैसा गहन विषय लेकर बी० ए० पास किया है। आप काठियावाड़ की दूसरी महिला-ग्रेजुएट हैं। आप स्वर्गीय एम० एन० डोशी बैरिस्टरकी पुत्री हैं। आपके पिता राजकोट रियासत के दीवान थे।

यह हाल तो उन तमादी ख़ान्दान के लोगों का है, जिनके पास से लक्ष्मी बिदा हो चुकी हैं, और जिनकी संख्या लड़कों का विवाह न होने के कारण बड़े वेग से दिन-प्रतिदिन घट रही है। यदि भगवान् ने चाहा तो शीघ्र ही देश इस भार से मुक्त हो जायगा। इन सत-युगी वैशाख-नन्दनों की स्मृति शेष होने के दिन अब इने-गिने प्रतीत होते हैं। पर अधिक भार तो वे कुलीन लोग हैं, जिनके पास अभी तक कुछ धन शेष रह गया है। जिसके बल पर उन्होंने अभी २०-२५ वर्षों तक अपनी बेढङ्गी चाल से इस दुनिया में चहल-क़दमी करने का ठेका ले रक्खा है। जिन गुणों के कारण ये बड़े गिने गए थे, वे तो इनसे बिदा हो ही चुके हैं। आजकल इनमें संसार के सारे दुर्गुण भरे हुए हैं, इनके हर एक व्यवहार में आप मिथ्यापन पाइएगा। इनका आहार मिथ्या, इनका विहार मिथ्या और इनका सारा बर्त्ताव मक्कारी और ढकोसलों से भरा हुआ है, सिर से पाँव तक तामसिकता व्यापी हुई है, सात्विकता का कहीं नाम नहीं है !!

डींग हाँकने और आत्मश्लाघा में ये अपना सानी नहीं रखते। अपने बड़प्पन के मुक़ाबले अपने समाज के इतर लोगों को नीचातिनीच बतलाने में ये अपना गौरव और अपने हाथ से काम करने में अपनी मानहानि समझते हैं। बहुतों को तो नौकर ही धोती भी पहिनाते हैं; इनके सारे काम दास-दासियाँ ही करते हैं, जिनकी संख्या आवश्यकता से अत्यधिक रहा करती है। दासों के परिवार कुल-क्रमागत इनके आश्रम में दी हुई जागीर में बसे हुए हैं। कहीं-कहीं दासियों के साथ व्यभिचार भी किया जाता है, क्योंकि इस तमादी ख़ान्दान के लोगों में अधिकतर लोग मूर्ख और चरित्र-भ्रष्ट ही पाए जाते हैं। कितने तो खुले तौर से शराबी और वेश्यागामी हैं। इनकी दिनचर्या यही रहा करती है कि प्रातःकाल दिन चढ़े आठ-नौ बजे बिस्तर से उठते हैं। जिन्हें तम्बाकू पीने की आदत है, वे एक-आध घण्टा सटक की शोभा बढ़ा कर नित्य-कर्म में लग जाते हैं। कोई-कोई नौकरों पर रोब जमा कर अपने जीते रहने का सुबूत देकर स्नान-भोजन में प्रवृत्त होते हैं। स्नान के पहले घण्टों तक उनके कोमल शरीर पर कई नौकर तेल मलते हैं। इनमें बहुत से ढोंगी धार्मिक भी होते हैं, जो घण्टों तक बड़े आडम्बर के साथ पूजा करने में लगे रहते हैं। पूछा जाय तो एक भी मन्त्र का शुद्ध उच्चारण उनके मुख से होना सम्भव नहीं। पर उनसे कौन पूछ सकता है ? उनके दरबार में पण्डित भी रहा करते हैं, जो बाबू साहब की हाँ में हाँ मिलाना और उन्हें 'धर्मावतार' बतलाना ही अपनी रोज़ी के लिए काफ़ी समझते हैं। हाँ, कभी-कभी बाबू साहब की जन्म-

कुण्डली देख कर उसमें के अशुभ योगों के बतलाने में वे नहीं चूकते, जिनकी शान्ति करने में उन्हें कुछ हाथ लगे बिना नहीं रहता। इधर तो अगले साल महाजन के तमस्सुक की मियाद पूरी होने को है और वह सारी जायदाद नीलाम कराने वाला है; और उधर बाबू साहब कुण्डली के ज़ोर पर सारे संसार का राज्य पाने का मनसूबा बाँध रहे हैं। अस्तु—

नित्य-कर्म, स्नान तथा भोजन के बाद जो समय बचता है, उसे दिन में सोकर अथवा यारों के साथ चौपर-शतरञ्ज, ताश और गञ्जीफ़ा खेलने में बिताते हैं। ये समय पर कभी भोजन नहीं करते, दिन-रात में बहुधा ये तीसरे पहर ही भोजन करते हैं। घास की तरह सदा पान और ज़र्दा चबाते हैं। इस मिथ्या आहार-विहार का स्वास्थ्य पर जो परिणाम होना चाहिए वही होता है। इनमें बहुतों की तोंद फूली रहती है। पर सब के सब रोगों के अड्डे बने रहते हैं।

स्त्रियाँ भी प्रदर, गुल्म आदि नाना रोगों से ग्रस्त रहा करती हैं। फलतः एक-एक पुरुष के तीन-तीन, चार-चार विवाह करने पर भी निस्सन्तान होना साधारण-सी बात हो गई है। सन्तान उत्पन्न नहीं होती, सो बात नहीं है, परन्तु रुग्ण माता-पिता के रजोवीर्य से उत्पन्न सन्तान गर्भ में अथवा शैशव काल में ही प्रायः काल-कवलित हो जाती है। डॉक्टर-वैद्य और ओझा-गुणी भी अपने क़दम से इनके घरों को सदा सरसब्ज़ करते रहते हैं। इन्हें तो रुपए से काम। आख़िर मूर्खों का रुपया जायगा किस काम में?

ये हुए तमादी ख़ान्दान नम्बर दो। इन्हें संसार की स्थिति की कोई ख़बर नहीं। इनका संसार तो अपने मुसाहिबों से घिरा हुआ अपने दरबार तक ही रहता है। ये ख़ुशामदी मुसाहिब दिन को रात और रात का दिन बना कर बाबू साहब को ख़ुश किए रहते हैं।

ये लोग समाज-सुधार अथवा देश के उत्थान में भारी बाधक हैं। अभी तक समाज में उनकी मिथ्या प्रतिष्ठा है। उनके रहन-सहन को लोग अभी अपने लिए अनुकरणीय समझ रहे हैं। परदे की सत्यानाशी प्रथा का मज़बूत क़िला इन्हीं पुराने गए-गुज़रे लोगों के घर है। छोटी-छोटी बच्चियाँ भी चहार-दीवारी से बाहर पैर नहीं रख सकतीं। जितनी कड़ाई से जो परदा रखता है, उतना ही ख़ान्दानी वह समझा जाता है! समाज के इतर लोगों के घर जाना ये लोग अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते हैं। समाज में बड़े-छोटे का भेद अधिकाधिक बढ़ा कर क़ायम रखना ये अपने जीवन का ध्येय समझे हुए हैं। इनके पड़ोस के किसी साधारण परिवार का जब कोई नवयुवक कुछ पढ़-लिख कर आगे बढ़ता है तब ये ईर्ष्या से जलते हैं और हर प्रकार उसके मार्ग में रोड़े अटकाना ये अपना कर्त्तव्य समझते हैं। सामाजिक क्षेत्र में काम करने वालों का इनके साथ प्रायः सङ्घर्ष हुआ करता है, और इनके व्यवहार का उन्हें कटु-अनुभव भी होता है। ऐशो-आराम और बन्धु-विरोध के कारण मुक़दमे-बाज़ी में भी इनका बहुत धन व्यर्थ ख़र्च होता है। इन कर्त्तव्यहीन, अकर्मण्य बाबुओं द्वारा नौकरशाही और ख़ास कर पुलिस को जनता के ऊपर धाँधली करने का बड़ा सुभीता है। समय बे-समय लाट और कमिश्नर आदि को अभिनन्दन-पत्र देने में चालाक लोग इन्हें अपना हथियार बनाकर अपना मतलब गाँठते हैं। संक्षेप में मतलब यह कि देश और समाज में अब इनकी कोई उपयोगिता नहीं रह गई है। ये सब प्रकार से भार हो रहे हैं और जितना शीघ्र इनका ख़ात्मा हो जाय, देश के लिए कल्याणकारक होगा। यद्यपि २०-२५ वर्षों में आप से आप इनका अस्तित्व मिट जायगा, पर देश के सुधार में एक-एक दिन का विलम्ब असह्य हो रहा है। अतः जनता का परम कर्त्तव्य है कि मिथ्यापन से भरे हुए इनके आचरणों का अनुकरण न करके समय के साथ चलने वाले विचारशील लोगों का अनुकरण करे। रूस और इटली आदि देशों में प्रचलित साम्यवाद का जब भारत के सम्बन्ध में स्मरण होता है, तब भारत के लिए इसकी उपयोगिता के विषय में सन्देह रखते हुए भी, देश के इन व्यर्थ और रुग्ण अङ्गों को काट कर फेंकने के लिए, उत्कण्ठा के साथ इसके आगमन की प्रतीक्षा कौन देश-हितैषी नहीं करता?

—रामनिरीक्षणसिंह, एम० ए०, काव्यतीर्थ

[ले० श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

[गताङ्क से आगे]

लतखोरी लाल

द्रौपदी ने भी अपनी लाज की रक्षा के लिए कृष्ण जी को इतनी जल्दी-जल्दी और इतनी बार न पुकारा होगा, जितनी शीघ्रता से और जितनी दफ़े गुण्डों के बीच में इक्के पर बैठा हुआ मैं ईश्वर की गुहार लगा रहा था। इस मामले में मैं बिलकुल हिसाब की लिखावट के क़ायदे पर चल रहा था। क्योंकि अगर एक दफ़े दहाई के स्थान पर उनका नाम लेता था तो दूसरी बार सिफ़र की जगह पर उन्हें याद करता था। इस तरह से दो दफ़े में दस तो तीन दफ़े में पूरे एक सैकड़े पर छलाँग मार देता था। तभी उन्होंने मेरी विनती भी इतनी जल्दी सुन ली और मेरे उद्धार के लिए झट एक कण्ठीधारी वृद्ध धर्मात्मा मेरे रास्ते में न जाने कहाँ से टपका दिया। उसने आते ही इक्केवान को डाँट बताई और गुण्डे इक्के पर से कूद-कूद कर एकदम हुर्रं हो गए।

मैं मूँछों पर ताव देता हुआ—नहीं, नहीं, घूँघट सँभालता हुआ उतरा और ईश्वर को बड़ा लम्बा-चौड़ा धन्यवाद दिया—इसलिए कि उन्होंने बुड्ढों को पैदा करके दुनिया का सचमुच बड़ा उपकार किया, वरना जवानों के मारे यह न बचती। ये लोग कभी के इसे चर गए होते। इसी लिए तो जवानी दीवानी कही जाती है।

वृद्ध महाशय पग-पग पर सीताराम-सीताराम करते चले और मैं भी जिस तरह से विलायती पिल्ला देशी कुत्तों के डर के मारे दुम सिकोड़े अपने मालिक के क़दमों से मिला चलता है, उसी तरह उनके पीछे हो लिया। फिर तो वह मेरे धर्म-पिता और मैं उनकी धर्म-पुत्री बन गया। और मैं उन्हें बाबा और वह मुझे बड़े दुलार से बेटी कहने लगे।

वह एक मकान के तीसरे मञ्ज़िल पर रहते थे। इसलिए वहीं जाकर मुझको भी रहना पड़ा। ऐसे वृद्ध और भलेमानुस रक्षक पाकर मैं भला उनका साथ किस तरह छोड़ सकता था? अगर वह मुझे अपने मकान में आश्रय न भी देते तो भी मैं उनके पैरों पर रो-रोकर उनकी शरण में रहने को कहता। मगर सौभाग्य से इस बात की नौबत ही नहीं आई। वह बेचारे ख़ुद ही मुझे बड़े आग्रह से अपनी रक्षा में रखने को तत्पर हो गए।

क्यों न हों ? दुनिया ख़राब होने पर भी परोपकारी लोग मिल ही जाते हैं। वरना दुखियों का बेड़ा कौन पार लगावे, इसलिए उनकी शरण पाकर मैं निहाल हो गया।

उस मञ्ज़िल में रहने के लिए सिर्फ़ एक ही कमरा था। उसके आगे एक छोटा-सा बरामदा था, जिसमें चूल्हा देख कर जाना कि वह रसोई-घर का काम देता है। उसके बाद थोड़ी सी खुली जगह थी। उसी में दो छोटी-छोटी कोठरियाँ थीं, जिनमें से एक ग़ुसलख़ाना और दूसरा टट्टी-घर ऐसा दिखलाई पड़ा। मुझे दाढ़ी बनाने और रूप सँवारने के लिए रोज़ ही एकान्त की ज़रूरत थी, जिसके लिए ग़ुसलख़ाना बहुत ही ठीक मालूम हुआ। यह सब देख-भाल कर मैंने दिल में ठान लिया कि मेरे बाबा अब अगर मुझे निकालेंगे भी तो मैं यहाँ से न निकलूँगा।

कमरे में दो चारपाइयाँ थीं। एक पर तो थकावट के मारे मैं ख़ूब सिकुड़ कर सो गया। मेरे बाबा बड़े धर्मात्मा और पुजारी थे। बिना साढ़े पन्द्रह हज़ार राम-नाम जपे सोते न थे। इसलिए वह बड़ी सी माला लेकर आँख बन्द किए हरिनाम भजने लगे। मेरी चारपाई न जानें क्यों चरमरा उठी और मेरी आँख खुल गई। देखा कि मेरे बाबा मेरे पायताने बैठे हैं। मैंने तुरन्त अपनी टाँगें खींच लीं।

बाबा—काहे बिटिया ? नींद नहीं पड़ती ? सो रहो मुन्ना !

मैं—मगर आप तो जाग रहे हैं।

बाबा—यह बात है ? अच्छा, तो लो मैं भी सोये जाता हूँ।

यह कह कर वह मेरी ही बग़ल में लुढ़क गए। अब मुझे मालूम हुआ कि यह चारपाई उनकी थी और इस पर ग़लती से मैं लेट गया था। इसी ग़लती को बेचारे ने मुझे इस सुन्दर तरकीब से जतलाई। वरना वह मेरा हाथ खींच के उठा सकते थे और हुक्म देते कि जा उस पर लेट। मगर नहीं, वह तो करुणा के रूप थे। भला उनसे कहीं ऐसा बेतुकापन हो सकता था ?

मैं एक ही छलाँग में चारपाई के नीचे आ गया। वैसे ही वे भी हड़बड़ा के उठ बैठे और घबड़ा के बोले—अरे ! क्या हुआ, क्या ?

मैं—कुछ नहीं।

बाबा—तब कहाँ जाती हो ?

मैं—माफ़ कीजिए, मुझे मालूम न था कि आप इस चारपाई पर सोते हैं। मैं उस पर जाता—अरे ! जाती हूँ।

बाबा—मगर-मगर-मगर उसमें बहुत खटमल हैं। इसी पर सो रहो बेटी।

जब तक वह 'मगर-मगर' करते रहे, तब तक मैं दूसरी चारपाई पर लेट गया। पर उनकी परोपकारी आत्मा की सच्चे दिल से मैं तारीफ़ करने लगा, क्योंकि बेचारे मुझे खटमलों की तकलीफ़ से बचाने की ख़ातिर अपने साथ सुलाने का कष्ट तक गवारा करने को तैयार हो गए। क्यों न हों, अगर कोई किसी पर भलाई करे तो इस तरह करे। ईश्वर ऐसे पुण्यात्माओं को स्वर्ग में फ़र्स्ट क्लास कम्पार्टमेण्ट दे।

मेरी तकलीफ़ का अनुमान करके उन्हें नींद न पड़ी। इसलिए वह ख़ुद उठ कर मेरे पास आए और बड़े लाड़-प्यार से बोले—बेटी, तुम तो नाहक़ ज़िद करती हो। भला खटमलों के मारे तुम्हें नींद कैसे पड़ेगी ? अच्छा, ठहरो मैं तुम्हारे पैर दाब दूँ। ताकि किसी तरह तुम्हारी आँख तो लगे। नहीं तो मुझे चैन न आएगा।

यह कहकर वह मेरी टाँगें दबाने लगे। मैंने उनका हाथ पकड़ कर मना किया—राम ! राम ! आप यह क्या कर रहे हैं।

बाबा—बेटी ! अतिथि की सेवा करना परम धर्म है। धर्म पालन करने का ऐसा सुअवसर पाकर अगर छोड़ दूँगा तो नरक में भी मुझे स्थान न मिलेगा।

उफ़ ओ ! धर्म का इतना ख़्याल भला इस कलजुग के ज़माने में किस मर्दूद को हो सकता है ? यह मेरी तक़दीर की ख़ूबी थी, जो मुझे यह सज्जन मिले। आदमी काहे को—वह मुझे साक्षात् देवता जान पड़े। फिर ऐसे धर्मात्मा से पैर दबवाना मुझे कैसे अच्छा मालूम हो सकता था ? उस पर डर यह भी तो था कि उनके पास ज़्यादा देर तक रहने से कहीं मेरा भण्डा न फूट जाय। इसलिए मैं जल्दी से दूर खिसका, और हाथ जोड़ कर बोला—मगर आप ऐसे बुज़ुर्ग से पैर दबवा कर मैं तो नरक में चली जाऊँगी।

बाबा—नहीं बेटी, तुम ऐसी सुन्दरियाँ वहाँ नहीं जा सकतीं। अगर जाने लगें तो वह नरक ही फिर काहे

को रहे, स्वर्ग न हो जाय। इसलिए हाथ जोड़ता हूँ, मुझे अतिथि-सेवा करने दो। अब बुढ़ापे में मेरा धर्म न बिगाड़ो।

बड़े घपले में जान पड़ गई। चौंक कर खिसकने में मेरा नक़ली बाल ज़रा सरक गया। मेरे प्राण सूख गए। जल्दी से घूँघट काढ़ के मैं चारपाई पर से कूदा। इस उचक-फाँद में कम्बख़्त चोली भी ढीली हो गई। अब भला मैं उन्हें धर्म पालन करने का अवसर किस तरह दे सकता था? इसके लिए उनके नरक जाने का मुझे अफ़सोस तो ज़रूर था—मगर करता क्या? विवश होकर मुझे उनके पास से दूर भागना पड़ा। इस भगदड़ में ताक़ से चिराग़ गिर पड़ा और कमरा बिलकुल अन्धकारमय हो गया।

(क्रमशः)

सिन्दूर

[रचयिता—श्री० नृसिंह पाठक जी 'अमर' विशारद]

(१)

हे सौभाग्य-सहोदर गुणयुत,
लाल रङ्ग धारी गुणवान्।
सुन्दर, मनहर सुषमायुत, मृदु,
शोभाशाली सुभग महान्॥

(२)

ललना के सौभाग्य-चिन्ह हो,
युवती-जन का सच्चा प्यार।
अचल सुहाग भरा है तुममें,
रमणी सर्व-श्रेष्ठ शृङ्गार॥

(३)

तेरे सिर से मिट जाने से,
आशङ्का होती तत्काल।
तेरे बिना दीख पड़ता है,
राज्य विधवपन का विकराल॥

(४)

ब्याह-काल में जब 'वर' तुमको,
कन्या के सिर पर देते।
कैसे भाव निरन्तर उठते,
प्रेमपूर्ण मन कर देते॥

(५)

काले-काले केश पास में,
रहते सदा परम छविमान।
सतियों के सारे क्लेशों का,
तुम्हें देख होता अवसान॥

(६)

हो सुहाग की वस्तु मनोहर,
रमणी करती प्यार अपार।
तुममें अन्तर्हित है कैसा,
विमल भाव नूतन शृङ्गार॥

(७)

भारत-ललना के मृदु सहचर,
सजे रहो सिर पर सब काल।
भाग्यवती वे रहें निरन्तर,
होती रहें सदैव निहाल॥

कर्तव्य-पालन

[ले० श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

छः महीने हुए, मैं हरद्वार गया था। वहाँ मैं अपने एक मित्र के मकान पर ठहरा। मुझे साधु-सन्तों से मिलने का बहुत शौक़ है। मैंने अपने मित्र से पूछा—कहो भई, यहाँ कोई अच्छे महात्मा भी हैं?

मेरे मित्र ने हँस कर कहा—क्यों, महात्माओं से मिलने का शौक़ क्यों चर्राया?

मैंने कहा—तुम तो जानते हो कि मुझे यह पुराना शौक़ है और मैं महात्माओं की तलाश में रहता हूँ।

"हाँ, पर आज तक कोई तुम्हें मिला भी?"

"मिले तो बहुत, पर अभी तक कोई ऐसा न मिला जिससे मिल कर चित्त प्रसन्न होता।"

"तुम कैसा महात्मा चाहते हो?"

"अब यह मैं कैसे बताऊँ। महात्मा होना चाहिए। महात्मा के जो अर्थ हैं—महात्मा की जो परिभाषा है—वैसा होना चाहिए। सीधा-सच्चा आदमी हो, ढोंगी न हो।"

मेरे मित्र ने गम्भीर होकर कहा—ऋषिकेश में एक नए साधु आए हैं। वह अच्छे आदमी मालूम होते हैं। पहले वह पुलीस में सब-इन्सपेक्टर थे, पर उन्होंने पुलीस की नौकरी छोड़ कर संन्यास ले लिया। उन्होंने पुलीस की नौकरी क्यों छोड़ी और संन्यास क्यों लिया, इसका कारण किसी को नहीं मालूम। दो-एक आदमियों ने उनसे पूछा भी; पर उन्होंने केवल हँस कर टाल दिया, किसी को बताया नहीं। तुम्हारी इच्छा हो तो उनसे मिल लो।

मैंने कहा—मैं उनसे अवश्य मिलूँगा और उनके संन्यास लेने का कारण भी पूछूँगा।

"वह बतावेंगे नहीं।"

"अवश्य बतावेंगे।"

"यदि तुम उनसे पूछ लो तो मैं तुम्हें कुछ इनाम दूँ।"

"अच्छा स्वीकार है। यही सही, बोलो क्या दोगे?"

"मिठाई खिलाऊँगा।"

"वाह! इतना बड़ा काम करूँगा और इनाम में केवल मिठाई! मिठाई तो मैं रोज़ ही खाता हूँ।"

"उस मिठाई की बात ही दूसरी होगी।"

मैंने कहा—ख़ैर, यह तो सब मज़ाक़ की बातें हैं, मैं उनसे अवश्य मिलूँगा।

"अच्छी बात है, कब मिलोगे?"

"जिस दिन तुम्हें अवकाश हो।"

"तो क्या मुझे भी चलना पड़ेगा?"

"अवश्य!"

"अच्छी बात है, तो परसों चलो।"

"किस समय?"

"सवेरे ही चलेंगे, दूसरे दिन लौट आवेंगे।"

मैंने इसे स्वीकार किया।

नियत दिन आने पर हम लोग प्रातःकाल ही एक ताँगा लेकर ऋषिकेश की ओर चले। बारह बजे दिन के लगभग हम लोग ऋषिकेश पहुँच गए। वहाँ पहुँच कर पहले तो स्नान किया। तत्पश्चात् भोजन करके महात्मा से मिलने के लिए चले। उत्तर दिशा की ओर पहाड़ के बिलकुल नीचे एक फूस की झोपड़ी थी। इसी झोपड़ी में उक्त महात्मा जी रहते थे। जिस समय हम उनके पास पहुँचे, वह दो-तीन आदमियों से बातें कर रहे थे। हम दोनों उन्हें प्रणाम करके चुपचाप एक ओर बैठ गए। जब अन्य व्यक्ति चले गए और केवल हम ही दोनों रह गए तो उन महात्मा ने हमारी ओर देखकर कहा—कहिए, आप लोग कहाँ से आए हैं?

मैंने उत्तर दिया—यह मेरे मित्र तो हरद्वार ही में रहते हैं और मैं लखनऊ से आया हूँ।

महात्मा मुस्करा कर बोले—इधर घूमने-फिरने आए होंगे?

मैंने कहा—आया तो मैं हरद्वार तक ही था; पर आपका नाम सुन कर मुझे यहाँ भी आना पड़ा।

"मेरा नाम सुनकर!"

"जी हाँ।"

"मैं तो ऐसा आदमी नहीं हूँ, जो मेरा नाम ऐसा विख्यात हो।"

"हमारे लिए तो आप ऐसे ही हैं।"

"आप क्या करते हैं?"

मैंने पूर्व-निश्चय के अनुसार उत्तर दिया—मैं पुलीस-ट्रेनिङ्ग में हूँ।

पुलीस-ट्रेनिङ्ग का नाम सुनते ही उनका मुख गम्भीर हो गया। कुछ क्षणों तक सोचने के पश्चात् उन्होंने कहा—क्यों, आपको कोई अन्य व्यवसाय न सूझा। पुलीस-ट्रेनिङ्ग में क्यों गए?

"माता-पिता की इच्छा ऐसी ही थी।"

महात्मा ने कहा—यदि आप मेरी सलाह मानें, तो पुलीस की नौकरी कदापि न करें।

"क्यों?"

"इसका कारण है। मैं स्वयम् पुलीस में था और पुलीस की नौकरी में मुझे जो अनुभव हुए हैं, उनके बल पर मैं आपसे कहता हूँ कि आप पुलीस में नौकरी करने की इच्छा छोड़ दें। पुलीस में सहृदय आदमी का काम नहीं है। उसमें वही आदमी निभ सकता है जो हृदयहीन हो।"

"सम्भव है, आपका कथन ठीक हो, पर पुलीस के सभी व्यक्ति हृदयहीन नहीं होते।"

"जो नहीं होते वह उसमें अधिक दिन नहीं टिकते। टिकते वही हैं जिनका हृदय पत्थर का होता है।"

"जहाँ कर्त्तव्य-पालन का प्रश्न होता है, वहाँ मनुष्य को हृदयहीन बनना ही पड़ता है।"

"निस्सन्देह! इसी लिए तो मैं कहता हूँ कि उसमें सहृदय का काम नहीं है।"

"कर्त्तव्य-पालन तो कोई बुरी बात नहीं है।"

"कर्त्तव्य-पालन शब्द कहने-सुनने में तो बड़ा सीधा और सच्चा शब्द है—ऐसा शब्द, जिसके विरुद्ध कुछ कहा ही नहीं जा सकता। पर अनुभव में ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब कर्त्तव्य-पालन बहुत ही घृणित मालूम पड़ता है।"

"क्या आप इसका कोई उदाहरण दे सकते हैं?"

"उदाहरण एक नहीं, बीसों हैं!"

"कृपया कोई बताइए।"

महात्मा जी मौन होकर कुछ देर सोचते रहे, तत्पश्चात् एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर बोले—मैं एक अपना निज का अनुभव आपको सुनाता हूँ। यद्यपि मैं वह बात किसी को बताना नहीं चाहता था और न आज तक मैंने किसी को बताई, पर अब प्रसङ्ग ऐसा आगया है कि बिना बताए नहीं बनता, इसलिए बताता हूँ। सुनिए:—

२

मैंने पन्द्रह वर्ष तक पुलीस में नौकरी की है। मैं अनेक स्थानों में रहा और बड़े-बड़े विचित्र मामले देखे, पर एक मामला मेरे साथ ऐसा हुआ कि उसी दिन से मुझे पुलीस की नौकरी से घृणा होगई और मैंने पुलीस की नौकरी छोड़ दी। उस घटना से मुझे केवल पुलीस की नौकरी से ही नहीं, वरन् संसार से ही अरुचि होगई। मैं सन् × × × में × × × ज़िले के सुन्दरपुर थाने में तैनात था। एक रोज़ मुझे रिपोर्ट मिली कि चन्दनपुर ग्राम में एक अहीर की हत्या होगई है। मैं तुरन्त घटना-स्थल पर पहुँचा और तहक़ीक़ात आरम्भ कर दी। तहक़ीक़ात से मुझे पता लगा कि हत्या के दिन से गाँव का एक अहीर ग़ायब है। उसका नाम कालका है। मुझे यह भी मालूम हुआ कि जिसकी हत्या हुई है, उसकी स्त्री पन्द्रह रोज़ पहले कुएँ में गिर कर मर गई थी। मुझे उसके कुएँ में गिरने की रिपोर्ट मिली थी। उस समय गाँव वालों ने यह कहा था कि वह स्त्री कुएँ पर पानी भरने गई थी और पैर फिसल जाने पर कुएँ में गिर पड़ी। मैंने यही बात रोज़नामचे में दर्ज कराकर मामले को छोड़ दिया था।

दो दिन तक तहक़ीक़ात करने पर मुझे पता लगा कि जो अहीर गाँव से ग़ायब है, वह मृत व्यक्ति की स्वर्गीय पत्नी से स्वयम् विवाह करना चाहता था। पर स्त्री के पिता ने उससे विवाह न करके, मृत-व्यक्ति के साथ उसका विवाह किया था, क्योंकि वह अधिक मालदार था। इससे मैंने निष्कर्ष निकाला कि इस हत्या में भागे हुए कालका का कुछ न कुछ हाथ अवश्य है, इसलिए सबसे पहले मैंने कालका की तलाश आरम्भ की। मैंने आस-पास के थानों में कालका का हुलिया इत्यादि सब भेज दिया और उसकी तलाश रखने के लिए सबको आदेश दे दिया।

हत्या के पश्चात् पन्द्रह दिन व्यतीत हो गए; पर कालका का कुछ भी पता न चला। अब मुझे बड़ी

चिन्ता हुई कि मेरे रहते हुए ख़ूनी साफ़ निकल गया। मैंने भी प्रतिज्ञा की कि चाहे जो हो, मैं उसका पता लगा कर ही छोड़ूँगा। इसके लिए मैंने आस-पास के गाँवों के चौकीदारों पर सख़्ती करना आरम्भ किया, जिसमें वह इस सम्बन्ध में पूरा प्रयत्न करें।

लगभग बीस दिन व्यतीत होने के पश्चात् थाने में एक गाँव का चौकीदार आया और उसने रिपोर्ट दी कि उसके गाँव के पास जङ्गल में दो मुसाफ़िरों को एक व्यक्ति ने लूट लिया और जङ्गल में घुस गया। मैंने उस चौकीदार से पूछा—वह मुसाफ़िर कहाँ हैं ?

चौकीदार ने कहा—उनमें का एक आदमी मेरे साथ रिपोर्ट लिखवाने आया है।

मैंने उस आदमी को बुलवाया और उससे डाकू का हुलिया पूछा। उसने जो कुछ बताया, उससे मुझे विश्वास हो गया कि वह डाकू अन्य कोई नहीं, वरन् वही कालका है, जिसकी मुझे तलाश है।

मैं उसी समय तीन-चार कॉन्सटेबिलों को लेकर बताए हुए स्थान की ओर चल दिया। वहाँ पहुँच कर पहले मैंने उस स्थान को देखा, जहाँ मुसाफ़िर लूटे गए थे और फिर जिस ओर मुसाफ़िरों ने डाकू को जाते देखा था, उसी ओर प्रस्थान किया।

जङ्गल बड़ा बीहड़ था, अतएव मैंने अपना घोड़ा तो चौकीदार के हाथ वापस कर दिया और पैदल ही आगे की ओर बढ़ा। लगभग एक मील चलने पर मैंने एक स्थान पर आग के चिन्ह पाए। ऐसा मालूम होता था कि उस स्थान पर किसी ने रात काटी है और भोजन बना कर खाया है। यह देखकर मुझे विश्वास हो गया कि कालका इसी जङ्गल में है। अतएव उसके पैरों के चिन्ह देखते हुए हम लोग आगे बढ़े। लगभग दो मील पर फिर वैसे ही चिन्ह मिले। इसी प्रकार हम लोग दिन भर चले। रात हो जाने पर हम एक स्थान पर ठहर गए और वहीं रात काटी, प्रातःकाल फिर चले। इसी प्रकार हम दो दिन तक उसका पीछा करते रहे। हम लोगों को यह ज्ञान नहीं था कि हम लोग बस्ती से कितनी दूर हैं और किस ओर हैं। हमारे चारों ओर घना जङ्गल था। तीसरे दिन कॉन्सटेबिलों ने कहा—"सरकार, पता नहीं वह किधर हो, इस तरह कब तक मारे-मारे फिरेंगे ? हमारी तो सलाह यह है कि लौट चलिए।" परन्तु मुझे विश्वास था कि यदि कालका का पीछा छोड़ दिया गया तो फिर उसका मिलना कठिन हो जायगा, अतएव मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया कि जब तक मैं कालका को गिरफ़्तार न कर लूँगा, तब तक वापस न जाऊँगा। इस पर कॉन्सटेबिल बहुत बड़बड़ाए, पर उन्हें मेरी आज्ञा माननी पड़ी।

तीसरे दिन रात के समय जब हम लोग आग जलाए बैठे हुए थे, एक कॉन्सटेबिल हठात् बोल उठा—"यह आग कहाँ जल रही है।" हम सब लोगों ने चौंक कर उस ओर देखा। हमारे स्थान से लगभग दो-तीन फ़र्लाङ्ग की दूरी पर आग जल रही थी। मैं तुरन्त उठ खड़ा हुआ। मैंने कहा—निश्चय, यह आग कालका के स्थान पर है। मैं चुपचाप दबे पैरों उस आग की ओर बढ़ा। मेरे पीछे-पीछे कॉन्सटेबिल भी चले। मैंने अपना पिस्तौल निकाल कर हाथ में ले लिया। हम लोग धीरे-धीरे जा रहे थे। रास्ते में एक नाला पड़ा। मैं उसके किनारे-किनारे जा रहा था कि हठात् मेरा पैर फिसला और मैं नाले में गिरते-गिरते बच गया; पर मेरा पिस्तौल मेरे हाथ से छूट कर नाले में जा गिरा। अँधेरे में उसका मिलना असम्भव हो गया। कुछ देर तक उसकी तलाश की; पर वह नहीं मिला। तब हम लोग उसकी तलाश छोड़ कर आगे बढ़े। अब हमारे पास कॉन्सटेबिलों के डण्डे के अतिरिक्त और कोई हथियार नहीं रह गया। यह देख कर मुझे चिन्ता हुई; परन्तु फिर यह सोचकर सन्तोष हुआ कि वह अकेला है और हम चार आदमी हैं—उसके पास भी अधिक से अधिक केवल एक लाठी ही होगी। यह सोच कर मैं आगे बढ़ता गया।

जब वह स्थान थोड़ी दूर रह गया, तो हमने देखा कि एक आदमी आग के पास सिर झुकाए बैठा है। हठात् एक कॉन्सटेबिल का पैर एक सूखी लकड़ी पर पड़ गया और उसके टूटने का शब्द इतने ज़ोर से हुआ कि उस व्यक्ति ने चौंक कर देखा। उसने हमें देख लिया, क्योंकि वह एकदम उठ कर भागा और अँधेरे में ग़ायब हो गया। मैंने कॉन्सटेबिल को उसकी असावधानी पर बहुत डाँटा ; पर वास्तव में वह बेचारा निरपराध था, अँधेरे में उसे क्या पता कि उसका पैर कहाँ पड़ता है। हम लोग उस स्थान पर, जहाँ वह व्यक्ति बैठा था, पहुँच कर वहीं रुक गए।

मैंने सोचा कि इस समय अँधेरे में उसका मिलना असम्भव है, अतएव रात इसी स्थान पार काट कर सवेरे फिर उसकी तलाश करना चाहिए। प्रातःकाल होने पर हम लोग आगे बढ़े। एक कॉन्सटेबिल ने कहा कि रात भर में वह न जाने कितनी दूर निकल गया होगा, परन्तु मुझे यह आशा नहीं थी। मैं जानता था कि ऐसे जङ्गल में आदमी रात में चल ही नहीं सकता। वह अवश्य रात भर कहीं आस-पास छिपा रहा होगा।

हम लोग थोड़ी ही दूर चले होंगे कि एक वृक्ष के नीचे से जाते हुए मेरी दृष्टि दैवयोग से ऊपर उठ गई। मैंने देखा कि एक आदमी उस वृक्ष पर चढ़ा बैठा है। मैंने उसे देखते ही समझ लिया कि हो न हो यह वही है। मैंने उससे कहा—"बस, अब तुम्हारी भागने की कोशिश बेकार है—चुपचाप उतर आओ।" परन्तु उसने मेरी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। यह देख कर मैंने कॉन्सटेबिलों को हुक्म दिया कि वृक्ष पर चढ़ जाओ और उसे पकड़ लो। मेरे आज्ञानुसार कॉन्सटेबिलों ने वृक्ष पर चढ़ना आरम्भ किया। यह देख कर कालका ने अपनी कमर से एक कुल्हाड़ी निकाल कर अपने हाथ में ले ली और कहा—जो मेरे पास आएगा, मैं इस कुल्हाड़ी से उसका सिर फाड़ दूँगा।

यह देख कर कॉन्सटेबिल उतर आए और बोले—सरकार, उसके हाथ में कुल्हाड़ी है, हम नहीं जायँगे।

मैंने भी सोचा कि कालका ख़ूनी है। उसके लिए दूसरा ख़ून कर देना कोई बड़ी बात नहीं। इसलिए बेचारे कॉन्सटेबिलों की जान क्यों ख़तरे में डाली जाय। मैंने कहा—अच्छा, इसी पेड़ के नीचे डेरा डाल दो। देखें यह कब तक ऊपर चढ़ा बैठा रहता है।

हम लोग उसी पेड़ के नीचे बैठ गए। कालका भी इतना हठी निकला कि एक दिन और एक रात पेड़ से नहीं उतरा। दूसरे दिन दोपहर के समय उसने पहले ऊपर से कुल्हाड़ी फेंक दी और फिर स्वयं उतरने लगा। हम लोग उठ कर खड़े हो गए और ज्योंही उसने नीचे भूमि पर पैर रक्खा त्योंही उसे गिरफ़्तार कर लिया। उसने पहले तो पीने के लिए पानी माँगा। पानी उसे दिया गया। पानी पीकर वह बोला—"मैंने तीन दिन से एक दाना भी मुँह में नहीं डाला। भूख के मारे मैं मरा जा रहा हूँ।" हम लोगों के पास भुने चने थे, वही उसे दिए गए।

अब सुनिए। उसको हथकड़ी लगाने के लिए जो कहा गया तो कॉन्सटेबिल अपनी जेबें टटोल कर बोला—सरकार हथकड़ी तो थाने में ही रह गई।

मुझे उस समय बड़ा क्रोध आया। मैंने कॉन्सटेबिलों को बुरा-भला कहना आरम्भ किया। यह देख कर कालका बोला—सरकार, आप हथकड़ी के लिए इतनी चिन्ता क्यों करते हैं। मैं अब भागूँगा नहीं। आपके साथ चुपचाप चला चलूँगा। मैं अहीर हूँ और गऊ माता की क़सम खाकर कहता हूँ कि मैं कभी नहीं भागूँगा, आप बेफ़िकर रहिए।

मैंने ध्यानपूर्वक देखा। उसके मुख का भाव देख कर मुझे विश्वास हो गया कि वह सच कहता है। मैंने उसे बिलकुल स्वतन्त्र रक्खा—रस्सी से भी नहीं बँधवाया, यद्यपि एक कॉन्सटेबिल के पास एक छोटी रस्सी थी, जिससे उसके हाथ बाँधे जा सकते थे, परन्तु मुझे उसकी बात पर विश्वास था।

उसके सावधान होने पर मैंने उससे पूछा—क्यों कालका, तुमने उस अहीर का ख़ून किया?

कालका बोला—हाँ सरकार, मैंने ख़ून किया।

मैंने पूछा—क्यों?

इसके उत्तर में उसने कहना आरम्भ किया :—

३

"सरकार, जिसका ख़ून मैंने किया, उसका नाम लछमन था। किसी समय में मेरी उसकी मित्रता थी। हमारे गाँव में रुकिया नाम की एक अहीर की लड़की थी। मैं उसे जी-जान से चाहता था। वह भी मुझे बहुत चाहती थी। हम दोनों यही स्वप्न देखा करते थे कि एक दिन हमारा विवाह होगा, पर ईश्वर को यह मञ्ज़ूर नहीं था। उसके बाप ने लछमन से कुछ रुपए लेकर रुकिया का ब्याह उसके साथ कर दिया। मैं बहुत दुखी हुआ, पर क्या कर सकता था। थोड़े दिनों पश्चात् लछमन ने उसे मारना-पीटना आरम्भ किया। ज़रा-ज़रा सी बात पर बड़ी बेदर्दी से पीटता था। एक दिन रुकिया मुझे रास्ते में मिली और मुझे देख कर रोने लगी। मैंने उससे रोने का कारण पूछा तो उसने मुझे अपनी पीठ खोल कर दिखाई। उसकी पीठ पर डण्डों के काले-काले चिह्न पड़े हुए थे। यह देख कर मेरा कलेजा हिल गया।

जिसके लिए मैं अपने प्राण तक दे सकता था, उसकी यह दशा! मैंने उसको धैर्य देकर घर भेजा और सीधा लछमन के पास पहुँचा। मैंने उससे कहा—लछमन! तुम मेरे मित्र थे, यद्यपि अब मैं तुम्हें मित्र की दृष्टि से नहीं देखता। रुकिया को मैं जी-जान से चाहता हूँ, यह तुम जानते हो, पर ईश्वर ने वह रत्न तुम्हारे भाग्य में लिखा था; इसलिए मैं कलेजा मसोस कर चुप हो रहा। लेकिन तुमने उस रत्न की परख नहीं की—तुम उसे इस बेदर्दी से पीटते हो। याद रखना, अब जो कभी तुमने उस पर फूल की छड़ी भी उठाई तो मैं तुम्हें मार कर गाड़ दूँगा। यह मैं जानता हूँ कि वह मेरी नहीं, तुम्हारी चीज़ है; पर मेरा हृदय उसी के साथ है, इसलिए सावधान रहना।

यह कह कर मैं चला आया। इसके एक हफ़्ते बाद एक दिन लछमन ने फिर उसे पीटा। इसका नतीजा यह हुआ कि रुकिया पानी भरने के बहाने गई और उसने कुएँ में कूद कर अपने प्राण दे दिए।

मैंने कालका की ओर आश्चर्य से देख कर कहा—अच्छा तो वह स्वयं कुएँ में कूदी थी?

कालका ने कहा—जी सरकार!

"पर गाँव वाले तो कहते थे कि पैर फिसल गया।"

"ऐसा न कहते तो आप लोग तङ्ग करते; इसीलिए सबने यह कह दिया था।"

"अच्छा फिर?"

"मैं उस समय अपने ननिहाल गया हुआ था, पन्द्रह रोज़ बाद लौटने पर मुझे यह ख़बर मिली कि लछमन ने रुकिया को पीटा था, सो उसने कुएँ में कूद कर जान दे दी। यह सुनते ही मेरा ख़ून खौलने लगा। मैं रञ्ज और क्रोध से पागल हो गया। मैंने कुल्हाड़ी उठाई और सीधा चरागाह में पहुँचा—वहाँ लछमन अपने जानवर चरा रहा था! मैंने उसके सामने पहुँच कर कहा—"क्यों लछमन, तुमने रुकिया के प्राण ले लिए! अब होशियार हो जाओ, मैं तुम्हारी जान लेने आया हूँ। मैंने तुम्हें मना किया था; पर तुमने उसे हँसी समझा। अब आज तुम्हें पता लगेगा कि वह कैसी हँसी थी।" यह सुन कर लछमन मुझे गालियाँ देने लगा। सरकार, वह यदि तनिक सा भी अफ़सोस प्रकट करता तो शायद मैं उसकी जान न लेता; पर वह उल्टा मुझे गालियाँ देने लगा। यह देख कर मैं क्रोध के मारे अन्धा हो गया और मैंने कुल्हाड़ी से उसका सिर फाड़ डाला। उसके भूमि पर गिरते ही मैं वहाँ से लम्बा हुआ और सीधा इस जङ्गल की ओर आया। यहाँ आकर मैं दो दिन यहीं छिपा रहा। जब भूख से व्याकुल हो गया तो एक दिन सड़क पर पहुँचा और दो मुसाफ़िरों को लूट कर मैंने खाने का सामान जुटाया और उससे गुज़र करता रहा, उसके बाद आप आए। आगे जो कुछ हुआ, वह आप जानते ही हैं।"

कालका का यह बयान सुनकर मैं बहुत प्रभावित हुआ। उसी समय से मैंने उसे एक साधारण ख़ूनी की दृष्टि से देखना छोड़ दिया। मुझे उसके साथ सहानुभूति उत्पन्न हो गई। हम लोग कालका को लेकर चले। रास्ते में हमें कैसी-कैसी मुसीबतें झेलनी पड़ीं, इसका बयान नहीं किया जा सकता! हम लोग रास्ता भूल गए, कालका ने हमें रास्ता बताया। यदि वह रास्ता न बताता तो शायद हम उसी जङ्गल में भटक कर मर जाते, क्योंकि हमारे पास खाने का सामान सब ख़त्म हो गया था। रात को हम लोग सो रहते थे, कालका कुल्हाड़ी लिए पहरा दिया करता था। क्या कभी आपने सुना है कि कोई क़ैदी अपने गिरफ़्तार करने वालों की रक्षा करे? एक दिन एक काले सर्प से कालका ने मुझे बचाया। यदि कालका दौड़ कर उसे न मार देता तो वह निश्चय मुझे काट खाता और मेरा अन्त उसी जङ्गल में हो जाता। कालका यदि चाहता तो एक बार नहीं, सौ बार भाग खड़ा हो सकता था—और ऐसी दशा में, जब कि हम उसका पीछा भी नहीं कर सकते थे; पर वह अपनी ज़बान का पाबन्द था। उसने जो कुछ कहा था उससे कहीं अधिक कर दिखाया।

ज्यों-ज्यों थाना निकट आता था, मेरे हृदय में एक ग्लानि का जन्म होता जा रहा था। "मैं ऐसे सच्चे और बहादुर आदमी को फाँसी पर लटकाने के वास्ते लिए जा रहा हूँ।" यह विचार रह-रह कर मेरे हृदय में उठता था। यदि कालका चाहता तो हम सबको वहीं ख़त्म करके चल देता—"ऐसे आदमी को मैं फाँसी के तख़्ते की भेंट देने के लिए लिए जा रहा हूँ।" उसी समय से मुझे पुलीस के महकमे से घृणा सी होने लगी।

(शेष मैटर ७६१ पृष्ठ पर देखिए)
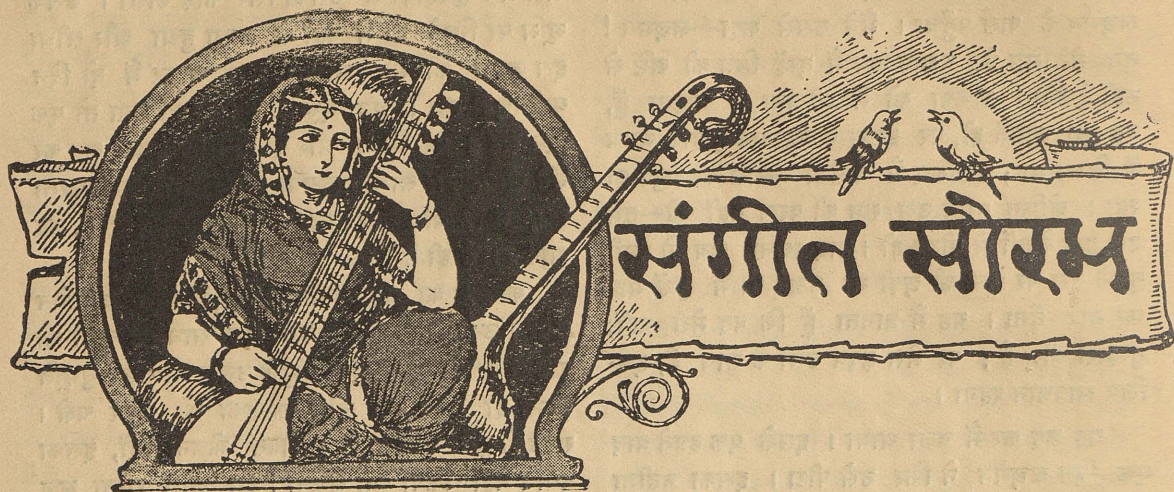
[सम्पादक तथा स्वर-लिपि-कार—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

राग केदारा दादरा

(मात्रा ६)

[शब्दकार—अज्ञात]

स्थायी—दीनन दुख हरत देव,
सन्तन हितकारी।

अन्तरा—ध्रुव के सर छत्र देत,
प्रह्लाद को तार लेत,
भक्तन हित बाँधो सेत,
लङ्कापुर जारी॥

स्थायी

×			०			×			०		
						त					
नि	स	म	ग	म	प	म	प	ध	प	म	म
०											
दी	ई	न	न	दु	ख	ह	र	त	दे	ए	व
०				त		त	०		त		
सं	—	ध	प	म	प	मप	धसं	निध	मप	धप	म
सं	—	त	न	हि	त	काआ	आआ	आअ	आ	आ	री

अन्तरा

प	प	स̊	—	स̊	रे̊	स̊	—	स̊	स̊	रे̊	स̊
ध्रु	व	के	—	स	र	छ	—	त्र	दे	ए	त
स̊	नि	ध	—	स̊	रे̊	स̊	नि	ध	प	म	म
प्र	ल	हा	—	द	को	ता	आ	र	ले	ए	त
म	—	म	म	प	प	ध	नि (क)	ध	प	म (त)	प
भ	—	क	न	हि	त	बाँ	आँ	धो	से	ए	त
स̊	—	रे̊	स̊	नि	ध	म (त) प	धप	मग	मरे	सरे	स
लं	—	का	आ	पु	री	जाअ	आ	आ	आ	आ	री

नोट :—इस राग में दोनों मध्यम और बाक़ी शुद्ध स्वर लगते हैं, कभी दोनों निषाद भी लगते हैं।

[७८९ पृष्ठ का शेषांश]

निश्चित समय पर कालका का विचार हुआ। उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और उसे फाँसी का दण्ड दिया गया। मैंने उसकी भलमनसाहत का समस्त वृत्तान्त भी कोर्ट के सामने पेश किया; परन्तु उस पर कुछ भी ध्यान न दिया गया। बस, उसी दिन से मुझे पुलीस-विभाग से घृणा हो गई और मैंने इस्तीफ़ा दे दिया। इस्तीफ़ा देने के पश्चात् मैं कुछ दिन घर पर रहा, परन्तु मुझे कालका की याद नहीं भूलती थी। मेरे हृदय में यह धारणा उत्पन्न हो गई कि मैंने उसे गिरफ़्तार करके अच्छा नहीं किया। घर पर मेरा जी नहीं लगा, इसलिए मैं यहाँ चला आया। अब यहाँ कुछ दिन रहकर जब चित्त ठिकाने आ जायगा तो चला जाऊँगा।"

मैंने कहा—वास्तव में बड़ी विचित्र बात है। ऐसे आदमी को तो साफ़ छोड़ देना चाहिए था।

भूतपूर्व थानेदार साहब बोले—न्याय तो यह बात नहीं देखता—वह तो जीव के बदले जीव चाहता है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि आप पुलीस-विभाग में जाने का इरादा कदापि न करें।

मैंने कहा—क्षमा कीजिए, मैंने आपका वृत्तान्त जानने के लिए ही यह कहा था—मैं पुलीस-ट्रेनिङ्ग में कदापि नहीं हूँ।

थानेदार साहब हँसकर बोले—अच्छा! तब तो आपने मुझे अच्छा चकमा दिया। ख़ैर, जब आप इतने उत्सुक थे कि उसके लिए झूठ तक बोले तो मुझे भी आपको अपना यह वृत्तान्त सुनाने का अफ़सोस नहीं है।

◻ ◻ ◻

[ले० श्री० हनुमानप्रसाद जी गोयल, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

वैटिकान

ईसाई-धर्म में रोमन-कैथोलिक सम्प्रदाय के सबसे बड़े पादरी, जिन्हें पोप कहते हैं, इटली के रोम नगर में रहते हैं। इनका निवास-स्थान 'वैटिकान' नामक महल में है, जो संसार भर में सबसे बड़ा प्रासाद है। इस मकान में कम से कम एक सहस्र बड़े-बड़े कमरे और हॉल हैं और यह लगभग १४ एकड़ ज़मीन पर बना है। इसके गिरजाघर, अजायबघर एवं पुस्तकालय विद्या और कलाकौशल के अक्षय-भण्डार हैं।

* * *

चीन की दीवार

यह विचित्र दीवार चीन के उत्तर-पश्चिमीय सरहद पर १,३०० मील लम्बी बनी है। इसे क़रीब दो हज़ार वर्ष हुए चीनियों ने तातारियों के हमलों से अपनी रक्षा करने के लिए बनाया था। चीन की राजधानी पीकिन में यह दीवार लगभग ४० फ़ीट ऊँची है और चौड़ी भी इतनी है कि दो गाड़ियाँ इसके ऊपर बराबर से एक साथ चल सकती हैं। किन्तु अन्य स्थानों में इसकी ऊँचाई बहुत कम है, यहाँ तक कि २० फ़ीट से भी कम है और चौड़ाई भी अधिक नहीं है। बीच-बीच में ख़ाली स्थान भी छूट गए हैं, जो आधी या चौथाई मील तक लम्बे हैं; किन्तु फिर भी यह संसार की सबसे लम्बी विचित्र और ऐतिहासिक दीवार है, जिसे देखने के लिए लोग दूर-दूर से आया करते हैं।

* * *

ताजमहल

यह अद्वितीय और शानदार इमारत आगरा शहर में मुग़ल बादशाहों की शक्ति और महानता का स्मरण करा रही है। इसे शाहजहाँ ने अपनी प्यारी बेगम मुम्ताज़महल की मृत्यु पर उसके स्मृति-स्वरूप बनवाया था। इसके भीतर शाहजहाँ और उनकी बेगम दोनों ही की क़बरें हैं। आज तक संसार में ऐसी ख़ूबसूरत इमारत कहीं नहीं बनी। यह आदि से अन्त तक ख़ालिस सफ़ेद सङ्गमर्मर की बनी है। इसकी तमाम दीवारों पर भाँति-भाँति की सुन्दर चित्रकारी के काम हैं, जिनमें बहुमूल्य जवाहरात भी जड़े थे, जो अब शायद निकाल लिए गए हैं। इसमें एक और उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसका रूप-रङ्ग अब भी वैसा ही ताज़ा और चमकदार है, जैसा कि वह आरम्भ में था। समय का प्रभाव इस पर बिलकुल नहीं पड़ा है।

इस अपूर्व इमारत के बनाने में लगभग तीन करोड़ रुपए व्यय हुए थे और क़रीब २०,००० कारीगरों को बीस वर्ष तक काम करना पड़ा था। इसे देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं; और देख कर आश्चर्य करते हैं। जितने फ़ोटो आज तक इस इमारत के लिए जा चुके हैं, उतने शायद संसार में किसी के भी नहीं लिए गए, किन्तु फ़ोटो अथवा चित्र द्वारा इसकी सुन्दरता एवं महानता का अनुमान करना कठिन है। उजाली रात में जिस समय चन्द्रमा की शुभ्र किरणें इसके सफ़ेद सङ्गमर्मर पर पड़ती हैं, तो उस पर एक दैवी सुन्दरता आ जाती है।

* * *

कैटाकूम्स अर्थात् रोम की सुरङ्ग

ये सुरङ्गें रोम नगर से दो-तीन मील की दूरी पर मीलों लम्बी चली गई हैं। प्राचीन काल में इनमें मुर्दे गाड़े जाते थे और यहीं पर ईसाई लोग आरम्भ में विधर्मी शासकों के अत्याचारों से बचने के लिए अपनी पूजा-प्रार्थना भी करते थे। इसका भीतरी दृश्य बड़ा प्रभावोत्पादक है। लम्बी-लम्बी सुरङ्गों के भीतर क़तार की क़तार, जहाँ तक आँखें जाती हैं, प्राचीन ईसाइयों की क़बरें ही दीख पड़ती हैं। प्रत्येक क़ब्र के पत्थर पर छोटे-मोटे लेख भी खुदे हुए हैं।

* * *

स्वतन्त्रता की मूर्ति

यह मूर्ति संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के न्यूयार्क नगर के समीप बेडलो नाम के एक छोटे से टापू पर खड़ी की गई है, जहाँ यह अपनी ओर आने वाले जहाज़ों पर से दूर ही से दीखने लगती है। इसकी उँचाई १५१ फ़ीट है और केवल मूर्ति ही का वज़न १०० टन है। जिस पर यह मूर्ति खड़ी है, उस चबूतरे का मूल्य ७०,००० पाउण्ड अर्थात् क़रीब साढ़े दस लाख रुपए हैं, और मूर्ति का मूल्य भी ५०,००० पाउण्ड अर्थात् क़रीब साढ़े सात लाख रुपए हैं। इस मूर्ति के एक हाथ में मशाल है, जो मीलों की दूरी से दिखाई पड़ता है। यह मूर्ति सन् १८८३ में फ़्रान्स द्वारा अमेरिका को भेंट-स्वरूप दी गई थी। इसका निर्माता फ़्रान्स का ऑगस्ट बर्थोल्डी (Auguste Bartholdi) नामक शिल्पकार था। संसार में यह मूर्ति अपने ढङ्ग की सब से ऊँची है। इसे Statue of Liberty कहते हैं।

* * *

दुनिया की सबसे ऊँची मीनार

यह मीनार पेरिस नगर में १५० गज़ लम्बे-चौड़े एक चबूतरे पर खड़ी है। इसकी ऊँचाई लगभग १,००० फ़ीट के है। इसका निर्माता गस्टेव ईफ़ेल (Gustave Eiffel) नामक मनुष्य था, जिसके नाम पर ही इस मीनार का भी नाम ईफ़ेल मीनार (Eiffel Tower) रक्खा गया। इसकी बुनियाद सन् १८८७ में पड़ी थी और सन् १८८९ में यह बन कर तैयार हो गई।

यह मीनार निरी लोहे की बनी है और इसमें तीन मञ्ज़िलें हैं। पहली मञ्ज़िल १९० फ़ीट, दूसरी ३८० फ़ीट, और तीसरी ९०५ फ़ीट, ज़मीन से ऊँची है। इस तीसरी मीनार पर एक काँच का सायबान है, जिसके नीचे सैकड़ों मनुष्य एक साथ बैठ सकते हैं। मीनार की बिलकुल चोटी के ऊपर बिजली की एक रोशनी रहती है, जो क़रीब ५० मील के इर्द-गिर्द से दिखाई पड़ती है। दूसरी और तीसरी मञ्ज़िलों में खाने-पीने के लिए बड़े-बड़े कमरे हैं और मीनार के नीचे भी एक नाटक-घर और एक भोजनालय है।

* * *

संसार का सबसे बड़ा घण्टा

यह घण्टा रूस देश के मॉस्को नामक नगर में है और इसे "ज़ारकोलोकोल" (Czar Kolokol) कहते हैं। कहा जाता है कि यह सन् १६५३ ई० में बना था। सन् १७३७ ई० में अग्नि-प्रकोप के

कारण यह घण्टा ज़मीन पर गिर कर चटख़ गया और सौ वर्ष तक उसी स्थान पर ज्यों का त्यों पड़ा रहा। अन्त में सन् १८३७ में इसके नीचे की ज़मीन खोद कर वहाँ एक गिरजाघर तैयार किया गया और यह घण्टा उसी गिरजाघर का गुम्बज़ बन गया।

इसके अतिरिक्त एक दूसरा घण्टा भी, जो अब तक बजने वाले घण्टों में सबसे बड़ा गिना जाता है, इसी मॉस्को नगर में है। इसका नाम New Bell अर्थात् 'नवीन घण्टा' है। यह सन् १८१७ में बना था और इसका वज़न १२५ टन है। यह इस नगर के एक मीनार में टँगा है। संसार के और भी बड़े-बड़े घण्टे रूस ही देश में अधिकतर पाए जाते हैं।

* * *

संसार का सबसे लम्बा पुल

यह स्कॉटलैण्ड के डण्डी शहर में 'टे' नामक नदी के ऊपर बना है। इसकी लम्बाई १०,००० फ़ीट से भी अधिक है। इसके सम्बन्ध में एक बड़ी करुण कथा है। वस्तुतः इसके पहले इसी स्थान पर एक दूसरा पुल था, जो सर टॉमस बाउश के द्वारा बनाया गया था। सन् १८७६ में एक दिन आँधी के ज़ोर से इसका क़रीब ३,००० फ़ीट लम्बा एक टुकड़ा निकल गया और एक भरी हुई पैसेञ्जर गाड़ी, जो उसी समय उस पर से जा रही थी, नीचे नदी में जा गिरी, जिससे क़रीब ८० मनुष्य डूब गए। इस घटना का असर उस पुल के निर्माता पर इतना पड़ा कि उसकी भी शीघ्र ही मृत्यु हो गई। उसके बाद यह नया पुल सन् १८८७ में खोला गया।

* * *

सबसे भारी पुल

इसका नाम "फ़ोर्थब्रिज" (Forth Bridge) है और यह सन् १८८२-८६ में बृटिश टापू में फ़ोर्थ की खाड़ी के ऊपर बनाया गया था। यह पुल यद्यपि लम्बाई में 'टे' के पुल से कुछ कम है अर्थात् केवल ८,२६० फ़ीट लम्बा है, किन्तु भारी और बड़ा उससे कहीं अधिक है। इसका निर्माण जॉन फ़ाउलर तथा सर बेञ्जिमिन बेकर नाम के दो प्रसिद्ध इञ्जीनियरों ने किया था और इसे तैयार करने के लिए ४,००० मनुष्यों की ७ वर्ष तक आवश्यकता पड़ी थी।

* * *

पीपे का सबसे लम्बा पुल

कलकत्ते का पन्टून ब्रिज संसार भर में पीपे का सबसे लम्बा पुल है। यह हुगली नदी के ऊपर बना है।

दुख की राह में—

[रचयिता—श्री० रामलोचन जी शर्मा 'कण्टक']

(१)

चिन्ता-विरह-वेदना-आशा—
पथ के पथिक धन्य हैं धन्य।
सञ्जीवन की सीख सीखते—
हैं जिनके कर्मों से अन्य।

(२)

अग्नि-कुण्ड में तप कर जैसे—
पाता कनक अग्नि सी कान्ति।
यह पथ पथिक पार कर वैसे—
पाते सकल काम्य सुख शान्ति।
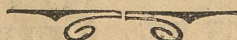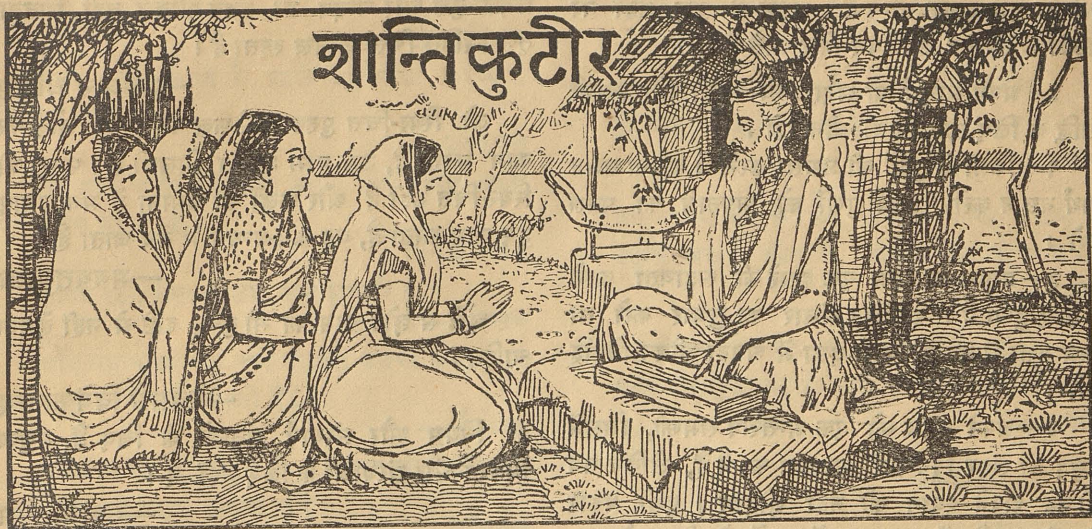
महात्मा थेल्स को प्रत्येक शिक्षित समाज जानता है। वे 'ग्रीस देश के दर्शन शास्त्र' (Greek Philosophy) के जन्मदाता और 'सप्त पण्डितों' में सर्वश्रेष्ठ थे। उनका जन्म सातवीं शताब्दी (B. C.) में हुआ था। वे अपने भाग्य को तीन बातों के लिए सराहते थे—पहली यह कि उनका जन्म मनुष्य-श्रेणी में हुआ था, दूसरी यह कि वे पुरुष थे और तीसरी यह कि वे ग्रीसवासी थे। उनकी उक्तियाँ बड़ी ही सरल और चित्तरञ्जक हैं :—

१—तुम अपने आपको पहचानो।

२—बाचालता मूर्खता का एक लक्षण है।

३—संसार से अधिक सुन्दर कोई वस्तु नहीं है।

४—सबसे विस्तृत वस्तु स्थान है, क्योंकि यह सर्व पदार्थों का आधार है।

५—सबसे बलवान् वस्तु आवश्यकता है।

६—सबसे बुद्धिमान् वस्तु समय है, क्योंकि सब चीज़ों का आविष्कार और निर्माण यही करता है।

७—परमेश्वर सब प्राणियों से पुराना है, क्योंकि वह अनादि है।

८—मन सबों से तीव्रगामी है, क्योंकि वह क्षण-भर में सम्पूर्ण संसार में भ्रमण कर लेता है।

९—दुष्टों के पाप-कर्म का छिपना तो दूर रहे, उनका मनोगत विचार भी परमात्मा से नहीं छिप सकता।

१०—छल-कपट से धनी होने का यत्न न करो।

११—विद्यमान और अनुपस्थित मित्रों को समान दृष्टि से देखो।

१२—दूसरों को उपदेश देने से बढ़ कर सहल काम संसार में दूसरा कोई नहीं है।

१३—शरीर को भूषित करने में अधिक समय नष्ट न करो, अपनी-अपनी बुद्धि को अलंकृत करने की चेष्टा करो।

१४—मनुष्य अपनी विपत्ति को धैर्यपूर्वक सह सकता है, यदि उसका शत्रु उससे भी बुरी दशा में हो।

१५—मनुष्य अकपट और शुद्ध भाव से जीवन व्यतीत कर सकता है, यदि वह उन कर्मों को न करे, जिनके करने से वह दूसरों की निन्दा करता है।

१६—जो नीरोग, धनी, विद्वान् और बुद्धिमान् है, वही इस संसार में सुखी है।

१७—माता-पिता को अपनी सन्तान से उसी प्रकार के व्यवहार की प्रतीक्षा करनी चाहिए, जैसा कि उन्होंने अपने माता-पिता के साथ किया है।

* * *

दूसरे महापुरुष 'मारकस ऑरेलियस अनटोनियस' हैं। इनका जन्म सन् १२१ ए० डी० में हुआ था। इनकी प्रगाढ़ विद्वत्ता और कीर्त्ति विद्वानों से छिपी नहीं

है। इनका एक-एक उपदेश स्वर्णाक्षरों में लिख कर गले का हार बनाने योग्य है। उनमें से कुछ यहाँ पर पाठकों के सम्मुख उपस्थित किए जाते हैं :—

१—अपने आदर्श को सदा उच्च रक्खो और उसकी सिद्धि के लिए तन-मन से लीन रहो।

२—किसी के गुणों की प्रशंसा करने में अपना समय व्यर्थ नष्ट न करो, उसके गुणों को अपनाने का प्रयत्न करो।

३—मनुष्य का जन्म एक दूसरे की सहायता करने के लिए हुआ है। इसलिए संसार का सुधार करो या जिस दशा में वह है, उसी दशा में अपना जीवन निर्वाह करो।

४—अपने शरीर को एक अन्तरीप समझो, जिसमें समुद्र की लहरें दिन-रात टकराया करती हैं, लेकिन तब भी वह अपने स्थान को नहीं छोड़ता। इसी प्रकार जितनी आपत्तियाँ तुम पर आवें, सबों को वीरता के साथ सहन करो और उनसे विचलित न हो।

५—अपनी बुराइयों को न छोड़ कर, दूसरों के दोषों से बचने का प्रयास करना मूर्खता है।

६—सदाचारी होना हमारा धर्म है। मैं मरकत मणि हूँ। संसार जो कुछ करना चाहे करे, जो कुछ कहना चाहे कहे, किन्तु मैं मृत्यु तक मरकत ही रहूँगा, अपना रङ्ग कभी नहीं छोड़ूँगा।

—लक्ष्मीप्रसाद द्विवेदी

* * *

जब मैं प्रेम से परमेश्वर की लीला गाता हूँ, तब वे मङ्गल-कीर्ति पूज्यपाद मेरे हृदय में ऐसे शीघ्र दर्शन देते हैं, जैसे किसी के बुलाने से कोई शीघ्र आ जाय।

—भगवान नारद

पाप-चित्त वाले दूसरों के दुर्गुण खोजने में जैसे तत्पर रहते हैं, वैसे उनके कल्याणकारी गुणों के लिए नहीं रहते।

—महात्मा विदुर

जितनी प्रिय वस्तुएँ हैं, उनमें आत्मा ही प्रधान है और भगवान् हरि ही सब में आत्मा-रूप से स्थित हैं, अतः उनसे बढ़ कर प्रिय वस्तु और कौन हो सकती है।

—भगवान् नारद

चन्द्रमा और हिमालय पर्वत भी इतने शीतल नहीं, कदली-वृक्ष और चन्दन भी इतने शीतल नहीं, जितना तृष्णा-रहित चित्त शीतल रहता है।

—भगवान् वशिष्ठ

जो स्थिर-चित्त पुरुष कर्म-फल की इच्छा छोड़ कर काम करता है, उसे परम शान्ति मिलती है। परन्तु जो स्थिर-चित्त नहीं है और फलों की कामना में मन लगाए हुए काम करता है, वह कर्म-बन्धन में बँध जाता है।

—भगवत्गीता

छोटे से छोटे काम को भी तुच्छ दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

—स्वामी विवेकानन्द

नियम और संस्थाएँ मनुष्यों के लिए हैं, मनुष्य नियमों और संस्थाओं के लिए नहीं है।

—स्वामी राम

जो पवित्र हैं वे ही हर्षपूर्ण हैं। पाप-इच्छा से लड़ने में अशान्ति और दुख है, परन्तु सत्य की परिपूर्णता और सत्य के मार्ग में स्थायी हर्ष और आनन्द है।

—जेम्स ऐलन

वही जाति अधिक बलवती होती है, जिसमें आत्म-निर्भरता का गुण हो।

—विलियम जॉर्ज गार्डन

कोई भी वस्तु निरर्थक और तुच्छ नहीं है, वह अपनी स्थिति में सर्वोत्कृष्ट है।

—लॉङ्ग फ़ेलो

शान्ति के साथ सोओ और सानन्द उठो।

—शेक्सपियर

महत् कार्यों की मृत्यु नहीं हो सकती। वे सूर्य और चन्द्र के साथ अपने प्रकाश को नित नवीन करते रहते हैं।

—टेनिसन

मित्रता स्वयं एक पवित्र बन्धन है। विपत्ति से वह अधिक पावन हो जाती है।

—ड्राइडन

मित्रता दैवी देन है और मनुष्यों के लिए अत्यन्त बहुमूल्य वरदान है।

—डिसरायली

सब पर प्रेम करो, थोड़े पर विश्वास करो, किसी को हानि न पहुँचाओ।

—शेक्सपियर

उदार हृदयी बनने के पहले मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह न्यायी बने।

—डीकेन्स

जो भली-भाँति रहता है, उसके लिए प्रत्येक प्रकार का जीवन अच्छा है।

—जॉन्सन

पवित्र रहो, सत्य बोलो, भूल सुधारो।

—टेनिसन

यदि मनुष्य सीखना चाहे तो उसे उसकी प्रत्येक भूल कुछ न कुछ शिक्षा दे सकती है!

—डीकेन्स

वर्ष बीत रहा है, बीतने दो। असत्य की झङ्कार बन्द करके सत्य की झङ्कार प्रारम्भ करो।

—टेनिसन

सदैव धूप ही बनी रहेगी, ऐसी आशा मत करो। सदैव बादल ही घिरे रहेंगे, मत डरो।

—बर्न्स

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न देखा कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझ-सा बुरा न कोय॥

—कबीर

धनि रहीम जल कूप को, लघु जन पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत् पियासो जाय॥

—रहीम

जड़ चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥

—तुलसी

—बालकृष्णभट्ट
(सङ्कलनकर्ता)

नाविक का गान

[रचयिता—श्री० हरीन्द्रनाथ जी चट्टोपाध्याय]

(१)

तरुण अरुण में रञ्जित धरणी,
नभ लोचन हैं लाल!
मृदु समीर में नाचे तरणी,
नदी बजावे ताल!!

(२)

चले धरा के बन्धन तोड़,
छाया चुम्बित तट को छोड़!
नव प्रभात लाली के सन्मुख,
चढ़ा हुआ है पाल!!

(३)

हमें नहीं है धन की आस,
है स्वच्छन्द हमारा हास!
रिझा नहीं सकता है हमको,
जग-माया का जाल!!

(४)

शोक-नदी में देह-तरी को,
तैराना तुम विधि से सीखो!
जल्द कटेंगे दिन क्यों उनको,
भला रहे हो टाल!!

(५)

चलो लिए कर में पतवार,
दिन रहते कर बेड़ा पार!
देखो आता है दुःख-दायक,
धूसर सन्ध्या-काल!!
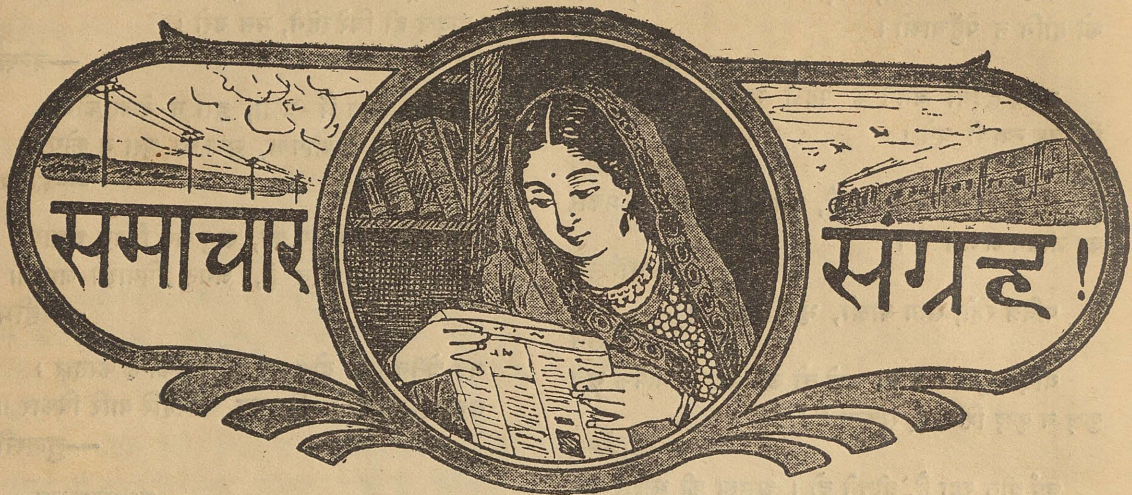
अन्धी बालिका की करामात

मिस ग्रीन (Miss. Green) नाम्नी लन्दन की एक अन्धी बालिका शॉर्टहैण्ड लिखने में बड़ी प्रसिद्ध है। अन्धी होने पर भी यह लड़की प्रति मिनिट १६० शब्दों के हिसाब से लिख सकती है और प्रति मिनिट ८० शब्द टाईप कर सकती है। अन्धों के नेशनल इन्स्टीट्यूट तथा मिनिस्टरी ऑफ़ हेल्थ आदि कई संस्थाओं में वह कार्य भी कर चुकी है। अब उसने स्वयं अपना निजी व्यवसाय आरम्भ किया है। ईश्वर की देन ही तो है।

* * *

माता का उत्सर्ग

मदुरा की एक स्त्री शकुन्तलाबाई के लड़के की आँखें चेचक में जाती रही थीं। स्त्री को विश्वास हो गया कि यदि वह देवी के सम्मुख स्वयं अपने को बलिदान कर दे तो पुत्र की आँखें अच्छी हो जायँगी। बस, पुत्र के कल्याण के लिए अपने को माता ने मिट्टी के तेल से भस्म कर डाला और पुत्र के नाम एक चिट्ठी लिख कर वहीं रख दी, जिसमें लिखा था—"मैं रेणु देवी को अपनी बलि देती हूँ। देवी कृपा कर तुम्हारी आँखों को ज्योति दें।" अन्धविश्वास की पराकाष्ठा तो अवश्य है, पर स्पष्ट उदाहरण है कि माता सन्तान के लिए कितना त्याग कर सकती है। कहा भी है—"कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।"

* * *

अग्रवाल-महिला का पुनर्विवाह

गत १३ फ़रवरी को काशी के शीतला गली में रहने वाले श्री० बजरङ्गदास जी अग्रवाल का विवाह श्रीमती मुन्नीदेवी अग्रवाल से, जो बाल-विधवा थीं, बड़े समारोह से दारानगर आर्य-कन्या-पाठशाला में सम्पन्न हुआ। काशी की अग्रवाल-जाति में होने वाला यह पहला विधवा-विवाह है। हम वर-बधू को इस शुभ अवसर पर बधाई देते हैं।

* * *

स्त्रियों को उत्तराधिकार

१२ फ़रवरी की बैठक में बड़ी व्यवस्थापिका सभा ने हिन्दू-उत्तराधिकार सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार किया। एसेम्बली तथा राज्यपरिषद् में इस आशय का बिल एक बार पहले स्वीकृत हो चुका था, जिसका आशय है, उत्तराधिकार के क़ानून में यह संशोधन करना कि जायदाद की उत्तराधिकारिणी लड़की, लड़के की लड़की, बहिन तथा बहिन की लड़की भी हो सके। यह जान कर समाज-सुधारकों को सन्तोष होगा कि यह प्रस्ताव बहुमत से इस बार स्वीकृत हो गया। सरकारी मेम्बर तो उदासीन ही रहे, किन्तु महामना मालवीय जी ने इस बिल का खुला विरोध करके अपनी अनुचित कट्टरता का निन्दनीय परिचय दिया, इस बात का हमें कम खेद नहीं है।

* * *

गुजराती स्त्री-मण्डल, बम्बई

इस नाम की एक संस्था सन् १६०३ ई० में बम्बई में स्थापित हुई थी और तब से आज तक इसने आशातीत उन्नति की है। प्रारम्भ में इसकी अवस्था शोचनीय अवश्य थी, पर आजकल इसकी १६०० महिला-सदस्या हैं। गुजरात, कच्छ तथा काठियावाड़ की कोई भी गुजराती भाषा-भाषी हिन्दू-महिला इसकी सदस्या हो सकती है। संस्था का उद्देश्य सदस्याओं में घनिष्ठ सामाजिक संसर्ग तथा जाग्रति उत्पन्न करना है और इसकी पूर्ति के लिए समय-समय पर भोज, व्याख्यान तथा वार्षिकोत्सव होते रहते हैं। सर्व-साधारण के लिए व्याख्यानों के अतिरिक्त संस्था की ओर से निःशुल्क शिक्षा का भी प्रबन्ध है और इसीलिए एक पृथक् वाचनालय तथा पुस्तकालय है, जिनमें स्त्रियों को कुछ चन्दा भी नहीं देना पड़ता। इस मण्डल की कई शाखाएँ भी हैं, जिनकी सहायता से प्रचार-कार्य में बड़ी सुगमता होती है।

हमारे प्रान्त में भी सामाजिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी ऐसे कार्य करने के लिए ऐसे स्त्री-मण्डलों की बड़ी आवश्यकता है। क्या उत्साही महिलाएँ इस ओर ध्यान देंगी?

* * *

अछूत-कॉन्फ्रेन्स, मद्रास

पाठकों को जानकर हर्ष होगा कि गत ६ फ़रवरी को प्रान्तीय अछूत-कॉन्फ्रेन्स का दूसरा अधिवेशन बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ। सभानेत्री का आसन कुमारी ज्योतिर्मयी गङ्गूली, एम० ए० ने ग्रहण किया था। सर ए० पी० पेट्रो ने इस अधिवेशन का उद्घाटन किया। उपस्थिति बड़ी सन्तोषजनक थी। अनेक विद्वानों और विदुषी महिलाओं के सारगर्भित व्याख्यान हुए। सभानेत्री महोदया का व्याख्यान बड़ा ओजस्वी और प्रभावशाली हुआ। आपने कहा, छुआछूत का भेद एक प्रकार का विषैला सामाजिक कोढ़ है, जो भीतर ही भीतर हमारी जाति को नष्ट कर रहा है; और यदि शीघ्र ही इसका इलाज नहीं किया गया तो हमारी मृत्यु निश्चित है। देशवासियों से उन्होंने अछूतों को गले लगाने की अपील आर्द्र नेत्रों से की। परमात्मा हम ग़ुलामों को सद्बुद्धि दें, जिससे हम अछूतों पर किए गए अपने अत्याचारों का प्रायश्चित्त कर सकें।

* * *

बिहारी महिलाओं का सौभाग्य

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि बिहार-व्यवस्थापिका सभा ने इस बार की बैठक में बिहारी महिलाओं को मताधिकार का प्रस्ताव पास कर अपनी सुधार-प्रियता का परिचय दिया है। अब वहाँ की स्त्रियाँ निर्वाचन-कार्य में वोट दे सकेंगी।

* * *

३०० स्त्रियों का ख़ून

सहयोगी "ऑबज़रवर" में एक बड़ी रोमाञ्चकारी घटना प्रकाशित हुई है। आज का पूर्वीय सोवियट रूस किसी समय इस्लामी मुल्लाओं का कट्टर गढ़ था। बीसवीं सदी के सुधारान्दोलन ने स्वभावतः ऐसे जहालत के केन्द्रों में खलबली मचा दी है। बड़े-बड़े प्रयत्नों के बाद बहुविवाह तथा स्त्रियों के ख़रीद-फ़रोख़्त का अमानुषिक व्यवसाय बन्द हो सका है। इस समय बहुत सी तातारी बालिकाएँ उच्च शिक्षा पा रही हैं। बुख़ारा में—जहाँ के निवासियों का विश्वास था कि स्त्रियों में आत्मा नहीं होती—स्वयं स्त्रियाँ अपने सुधारात्मक आन्दोलन में बड़े उत्साह से भाग ले रही हैं। मध्य एशिया की सेन्ट्रेल कम्युनिस्ट पार्टी अब परदा की कुप्रथा के विरुद्ध बड़ा प्रभावशाली आन्दोलन उठा रही है। इस आन्दोलन का प्रभाव भी अच्छा पड़ा। लगभग सभी स्त्रियों ने परदे फाड़ कर अपने शुभ-चिन्तकों का उत्साह बढ़ाया, किन्तु केवल अजबेकिस्तान नाम के शहर में—जहाँ मुल्लावाद का विशेष केन्द्र है—लगभग ३०० स्त्रियों का, केवल इस अपराध के कारण ख़ून कर डाला गया कि उन्होंने परदा-प्रथा का परित्याग कर दिया था। कुछ स्त्रियों को तो जाहिल पतियों ने स्वयं मार डाला, शेष को मुल्लाओं ने अथवा बिरादरी के उन्मत्त रूढ़ि के पोषकों ने! किन्तु इन क़ुर्बानियों का प्रभाव अच्छा पड़ा। स्त्रियों में एक बार ही क्रान्ति की भावना उदय हो गई है। हमें खेद केवल इतना है कि न्याय-दृष्टि से, जब कि ऐसे जाहिल मुल्लाओं का ख़ून होना चाहिए था, ख़ून हुआ निरपराध महिलाओं का। पर हम बहिनों को विश्वास दिलाना चाहते हैं कि बलिदान किसी भी देश अथवा जाति में व्यर्थ नहीं गए हैं, इसका फल प्रत्यक्ष होता है, और सदा होता है कल्याणकारी!

* * *

मारवाड़ियों की नाक

वर्द्धा की एक प्रतिष्ठित मारवाड़ी-अग्रवाल घराने की रामीबाई नामक स्त्री का, ६-७ मास हुए, स्वजातीय मनीराम नामक एक धूर्त से अनुचित सम्बन्ध हो गया था। फल-स्वरूप एक कन्या उत्पन्न हुई, जो लम्बी नाक की भय के कारण मार डाली गई, और कपड़े में लपेट कर एक तालाब में फेंक दी गई, जैसा कि प्रायः होता है। पुलिस ने इस मामले की कमाल की जाँच की और ये लोग पकड़े गए। गत सप्ताह वर्द्धा के दौरा जज ने अभियुक्तों को दोषी पाकर रामीबाई को एक वर्ष सादी क़ैद और २ हज़ार जुर्माना तथा मनीराम को २ वर्ष की कड़ी क़ैद और एक हज़ार रुपयों का दण्ड दिया है! हम विधवाओं के पुनर्विवाह की आवश्यकता के सम्बन्ध में वकालत न कर, उन मारवाड़ी-भाइयों का ध्यान विशेष रूप से इस लज्जापूर्ण घटना की ओर आकर्षित करना चाहते हैं, जिन्होंने 'अबलाओं का इन्साफ़' शीर्षक पुस्तक के विरुद्ध ज़मीन-आसमान एक कर डाला था। गोविन्द-भवन के भयानक भण्डाफोड़ के बाद यह दूसरी घटना है जो प्रकाश में आई है। न जाने नित्य इस प्रकार के कितने काण्ड प्रत्येक बड़े शहर में घटते रहते हैं और फिर भी अधिकांश मारवाड़ी समाज विधवा-विवाह का विरोधी है !!

* * *

सतीत्व का मूल्य

अफ़ग़ानिस्तान के डाकू-अमीर बचासक्का ने शाही घराने की दो राजकुमारियों से ज़बरदस्ती शादी करना चाहा था। वे इस पर राज़ी न हुईं तो उन्हें पकड़ कर वह अपने महल में ले आया और उनकी मरज़ी के विरुद्ध उनसे निकाह करना चाहा। निकाह की सब तैयारियाँ ठीक थीं, पर अपने सतीत्व-धर्म की पक्की दोनों राजकुमारियों ने महल में पहुँचते ही आत्मघात कर लिया! बच्चासक्का जैसे अत्याचारी की प्रणय-पात्री होने की अपेक्षा प्राण देना ही उन्होंने श्रेयस्कर समझा। पाशविक शक्ति अफ़ग़ानिस्तान के ऊपर भले ही क्षणिक विजय प्राप्त कर ले, पर रमणी-हृदय पर वह कदापि विजय नहीं पा सकती।

मालदार बीबी की तलाश

नॉटिङ्घम (इङ्गलैण्ड) के मि० विलियम बालजेक नाम के एक सौभाग्यशाली व्यक्ति ने हाल ही में अपनी १०७ वीं वर्ष-गाँठ बड़ी धूम-धाम से मनाई है। इस अवसर पर नॉटिङ्घम के लॉर्ड-मेयर ने इन्हें कई चीज़ें भेंट कर उन्हें बधाई दी। एक पत्र-प्रतिनिधि से बातचीत करते हुए मि० विलियम ने कहा कि मेरी आन्तरिक इच्छा एक मालदार बीबी से शादी करने की है, क्योंकि मेरी आमदनी केवल १० शिलिङ्ग प्रति सप्ताह है। यदि कोई मालदार बीबी मिल जाय तो शेष जीवन बड़े आनन्द से कट सकता है। हम जानते हैं कि यह समाचार पढ़ कर इस देश के खूसट बूढ़े भी करवटें बदलने लगेंगे, किन्तु एक बात स्मरण रखनी चाहिए, मि० विलियम ने अपना पहला विवाह ७६ वर्ष की आयु में किया था। इसके पहले वे पूर्ण ब्रह्मचारी थे। इस समय मि० विलियम में इतनी शक्ति है कि वे दो पहलवानों के गले पकड़कर उन्हें लड़ा सकते हैं। डॉक्टरों का कहना है कि मि० विलियम अभी बहुत वर्ष जिएँगे।

* * *

एक मारवाड़ी ब्राह्मण का उन्माद

रामगढ़ के एक मारवाड़ी ब्राह्मण अपनी पहली स्त्री के जीवित रहते हुए विवाह करने का प्रयत्न कर रहे हैं। बहाने के लिए यह ख़बर उड़ा दी गई है कि मेरी स्त्री मर गई। उधर बेचारी अनाथ स्त्री फूट-फूट कर रो रही है। कुत्सित वासनाओं में सने हुए इन प्राणियों ने तो विवाह को मिट्टी के खिलौनों का सौदा ही समझ रक्खा है। सच बात तो यह है कि ऐसी कितनी ही घटनाएँ हमारे समाज में प्रतिदिन घटा करती हैं तो बिरले ही समाचार अख़बारों में छप पाते हैं।

* * *

स्थान-परिवर्तन की सूचना

१५ मार्च तक वर्तमान कोठी से 'चाँद' कार्यालय तथा प्रेस अपने निजी भवन (चन्द्रलोक) में चला जायगा, इसलिए पाठकों से प्रार्थना है कि भविष्य में २८ नम्बर एडमॉन्सटन रोड (28, Edmonstone Road) के पते से पत्र-व्यवहार करें। यह कोठी ठीक जिसमें पहले कार्यालय था उसके पीछे वाली सड़क पर है।

तार का पता:—"गोल्डमाइन" कलकत्ता
टेलीफ़ोन नं०—बड़ा बाज़ार १५९०, कलकत्ता
सोना चाँदी और जवाहरात के ज़ेवरों का
अपूर्व संग्रह-स्थान
[इस प्रतिष्ठित फ़र्म के सञ्चालकों से हमारा पूर्ण परिचय है। यहाँ किसी प्रकार का धोखा होगा, इस बात का स्वप्न में भी भय न करना चाहिए। सारा काम सञ्चालकों की देख-भाल में सुन्दर और ईमानदारी से होता है ; हमें इसका पूर्ण विश्वास है।
—सम्पादक 'चाँद']
कुछ मन लुभाने वाली फ़ैन्सी चीज़ों पर ध्यान दीजिए!
बिजली की तरह चमकीले बेटर सोने का और मोती, माणिक, हीरे,
पन्ने का न्यू डिज़ाइन के नाना प्रकार के हार और नेकलेस
चमकीले आइनों को मात करने वाली बेटर सोने की और जवाहरात की निहायत
नफ़ीस और डायमण्ड कट की हर एक क़िस्म की चूड़ियाँ
पुष्पों से आकर्षक, दीपक से भी भड़कीला, उम्दा से उम्दा कड़ा;
तारा सा चमकता हुआ ईयरिङ्ग और प्रेम में वृद्धि करने
वाली सुन्दर अँगूठियाँ
गले का अनुपम शृङ्गार, बिजली सी भड़कीली चित्ताकर्षक
सीकलियाँ, हाथ और गले का मनोरञ्जक बटन
और
चाँदी के हाई-पॉलिश के हर एक क़िस्म के बर्तन—जैसे थाल, लोटा,
गिलास, कटोरा गङ्गासागर, कुञ्जा, ताँबड़ी, पञ्चपात्र, कप-
सोसर्स, पहलदार कटोरा, टिफ़िन-बॉक्स
और
अतरदान, गुलाबपास, फ़्लावर वास, पानदान, सिंहासन, फ़ुवारा, ग्लास्ट्रे वग़ैरह हमारी नोवेल्टी है।
पता :—मुरारजी गोविन्दजी जौहरी,
पोस्ट-बॉक्स ६७९३, १५६ हैरिसन रोड, कलकत्ता
चाँदी और सोने का विशाल सूचीपत्र मुफ़्त। डाक-ख़र्च के लिए चार आने का टिकट भेजिए।
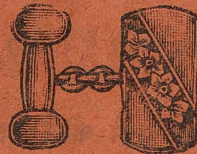
Printed and Published by R. SAIGAL—Editor—at The Fine Art Printing Cottage, Twenty-eight, Elgin Road. Allahabad.